श्री गुलाब वीर ग्रन्थमाला रत्न २६ वाँ

श्री अर्हद्भ्यो नमः

सृष्टिवाद और ईश्वर

रचयिता
भारत भूषण शतावधानी
प० मुनि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज

हिन्दी अनुवादक
प० पूर्णचन्द्र जी सा० दक "न्याय-तीर्थ"

प्रकाशक
श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति, ब्यावर

दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा में
जगदीश प्रसाद द्वारा मुद्रित

प्रथमावृत्ति १२००

मूल्य १॥)

वीर सं० २४६७
वि० सं० १९९७

धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन में निम्नांकित सज्जनों ने समिति के संरक्षक तथा आजीवन सदस्य होकर के आर्थिक सहायता प्रदान की है, अतः उनका हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है।

संरक्षक—

१ श्रीमान् सेठ सरदारमलजी सा० पुगलिया — नागपुर

आजीवन सदस्य—

१ लाला सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद — कलकत्ता
२ लाला मुंशीराम जैन — स्यालकोट
३ श्रीमान् सरदारमलजी सा० छाजेड़ — शाहपुरा
४ ,, रामलालजी सा० कीमती — हैदराबाद
५ ,, पूनमचन्दजी सा० गांधी — हैदराबाद



श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति के स्तम्भ



सेठ भैरोदान जी सेठिया (बीकानेर)



सेठ केदारनाथ जी जैन (दिल्ली)

संरक्षक



सेठ सरदारमल जी पूगलिया (नागपुर)



सेठ सुगनचन्द जी (भवाल)

समिति के स्तम्भ, संरक्षक तथा आजीवन सदस्यों की शुभ नामावली।

स्तम्भ

१ दानवीर सेठ अगरचन्दजी भैरोंदानजी सेठिया — बीकानेर
२ लाला [illegible]नाथजी [illegible]नाथजी जैन — दिल्ली

संरक्षक

१ श्रीमान सेठ [illegible]मलजी सा पुगलिया — नागपुर
२ श्रीमान [illegible]मलजी, [illegible]मलजी,
सुगनचन्दजी [illegible] — [illegible]

आजीवन सदस्य

१ श्री[illegible]लाल भाई चन्द मेहता — बम्बई
२ श्री[illegible]लाल [illegible]चन्द [illegible] — [illegible]
३ लाला सुखदेव सहाय ज्वालाप्रसाद — कलकत्ता
४ लाला [illegible] जैन — [illegible]
५ श्री टी० जी० शाह — बम्बई
६ [illegible] — जयपुर
७ श्री[illegible]नाथजी [illegible] — हैदराबाद
८ श्री[illegible]चन्दजी सा० [illegible] — हैदराबाद
९ श्री[illegible]मलजी सा० [illegible] — [illegible]
१० [illegible] भाई — राजकोट
११ [illegible] — [illegible]

१२ श्रीनवलचन्द्र दा० शाह — बम्बई
१३ श्रीजोहरीलालजी पन्नालालजी नाहर — अजमेर
१४ श्रीधवलचन्द्रजी रतनचन्दजी चोपड़ा — अजमेर
१५ श्रीरूपमलजी श्रीमाल — अजमेर
१६ श्रीलखमीमलजी रियावाल — अजमेर
१७ श्रीरूपचन्द्रजी सा० पन्नावाल — अजमेर
१८ श्रीभँवरलालजी चाँदमलजी नाहर — अजमेर
१९ श्रीमूलचन्द्रजी सेठी — अजमेर
२० श्रीसुगनचन्द्रजी चाँदमलजी नाहर — अजमेर
२१ श्रीरतनमलजी सा० सुराणा — अजमेर
२२ श्री सेठ प्यारेलालजी गियाँवाले — अजमेर
२३ श्रीमती मानकँवर, शाह जगजीवनदास तुलसीदास की विधवा — अहमदाबाद

प्रकाशक का निवेदन

'सृष्टिवाद और ईश्वर' नामक पुस्तक पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए हमारे को अत्यन्त हर्षोद्रेक हो रहा है। शताव धानी भारत भूषण पंडित मुनि श्रीरत्नचन्द्रजी म०सा० ने अजमेर साधु सम्मेलन में सम्मिलित होने के पश्चात् राजपूताना, युक्त-प्रान्त, दिल्ली, पंजाब आदि देशों में विहार किया, उस समय उक्त मुनिवर को सृष्टि तथा उसके कर्ता सम्बन्धी विषय पर एकाध ग्रन्थ रचने की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई। गुजरात में सृष्टि कर्तृत्ववाद की चर्चा इतनी ज्यादा नहीं जितनी कि उत्तर हिन्द में है। और इस चर्चा के कारण से स्वधर्म अथवा स्वमत परिवर्तन भी हुआ करते हैं। दिल्ली, पंजाब, एवं युक्तप्रान्त में विहार के समय में एतद्विषयक तात्विक चर्चा प्रकीर्ण रूप से होती थी, तथा किन्हीं जिज्ञासु जैन जैनेतर व्यक्तियों के साथ चर्चा भी होती थी।

परन्तु पंजाब विहार के दरम्यान 'अर्धमागधी व्याकरण "जैन सिद्धान्त कौमुदी" का काम तथा दिल्ली में "अर्धमागधी-कोष" के पाँच वें भाग का कार्य किये पूर्व/सृष्टि कर्तृत्ववाद विषयक ग्रन्थारम्भ करने की अनुकूलता महाराज श्री को प्राप्त नहीं हुई। उपरोक्त कार्यों से निवृत्त होने के उपरान्त आगरे में

इन्होंने इस कार्य का शुभारम्भ किया। आगरे से काशी तथा कलकत्ता की तरफ विहार करने का महाराज श्री का भाव था लेकिन स्वास्थ्य की प्रतिकूलता के कारण यह भाव पूर्ण नहीं हुआ। यद्यपि आगरे में प्रस्तुत पुस्तक का आरम्भ हुआ, लेकिन श्री शतावधानी जी महाराज साहब की तबियत अस्वस्थ होने के कारण से इस पुस्तक का थोडा सा भाग ही वहाँ लिखा जा सका, पश्चात् पुस्तक का अधिकांश भाग अजमेर में लिखा जा सका।

पुस्तक के लेखन के लिये आगरा (मानपाड़ा) के श्री संघ ने सहायता दी थी, तथा आगरे में चिरंजीव लाला पुस्तकालय के संचालकों ने, तथा इसी तरह से वीरविजय पुस्तकालय के संचालकों ने अपने पास के ग्रन्थ उदार भावों से जब जब आवश्यकता हुई तब ही महाराज श्री के समक्ष पहुँचाकर अपना सेवा भाव प्रदर्शित किया। इसके सिवाय सेठिया जैन लाइब्रेरी बीकानेर ने सैंकड़ों पुस्तकें दूसरी जगहों पर भेजीं, तथा वैदिक पुस्तकालय अजमेर ने पुस्तकें देखने की पूर्ण व्यवस्था करदी, अतः यहाँ पर इन सब के प्रति आभार प्रदर्शित किया जाता है। विशेषतः मुनि श्री अमरचन्द जी, प० रामकृष्ण जी शास्त्री, श्रीमान् रतनलाल जी दोसी, प० पूर्णचन्द्र जी दक, आदि महानुभावों ने इस पुस्तक के लेखन में, तथा उद्धरण ढूंढने में श्री शतावधानीजी महाराज साहब को सहायता की है, अतः इन सबका भी हम यहाँ पर आभार मानते हैं।

अजमेर तथा पुष्कर में पुस्तक-लेखन पुनः प्रारम्भ हुआ, तथा समाप्त हुआ। तब लेखन सम्बन्धी सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अजमेर का श्री संघ भी धन्यवाद का

पात्र हैं। साथ ही प्रस्तुत पुस्तक के, साहित्यज्ञ भूमिका लेखक श्री चुन्नीलाल वर्धमान शाह को भी कोटिश धन्यवाद है, जिन्होंने कि परिश्रम पूर्वक इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर इसकी शोभा बढाई है।

इस प्रकार यह ग्रन्थ वाचकों के हाथों में पहुँच रहा है। पाठकगण इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण रूपेण पढ करके मनन करेंगे एवं योग्यता की वृद्धि करेंगे तभी लेखक का प्रयास सफल एवं स्तुत्य होगा।

यह ग्रन्थ प्रथम गुजराती में छपा, लेकिन हिन्दी भाषा भाषियों की सुविधा के लिये अब हिन्दी में छपाया गया है।

निवेदक—

धीरजलाल के तुरखिया — मन्त्री श्री जैन साहित्य
कल्याणमल जी बैद — प्रचारक, समिति।

पुस्तक प्राप्ति-स्थान

१ मन्त्री श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति
श्री जैन गुरुकुल ब्यावर
(.

२ सेठिया जैन लायब्रेरी, बीकानेर
(राजपूताना)

३ उत्तमलाल वीरचंद गोमलिया
लाल बंगला, घाटकोपर
(आगरा)

भूमिका

मनुष्य जब अपनी नित्य की क्रियाओं में सिर ऊपर का उठा करके दिशाओं की ओर दृष्टिपात करता है, तब वह एक प्रकार के आश्चर्य का अनुभव करता है। इतने बड़े विश्व को किसने और किस लिये बनाया है ? उस विश्व के छोटे अंश रूप पृथ्वी का क्या स्थान है ? पृथ्वी के ऊपर गतिमान् मनुष्य कहाँ से आया है तथा इसके आने का क्या प्रयोजन है ? इस सम्पूर्ण दृश्यमान् जगत् की जिसने रचना की है उसमें कितनी शक्ति है ? क्या इतनी शक्ति अपने अन्दर भी आ सकती है ? यदि आ सकती है तो किस तरह से ? विश्व की विशालता, तथा उसमें विचरण करते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तथा इस पृथ्वी के समान अनेक पृथ्वियाँ, उपरोक्त सबों का प्रगतिमान यह नित्य क्रम आदि सम्पूर्ण बातों की गवेषणा करते हुए मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, तथा विचार शक्ति स्तम्भित रह जाती है। उसका 'नेति-नेति' शब्दोच्चारण करनेवाले तत्त्वज्ञ ऋषिमुनि चिंतन करते हैं और वह स्वयं यह विचार करने के लिये कितनी पामर बुद्धि का है, इस बात का उसको भान होता है।

फिर भी इस विषय पर विचार करने का इरादा मानव बुद्धि ने कभी नहीं छोड़ा। मानव ने बुद्धि व्यापार चलाया ही है। निर्णय किये हैं पूर्व कृत निर्णयों को हटाकर पुन नये निर्णय किये हैं। वह पहिले शोधता है कि प्रत्येक वस्तु पृथ्वी, अप, अग्नि, वायु, एवं आकाश इन पाँच तत्वों से बनता है। एवं कोई न कोई उसका बनाने वाला भी होता है। कुम्भकार मिट्टी का घड़ा बनाता है, तो मिट्टी औरपानी को मिलाकर उसका कच्चा घड़ा बनाता है, फिर उसको हवा से सुखाता है, अग्नि से तपाता है और उसके अन्दर पोलाण में तथा बाहिर आकाश तत्व व्याप्त रहता है। उसी प्रकार से यह जगत् रूप घड़ा भी पाँच तत्वों से बना है। तथा इसका कर्त्ता भी महान् शक्तिवाला कोई बड़ा कुम्भकार होना चाहिये। इस कल्पना के आधार से वे लोग घट तथा जगत दोनोंको समान तुलना में तथा समान रूप में मानने को प्रेरित होते हैं। तथा पश्चात् इसके कर्त्ता के व्यक्तित्व विषयक अनेक कल्पनाएँ करते हैं।

पर इन्हीं कल्पनाओं ने बहुत प्रकार की शक्तियों में जगत् कर्तृत्व का आरोपण किया है। हिन्दुओं के वेद, उपनिषद् तथा पुराण, ईसाइयों का बाइबिल, मुसलमानों का कुरान, अन्य शुस्त के धर्म ग्रन्थ, जैनियों के सूत्र ग्रन्थ, तथा वैज्ञानिकों के विज्ञान संशोधन, तरह तरह की शक्तियों को इस विश्व के अस्तित्व में कारणभूत रूप से उल्लेख करते हैं। 'सृष्टि' शब्द में रही हुई 'सृज्' धातु भी यही बतलाती है कि यह कोई शक्ति के द्वारा किया हुआ कार्य है। परन्तु यह कर्तृत्व विषयक विवाद कहते हैं कि वे अपने अपने निर्णय के समय

में एकमत नहीं है। इससे आगे आकर यह भी कहा जा सकता है कि जगत् की आदि अद्यावधि कोई भी निर्णीत नहीं कर सका है।

यदि एक वेद की बात करें तो, उसमें भी सृष्टि के संबध के अनेक वाद प्रचलित हुए हैं। एक वाद अनेक देवों ने यह जगत् उत्पन्न किया है, तथा अनेक ही इसकी रक्षा करते हैं, ऐसा कहता है। दूसरा वाद ब्रह्म में से जगत् के उत्पन्न होने की बात कहता है। तीसरा वाद ब्रह्म की जगह इन्द्र को कर्त्तारूप में मानता है। चौथा वाद इन्द्र के स्थान पर ईश्वर को छोडकर उसको गुण विशेष से युक्त एक प्रकार की आत्मा की कल्पना करता है। पाँचवाँ वाद प्रकृति तथा पुरुष को जगत् के आदि कारण रूप कहता है। वेदों के आधार से उपनिषद् कारों तथा पुराणकारों के द्वारा दौडाई हुई दूसरी कल्पनाऐं भी अनेक हैं। कोई प्रकृति को उपादान कारण मानता है तो कोई पुरुष को निमित्त कारण मानता है। तो कोई पुरुष का उपादान कारण तथा प्रकृति को निमित्त कारण मानता है। कोई एक अण्डे से पृथ्वी की उत्पत्ति बतलाता है, तो कोई परमात्मा के अवतार ने इसका सृजन किया है, ऐसा कहता है। कोई विश्व को स्वयं भू कृत मानता है, तो कोई ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न किया मानता है। इसी प्रकार से सृष्टि के सृजन का आरोपण प्रजापति, विराट्,मनु, धाता, विश्वकर्मा इत्यादि के ऊपर करते हैं। तथा सृजन में काम में आये हुए तत्त्वों के सम्बन्ध में भी विशाल विविधता दृष्टि गोचर होती है। आत्म सृष्टि, स्कम्भ सृष्टि, अज सृष्टि ब्रह्म सृष्टि, कर्म सृष्टि, ओंकार सृष्टि, प्रस्वेद-सृष्टि, परस्पर-सृष्टि

यही जैनसूत्र 'सूयगडांग' की चन्द पक्तियों में कहा गया है। देवाप्त महोप्त, ईश्वर कृत, प्रकृति आदि कृति, स्वयंभू कृत, ब्रह्मकृत ब्रह्माकृत, इस प्रकार भिन्न भिन्न जो नाम कहे जाते हैं उनमें जगत् कृत अर्थात् बनाया गया है, अर्थात् किसी ने इसको बनाया है, यह भाव ध्वनित होता है। उक्त विधानों के सम्बन्ध में श्रमण भगवान महावीरस्वामी कहते हैं —

> सएहिं, परियाएहिं, लोयं बया कडेति य।
>
> तत्त ते ण वियाणन्ति, ण विणासी कयाइवि ॥

अर्थात्—ये सब वादी अपनी अपनी युक्तियों से लोक (जगत्) बना हुआ है, ऐसा कहते हैं, परन्तु वे तत्त्व को नहीं जानते हैं कि 'लोक कभी विनाशी नहीं है"। भगवान् महावीर के काल में जगत् कर्तृत्व अकर्तृत्व के विषय में जो वाद प्रचलित थे, उन सम्पूर्ण वादों का देखकर भगवान् महावीर ने उपरोक्त पक्तियों में जो विधान किया है, कि 'जगत् को [illegible] ॥ उसका कभी नाश भी होता नहीं' [illegible] में विस्तृत रूप से वर्णन किया

के परिवर्त्तन मनुष्य के चर्म चक्षुओं को दृग्गोचर होते हैं। यह पुद्गलों का उत्कर्ष-अपकर्ष होता है, लेकिन एक दम नाश कभी नहीं होता। इसी प्रकार इस उत्कर्ष तथा अपकर्ष के लिये किसी के प्रतिबन्ध तथा नियमन की उन पुद्गलों को आवश्यकता नहीं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह तथा जगत् में होने वाले पुद्गलों के उत्कर्ष-अपकर्ष को इस प्रकार निराकार ईश्वर की अथवा सर्व शक्तिमय ब्रह्म की लीला मानना, यह सुघटित कल्पना भी नहीं टिक सकती। श्री किशोरीलाल मशरूवाला जो कि तत्त्वज्ञ हैं कहते हैं कि —"अनुभव यथार्थ तथा अयथार्थ दोनों प्रकार का हो सकता है। यह अवश्य है कि अनुभव तथा अनुभव की उपपत्ति में वैभिन्य है। इससे अनुभव के वचन अथवा उपपत्ति भी केवल विचारने योग्य ही गिनी जा सकती है। जो अनुभव तथा उसकी उत्पत्ति अपने अनुभव तथा विचार रूप में जितने अंश में उतरे, उतने ही अंश में वह मान्य हो सकती है। प्राचीन काल से आजतक जितने अंश में गम्भीर विचारकों के अनुभव तथा उसकी उपपत्ति में जो साम्य है, उतने ही अंश में प्रमाण्य आता है।" परन्तु इस प्रकार का साम्य सृष्टि कर्तृत्ववाद में नहीं, यह बात इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न प्रकरणों से सुचारू रूपेण जानी जा सकती है। अनुभव की अपेक्षा भी इसमें विशेष तर्क, अनुमान, तथा कल्पना है और स्वयं मशरूवाले ही कहते हैं कि 'एक ओर अनुभव तथा दूसरी ओर तर्क, अनुमान अथवा कल्पना इन दोनों में बहुत भेद है। अनुमान को सिद्धान्त समझने की अथवा कल्पना को सत्य समझने की भूल होने, यही सम्प्रदाय से मोटी खाई

है । वस्तुत सत्य शोधन अथवा सिद्धात, अनुभव तथा प्रयोग स ढूंढा हुआ अविचल नियम होना चाहिये । मीमासाकार प्रत्यक्ष प्रमाण को अनुभव मानते हैं, तर्क तथा कल्पना मिश्रितवाद का नहीं । तथा विज्ञान शास्त्र प्रयोग द्वारा सिद्ध करता है कि सृष्टि का आदि काल अथवा कर्तृत्व निश्चित किया जा सके, ऐसा नहीं । इस प्रकार स अनुभव तथा प्रयोग का मिश्रण जैन मान्यतानुसार जगत् क अनादित्व तथा अकर्तृत्व की तरफ ही ज्यादा झुकता है, यह बात इस ग्रन्थ क रचयिता ने विस्तार स समझाइ है ।

'सृष्टिवाद और इश्वर' कई एक वादों का खण्डन तथा एक वाद का मण्डन करता है। अत इसको खण्डन मण्डन रूप एक ग्रथ कहने म कोइ बाधा नहीं । इस प्रकार की पुस्तक वर्तमान जगत् की जनता के ऊपर उपकार कर सकती है यह सत्य है । धार्मिक खण्डन मण्डन आज इस युग म बहुतों को अनावश्यक प्रतीत होते हैं, कारण उसका यह है कि उस खण्डन मण्डन से वाद एव वितण्डाऐ निकलती हैं । तथा यथार्थ सत्यशोधन के कलह-वृद्धि होती है । सौम्य तथा प्रतिपादक शैली (style) स लिखी गइ यह पुस्तक खण्डन मण्डन की होने पर भी एक रूप से आज की जनता जो कि स्वावलम्बन के मार्ग के ऊपर जाने की रुचि रखती है, उनके लिये अवश्य ही उपयोगी होगी । 'इश्वर है ही नहीं, इस प्रकार के नास्तिक वाद की यह पुस्तक तरफदारी नहीं करती, परन्तु जगत् का कर्त्ता इश्वर नहीं है तथा जीवों के सत्कार्य, अपकार्य का नियामक इश्वर नहीं है, इश्वर तो परम मुक्त दशा का पहुँचा हुआ आत्मा है, तथा मनुष्य

भी इस परम मुक्त दशा को अपनी आध्यात्मिक कार्यों से ही प्राप्त हो सकता है। अपने निज के पुरुषार्थ का ही आधार रखना चाहिये, इस प्रकार की उपकारक सूचनाएँ इस ग्रन्थ के सर्व स्थल सूचित करते हैं। ईश्वर का सृष्टि कर्तापन, तथा जगन्नियन्तापन सर्वसाधारण को निष्क्रिय तथा प्रमादी बनाने में मुख्य साधन भूत होता है, तथा पुरुषार्थ को गौण बनाता है। इस प्रकार से इस ग्रन्थ का तत्त्व पुरुषार्थ वाद है। इस ग्रन्थ का परिशीलन करने वाला इस तत्त्व की पूर्ण जानकारी कर सकता है, तथा बंध और मोक्ष के कारण भूत कर्मों की पहिचान करके पुरुषार्थ युक्त तथा सफल जीवन व्यतीत कर सकता है।

—— चुन्नीलाल वर्धमानशाह

[-]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ ७	१४	न्ना	न्ना	१६०	?	अग्न	अग्नि
१ ८	३	मन्त्र	मन्त्र	१६४	१६	था	का
१००	१०	अथरण	अथर	१६४	१	म	था
१०	१४	मय म	मत्रम	२	६	अम्बर	शम्बर
१ १	१६	भाति	भार्या	- -	११	माँर	पाँच
१००	१०	अथवण	अ त्र	-	०	अन	अत
११३	६	गृष्टि	सृष्टि	२ ४	८	मूल	फूल
१११	०	भलिल	सलिल	२०७	१०	धूमत	धूमन
१०१	४	मन्तुय	मनुष्य	२	३	यद्र	वृत्त
१६१	१४	सृष्टि	दृष्टि	२११	११	पुगलि य	युगलिय
१ १	१४	नहा	नहा	२१८	११	आलय	आश्रय
१ ०	१८	प्रन	प्रना	२१६	६	मनाय	मनुष्य
१६०	२०	का	क	२२१	३	ह अज्ञान	ह अज्ञान
१ ०	४	न	है	- -	४	हनारा	हजारा
१६६	३	श्रति	श्रुति	२२२	५	चरण	चरणों
१६६	१७	शतियाँ	श्रुतियाँ	२२२	६	आर	और
१७३	२३	प्रश्न	प्रश्न	२२३	१	मागा	माना
१७४	१४	प्रक्रियाओ	प्रक्रियाओं	२२४	१०	जाओ	नाओं
१७४	१३	ना	थो	२२६	१	जगत्कृत्स्न	जगत्कृत्स्न
१७८	१	गसा	ऐसा	२	५	म	मे
१८३	६	निप्ण	निपुण	२४२	१६	फारत्यन	फारयेत
१८३	१०	पर्वो	पर्वो	२५१	७	औ	और
१८४	७	दूसरा	दूसरी	२५६	१६	मामान	समान
१८७	१८	मन्दराश्रेव	सुन्दराश्रेन	२५६	१५	और	×
१८८	३	न	ने				

पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	न	ने
८	जमा	जस
९	वैमा	जैसे
१४	पियासा	प्यासा
१९	पियासा	प्यासा
६	पियासा	प्यामा
१९	चेर	वैर
३	तुमारा	तुम्हारा
९	दगा	दूगा
१२	चारियो	कर्मचारियो
२२	श्रार	ओर
७	ठिपाला	छिपाला
११	स्वग	स्वर्ग
३	का	की
६	चाथे	चौथे
७	मनुष्य	मनुष्यों
३	क्यांकि	क्योंकि
८	बड	बडी
१४	फाडो	फोडो
१८	उटेल	ऊडेल
१२	जमकीला	चमकीला
११	निन्द	जिन्दा
३	अन्याई	अन्यायी
१९	उस	उसने
२३	बेटो ?	बेटो !

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८५	१	छुपीं	छिपी
२८५	९	ह	है
२८५	९	हायगे	हायगे
२८५	१२	म	म
२८६	१७	का	का
२९०	२	अन्याइया	अन्यायियों
२९५	३	जिनने	जितने
२९९	९	सकुचितता	सकुचितता
३०१	१३	तरीन	तरीक
३०९	९	रहुने वाले	रहने वाले
३१२	१३	अशिया	अशिया
३१२	१	एवेस्ट	एवरस्ट
३१२	३	एवेस्ट	एवरस्ट
३१६	१९	में	मे
३१७	४	वगरह	वगरह
३१८	१६	विपय	विशप
३२०	४	रेडिम	रेडियम
३२३	९	अर्द् भज्ञ	उद्भिन्
३२७	१४	शोचामि	शोचामि
३२७	२१	शक्ती	शक्ति
३२९	७	वृत्त	वृत्त
३३७	९	निगन्	निगुन्
३३७	१५	की	ही
३३८	१८	शेल	सेल Cell
३३८	२१	शेल	सेल

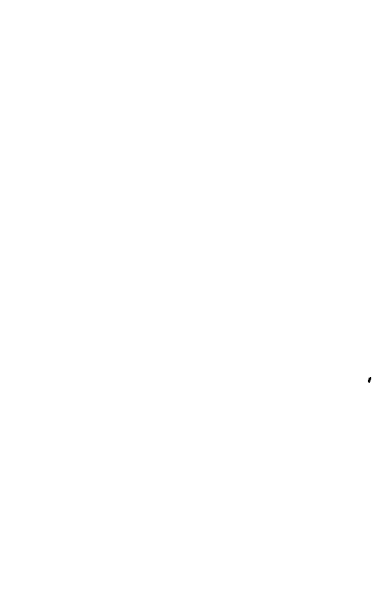
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
[illegible]९९	१८	शेल	मेल
[illegible]१	६	गृन्ति	गुप्ति
[illegible]	५	भा	भी
[illegible]	६	कादाचित्त	कादाचित्क
[illegible]९	२०	उपाधा	उपाधि
[illegible]९	२२	भि	मित्र
[illegible]४	५	मे	कैसे
[illegible]५४	५	एकतानात्म	एकताना
		कत्वे	त्मत्वे
[illegible]५८	११	का	के
[illegible]५०	६	योग्याभ्याम	योगाभ्यास
३[illegible]	८	कदाचन्	कदाचित्
[illegible]	१३	सृष्टि	×
[illegible]	४	सृष्टी	सृष्टि
[illegible]५	१	साध	साधन
३६१	३	अनुकम्पाना	अनुक
			म्पाना
[illegible]८	१२	सष्टि	सृष्टि
[illegible]६८	८	प्रप्त	प्राप्त
[illegible]८५	२१	कुम्भकार-	कुम्भकार
		कृतत्व	कृतत्व
[illegible]	२०	दृमाय	न्याय
[illegible]	६	अकान्त	एकान्त
[illegible]	११	सौम्यकर	सौपकर
[illegible]	१२	दसात	दृष्टान्त
[illegible]	६	स्यात्र	स्यात

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०७	१६	एकान्त-	एकान्त
		कालवान्	कालवात
४०७	७	सूरजी	सूरिजी
४३७	१८	अधर्मास्तिकाया	अधर्मा
			स्तिकाय
[illegible]	६	पर्योप	पर्याय
[illegible]	१३	पसाय	पर्याय
४४८	१	माग	मार्ग
४४९	१८	रना	विना
४५१	२१	अमृत	अमूर्त
४५०	१२	नम	×
४५८	१६	व	वा
४६०	१०	आर	और
४६७	२०	मात्रा	मात्र
४७२	२	जगन	जगत
४७२	१०	प्राणतिया-	प्राणातिपा
		तादि	तादि
४७७	२०	पर्याप	पर्याय
४७८	१४	उपदान	उपादान
४८३	८	जीवी	जीवों
४८५	१३	समान्य	सामान्य
४८६	१	कीरते	करते
४८६	१५	स्थायि	स्थायिर
४८७	२३	तथ	तथा

आधुनिक विद्वानों के अभिप्राय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१६	न	न न
१२	२०	मार	समार
१४	१	मन	मत

अनुक्रमणिका



सृष्टिवाद और ईश्वर



[सूयगडागसूत्र की पाँच गाथाओं के आधार पर भिन्न भिन्न धर्मानुसार सृष्टि तथा प्रलय के साथ ईश्वर का सम्बन्ध और जैन दृष्टि से समन्वय]



सृष्टि कर्त्तृत्ववाद का पूर्वपक्ष



वैदिक सृष्टि-देववाद



लोक वाद के सम्बन्ध में भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा बतलाई हुई अन्यवादियों की मान्यताएँ, श्री सुधर्मा स्वामी स्वशिष्य जम्बू को सुनाते हैं—

मू०—इणमन्नं तु अन्नाण, इहमेगेसिमाहियं ।

देव-उत्ते अय लोए, बंभ-उत्तेत्ति आवरे ॥

(सूय० १ । १ । ३ । ५)

स० छा०—इदमन्यत्तु अज्ञान, इहैकेषामाख्यातम् ।
देवोप्तोऽयं लोकः ब्रह्मोप्त इत्यपरे ॥

अर्थ—लोकवाद के सम्बन्ध में कितने ही वादियों का कहा हुआ दूसरा अज्ञान भी है। वह इस प्रकार है—

"(१) यह लोक जगत् देव से निष्पन्न—उत्पन्न हुआ है।"
"(२) „ „ देव से रक्षण किया हुआ है।"
"(३) „ „ देव का पुत्र रूप है"।

एक दूसरे वादी का कहना है कि—

"(४) यह लोक ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है।"

विवेचन—प्रस्तुत गाथा के तीसरे चरण में सृष्टिकर्ता के रूप में सर्वप्रथम 'देव' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे सृष्टिवाद के इतिहास का आरम्भकाल सूचित होता है। भारतीय धार्मिक जगत् में सृष्टिकर्तृत्व वाद का मुख्य प्रतिनिधि वैदिक धर्म है। प्रभु महावीर ने इसी धर्म की विभिन्न शाखाओं की सृष्टि-सम्बन्धी मान्यताएँ बतलाई हैं। अस्तु, जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक धर्म का पर्यवेक्षण करते हैं तो वैदिक काल मुख्यतः तीन भागों में विभक्त मिलता है—संहिताकाल, ब्राह्मणकाल और उपनिषद्काल। संहिताकाल स्तुतिप्रधान है, ब्राह्मणकाल यज्ञ यागादि कर्मकाण्ड प्रधान है, और उपनिषद्काल आत्मा परमात्मा आदि दार्शनिक विचारों को प्रगट करने वाला ज्ञान प्रधान है।

संहिताकाल में ईश्वर अथवा सृष्टि सम्बन्धी कोई व्यवस्थित चिन्तन, देखने में नहीं आता। संहिता के मन्त्रों में एक ईश्वर के स्थान में अनेक देव उपस्थित होते हैं और उन देवों की प्रार्थनायें वहाँ इष्ट सिद्धि के लिए की गई हैं। उस समय की इष्ट वस्तुयें—भोजन, पान, वस्त्र आदि, शत्रुओं की ओर से होने वाले संकटों से रक्षा, इत्यादिक हैं। प्रमाणस्वरूप देखिये, ऋग्वेद संहिता के कुछ मन्त्र—

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्न सहस्रसातम इन्द्र तारथिनीरिष ।

(ऋग्० १ । ६ । ८)

हे इन्द्र ! हमें महती कीर्ति, बहुदान सामर्थ्ययुक्त धन और अनेक रथपूर्ण अन्न दान करो ।

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन , स न सिषक्तु यस्तुर ।

(ऋग्० १ । १८ । २)

जो सम्पत्तिशाली, रोग मिटाने वाले धनदाता, पुष्टिवर्द्धक और शीघ्र फल दाता हैं, वे ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें ।

हत वृत्र सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा, मा नो दु शस ईशत ।

(ऋग्० १ । २३ । ६)

दानपरायण मरुतो ! बली और अपने सहायक इन्द्र के साथ शत्रु का विनाश करो, जिससे दुष्ट शत्रु हमारा मालिक न बन बैठे ।

पाहि नो अग्ने रक्षस पाहि धूर्तेरराव्ण ।
पाहि रीषत उत वा जिघासतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥

(ऋग्० १ । ३६ । १५)

हे विशाल किरण युवक अग्नि ! हमे राक्षसों से बचाओ । धन दान न करने वाले धूर्ता से रक्षा करो । हिंसक पशु से रक्षा करो । हननेच्छुक शत्रु से रक्षा करो ।

त्व तस्य द्वयाविनोऽघशसस्य कस्यचित्, पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ।

(ऋग्० १ । ४२ । ४)

ना कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष, दोनों प्रकार से हरण करता और अनिष्ट साधन करता है, हे पूषन् देव ! उसकी परपीड़क देह को अपने पैरों से रौंद डालो।

इस प्रकार के हजारों मन्त्र ऋग्वेद में अग्नि, मित्र, वरुण पूषन् सूर्य आदि देवों की प्रार्थना रूप या उपासनारूप हैं। यह प्रार्थना पद्धति, मात्र संहिता युग में ही नहीं रही, किन्तु ब्राह्मण युग में भी प्रचलित रही है। बल्कि कहीं कहीं तो संहिता की अपेक्षा ब्राह्मणों में यह पद्धति अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत है। प्रमाण स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण के ३३ वें अध्याय में जो राजा हरिश्चन्द्र और शुन शेप का उपाख्यान लिखा हुआ है, वह यहाँ बता देना उपयोगी होगा।

इक्ष्वाकुवंश में वेधस् राजा का पुत्र हरिश्चन्द्र नामक एक सुप्रसिद्ध राजा हुआ है। उसके सौ रानियाँ थीं, किन्तु दुर्भाग्य से एक भी पुत्र नहीं हुआ। एक समय की बात है कि नारद मुनि राजा के पास आये और प्रसंग चलने पर उन्होंने बत लाया कि—'संसार में पुत्र के बिना गृहस्थ की गति नहीं होती।' राजा के हृदय में पहले से ही पुत्र के लिए चिन्ता थी, और अब इस धार्मिक सिद्धान्त के कारण तो वह और भी अधिक बलवती हो उठी। राजा के द्वारा पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछे जाने पर नारद ऋषि ने बतलाया कि— वरुण की प्रार्थना करो। नारद मुनि के आदेशानुसार राजा ने वरुण देव की उपासना की और प्रतिज्ञा की कि—'हे वरुण देव! मेरे जो पुत्र होगा उसी से मैं तुम्हारा यज्ञ करूँगा।' वरुण ने राजा की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। फलस्वरूप राजा को एक पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम रोहित रक्खा गया। पुत्र होते ही

वरुण देव राजा के पास आये और कहने लगे कि—हे राजन्! मेरे वर से तुमको पुत्र की प्राप्ति हुई है, अत: प्रतिज्ञानुसार इस पुत्र से मेरा यज्ञ कर—अर्थात् मेरे लिये पुत्र का बलिदान कर। राजा ने कहा कि जब तक अशौच निवृत्ति नहीं होती है, तब तक यज्ञ उचित नहीं माना जाता। अभी तो पुत्र पैदा हुआ है, अशौच निवृत्ति भी नहीं हो पाई है! दस दिन के बाद अशौच निवृत्ति हो जाने पर, वरुण फिर दुबारा राजा के पास आया और पुत्र के बलिदान की माँग करने लगा। राजा ने फिर भी यह कह कर टरका दिया कि—जब तक दाँत नहीं आते, तब तक कोई भी पशु, यज्ञ के योग्य नहीं गिना जाता। रोहित भी तो यज्ञ में बलि दिए जाने के कारण एक पशु ही है अत कृपया दाँत आने दीजिये। जब दाँत आ गये तो वरुण की तरफ से फिर माँग की गई! इस पर यह कहा गया कि—जब तक पहली बार के आये हुये दाँत नहीं गिर जाते और दूसरी बार नये दाँत नहीं जम आते, तब तक यज्ञ के योग्य नहीं हो सकता। नये दाँत आने के पश्चात् वरुणजी फिर आ धमके। इस बार राजा ने लम्बी चाल चली कि—महाराज! अन्य पशु तो नये दाँत आ जाने पर यज्ञ में बलिदान के योग्य हो जाते हैं, परन्तु यह तो क्षत्रिय पशु है, अत जब तक पढ लिख कर धनुर्विद्या में निपुण नहीं हो जाता तब तक भला यज्ञ के योग्य कैसे हो सकता है? अस्तु बेचारे वरुण देव खाली हाथ ही लौट गये और लम्बी आशा बाँधे बैठे रहे। इधर रोहित बाल्यकाल बीत जाने पर युवक हो गया और साथ ही धनुर्विद्या में भी पारगत हो गया। वरुणजी को चैन कहाँ थी? अब की बार आप बडी दृढ़ता के साथ पधारे, और बलि लेने के लिये अड

गये। लाचार राजा ने रोहित को बुला कर शुरू से आखिर तक की सारी परिस्थिति कह सुनाई। और अन्त में कहा कि—मैंने वचन दिया है, अत: तुम्हें अपना बलिदान देना होगा। राजकुमार ने स्पष्ट इन्कार कर दिया—कि मैं मरने के लिये बिलकुल तैयार नहीं हूँ। रोहित क्रुद्ध हो गया और अपना धनुषबाण लेकर वन में चला गया। इधर वरुण देव, बलि न मिलने के कारण राजा के ऊपर कोपायमान हो गये, फलत: राजा के जलोदर रोग उत्पन्न कर दिया। रोहित एक वर्ष तक निरन्तर वन में ही घूमता रहा। इस बीच में उसने सुना कि—पिताजी वरुण के शाप से जलोदर के रोग से पीड़ित हैं, इससे उसका दिल द्रवित हो गया। विचारने लगा कि—तुच्छ जीवन-मोह के कारण क्यों पिता को कष्ट में रक्खूँ? क्यों नहीं अपनी बलि देकर पिता को नीरोग करूँ? जब कि रोहित यह विचार कर वापस नगर में जाने को तैयार हुआ तो ब्राह्मण के रूप में स्वयं इन्द्र ने आकर रोहित को बहका दिया कि—घर जाकर क्या करेगा, वन में ही रह, तेरा कल्याण इसी बात में है। रोहित इन्द्र के बहकावे में आ गया, घर न जाकर वनमें ही रह गया। इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवें वर्ष में घर जाने का संकल्प किया, परन्तु प्रत्येक वर्ष इन्द्र उसे रोकता रहा। आखिर छठे वर्ष में दृढ़ विचार के साथ रोहित पिता से मिलने के लिये रवाना हो गया। रास्ते में आते हुए उसे अत्यन्त दरिद्र, भूखों मरता अजीगर्त ऋषि मिला। ऋषि के शुन:पुच्छ, शुन:शेप, तथा शुनोलांगूल नामक तीन पुत्र थे। बात चीत होने पर रोहित ने मँझले लड़के शुन:शेप को वरुण की बलि के लिये सौ गायों के बदले में खरीद लिया और उसे साथ लेकर खुशी-खुशी

पिता के पास पहुँचा। बलिदान के सम्बन्ध में पिता से कहा—'वरुण को तृप्त करने के लिये आप मेरे बदले में शुन शेप की बलि दे दीजिये। ऐसा करने से दोनों बातें सिद्ध हो जायँगी। मैं भी जीता रहूँगा और आप की व्याधि भी दूर हो जायगी।' वरुण देव के समक्ष जब यह निर्णय रक्खा गया तो उन्होंने भी प्रसन्नता के साथ स्वीकृति दे दी, क्योंकि क्षत्रिय की अपेक्षा ब्राह्मण उच्च एवं पवित्र माना गया है। शुन शेप जाति से ब्राह्मण था ही। बड़ी धूमधाम के साथ यज्ञ की तैयारी की गई। यज्ञ में विश्वामित्र को होता का, जमदग्नि को अध्वर्यु का, वशिष्ठ को ब्रह्मा का, और अयास्य को उद्गाता का काम सौंपा गया। जब कि शुन शेप को यूप—यज्ञस्तंभ में बाँधने का समय आया तो कोई भी ऋषि बाँधने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब शुन शेप के पिता अजीगर्त ने याचना की कि—अगर मुझे सौ गायें और देवें तो मैं अपने पुत्र को यूप में बाँध दूँ। राजा ने सौ गायें और दे दीं, और उसने बाँधने का काम पूरा कर दिया। अब शुन शेप को काटने-का मारने का प्रसंग उपस्थित हुआ। उक्त निर्दय कार्य के लिये भी कोई तैयार नहीं हुआ। इस बार अजीगर्त ने फिर कहा कि—मुझे सौ गायें और दीजिये मारने का काम भी मैं ही किये देता हूँ। वहाँ क्या विलम्ब था, सौ गायें दे दी गईं। सौ गायें मिलने पर अजीगर्त ने छुरी उठाई और एक बार में ही काम तमाम हो सके—एतदर्थ छुरी को शान पर तीक्ष्ण करने लगा। उस समय शुन शेप को निश्चय हो गया कि ये लोग मुझे एक साधारण पशु समझ रहे हैं, मेरे शरीर के खंड खंड कर के अग्नि में होम डालेंगे। अब सिवा देवताओं के मुझे इस संकट से उबारने वाला पृथ्वी पर और

कोई दूसरा नहीं है। अस्तु, मेरा भलाई इसी में है कि देवताओं की शरण में जाऊँ—उनकी प्रार्थना करूँ।

सबसे पहले वह प्रजापति की शरण में पहुँचा। प्रजापति ने अग्नि के पास, अग्नि ने सविता के पास और सविता ने वरुण के पास भेजा। वरुण ने कहा कि विश्वेदेवों की स्तुति करो। विश्वेदेवों ने कहा कि हम में सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है, अत: तुम इन्द्र की स्तुति करो, वह तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा। शुन शेप ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र ने प्रसन्न होकर सोने का रथ दिया और कहा कि अश्विनी कुमारों की स्तुति करो। इस भाँति एक एक करके सब देवताओं की स्तुति करने से शुन शेप के सब के सब बन्धन टूट गये और हरिश्चन्द्र राजा की बीमारी भी नष्ट होगई।

यह कथा मूलत संक्षेप से ऋग्वेद में अष्टक १, मंडल १, अध्याय २ अनुवाक ६, सूक्त २४ से ३० तक है। उक्त सात सूक्तों में वे मंत्र दिये गये हैं, जोकि खंभे में बँधे हुए शुन शेप ने भिन्न भिन्न देवों की स्तुति के रूप में बोले थे। ऋग्वेद की ही यह कथा उल्लिखित रूप में ऐतरेय ब्राह्मण के ३३ वें अध्याय में विस्तृत हुई है। आगे चल कर इसी कथा ने रामायण बालकाण्ड ६१ ६२ अध्याय में, मनुस्मृति, भागवत तथा विष्णुपुराण आदि में कुछ साधारण परिवर्तन के साथ सुन्दर उपाख्यान के रूप में स्थान पाया है।

प्रकृत कथा और शुन शेप के प्रार्थनामन्त्रों से, यह साराश निकलता है कि हरिश्चन्द्र के समय तक न तो जगत् सृष्टि चिन्तन है और न ईश्वर चिन्तन ही। अगर उस समय में ईश्वर सम्बन्धी विचार जनता में उद्भूत हो चुके होते तो अवश्य ही शुन शेप प्रजापति, मित्र, वरुण, अग्नि, विश्वेदेव तथा इन्द्र के

बदले ईश्वर की प्रार्थना करता। दूसरी बात यह है कि विश्वेदेवों ने शुनःशेप को जो यह कहा कि 'हम में इन्द्र सब मे श्रेष्ठ है, अत उसकी प्रार्थना कर।' यह न कह कर इसके बदले यह कहते कि—'ईश्वर सब से श्रेष्ठ है, अत एकमात्र उसी महाप्रभु की उपासना कर।' परन्तु यहाँ तो ईश्वर का नाम तक भी नहीं लिया गया। अस्तु, उक्त वस्तुस्थिति से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि यह समय एकेश्वर वाद का न होकर अनेक देववाद का था। ईश्वरवाद तथा सृष्टिवाद के अनेक युग पलट जाने के पश्चात् आज पर्यन्त भी अनेकदेववाद हिन्दू जाति में से नष्ट नहीं हो सका है। कई निम्न श्रेणी क लोगों द्वारा आज भी उसी रूप में देव देवी के नाम से उपासना—प्रार्थना होती है और यथा प्रसग बलि भी दी जाती है। कभी कभी तो समाचार पत्रों में नरबलि तक के भयकर रोमाचकारी समाचार पढने में आते हैं। क्या ये सब बातें प्राचीन देवसस्कृति की परिचायक नहीं हैं?

उस समय की यह मान्यता थी कि—"अगर देवता प्रसन्न रहें तो वे यथेष्ट धनधान्यादि सामग्री देकर हमें सुखी बना सकते हैं। और अगर कभी अप्रसन्न अर्थात् कुपित हो जायें तो हमें सब तरह से नष्ट भ्रष्ट कर सकते हैं।' अस्तु, उनको प्रसन्न करने के लिये यज्ञ यागादि क्रियाएँ की जाती थीं। सामान्यतौर पर इन देवों को कर्ता, हर्ता, रक्षक, नाशक कहा जा सकता है। ऋग्वेद सहिता के मत्रों से देवों के सम्बन्ध मे इतनी ही झलक मिलती है।

ये देव कितनी सख्या में हैं? इस सम्बन्ध में काफी मतभेद हैं। अस्तु वैदिक ऋषियों की भिन्न भिन्न मान्यताओं के कुछ उल्लेख यहाँ दिये जा रहे हैं।

कोई दूसरा नहीं है। अस्तु, मेरी भलाई इसी में है कि देवताओं की शरण में जाऊँ—उनकी प्रार्थना करूँ।

सबसे पहले वह प्रजापति की शरण में पहुँचा। प्रजापति ने अग्नि के पास, अग्नि ने सविता के पास और सविता ने वरुण के पास भेजा। वरुण ने कहा कि विश्वेदेवों की स्तुति करो। विश्वेदेवों ने कहा कि हम में सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है, अतः तुम इन्द्र की स्तुति करो, वह तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा। शुनःशेप ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र ने प्रसन्न होकर सोने का रथ दिया और कहा कि अश्विनी कुमारों की स्तुति करो। इस भाँति एक एक करके सब देवताओं की स्तुति करने से शुनःशेप के सब के सब बन्धन टूट गये और हरिश्चन्द्र राजा की बीमारी भी नष्ट होगई।

यह कथा मूलतः संक्षेप से ऋग्वेद में अष्टक १, मंडल १, अध्याय २, अनुवाक ६, सूक्त २४ से ३० तक है। उक्त सात सूक्तों में वे मन्त्र दिये गये हैं, जाकि खंभे से बँधे हुए शुनःशेप ने भिन्न भिन्न देवों की स्तुति के रूप में बोले थे। ऋग्वेद की ही यह कथा विस्तारित रूप में ऐतरेय ब्राह्मण के ३३ वें अध्याय में विस्तृत हुई है। आगे चल कर इसी कथा ने रामायण बालकाण्ड ६१ ६२ अध्याय में, मनुस्मृति, भागवत तथा विष्णुपुराण आदि में कुछ साधारण परिवर्तन के साथ सुन्दर उपाख्यान के रूप में स्थान पाया है।

प्रकृत कथा और शुनःशेप के प्रार्थनामंत्रों से, यह साराश निकलता है कि हरिश्चन्द्र के समय तक न तो जगत् सृष्टि चिन्तन है और न ईश्वर चिन्तन ही। अगर उस समय में ईश्वर सम्बन्धी विचार जनता में उद्भूत हो चुके होते तो अवश्य ही शुनःशेप प्रजापति, मित्र, वरुण, अग्नि, विश्वेदेव तथा इन्द्र के

असोमप हैं। सोमपायी सोम से तृप्त होते हैं, और असोमपायी यज्ञ में हवन किये जाने वाले पशुओं से तृप्त होते हैं।

(ऐतरेय ब्रा० २ । २ । ८)

ऋग्वेद में एक स्थान पर देवों की संख्या ३३३९ बतलाई है—

त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।

(ऋग्० १० । ५२ । ६)

अर्थ—तीन हजार तीनसौ तीस और नौ देवगण अग्नि की पूजा करते हैं। शतपथ ब्राह्मण (११।६।३।४) साख्यायन श्रौत सूत्र (८।२१।१४) आदि अन्य वैदिक ग्रंथों में भी ऊपर लिखे अनुसार ३३३६ देवता बताये गये हैं।

पुराणकाल मे तेतीस शब्द के साथ कोटि शब्द और जुड़ जाता है, फलत देवताओं की सख्या तेतीस से झट तेतीस करोड़ हो जाती है। देखिये—

सदारा विबुधा सर्वे स्वाना स्वाना, गणैं सह,
त्रैलोक्ये ते त्रयस्त्रिंशत्-कोटिसख्यतयाऽ भवन् ।

(पद्म० उ०)

अर्थ—इस त्रैलोक्य में देवता लोग अपनी अपनी स्त्रियों तथा अपने अपने गणों के साथ सब मिल कर तेतीस करोड़ हैं।

कोटि शब्द का अर्थ करोड़ सख्या बताने की कल्पना पौराणिक है। इतिहास वेत्ताओं ने तो यहाँ कोटि शब्द का अर्थ प्रकार किंवा वर्ग माना है और इससे देवताओं के तेंतीस प्रकार अथवा तेतीस वर्ग निश्चित होते हैं। इसके लिये,

उपास्य की अनेकता आगे चल कर उपासकों की अनेकता में परिणत हो जाती है और मानव समाज में पारस्परिक भेदभाव भी उत्पन्न कर देती है। देवताओं की अनेकता ने भी यही किया। ज्यों ज्यों ये देवता सम्बन्धी वैदिक मान्यताएँ आगे बढ़ती गईं और रूढ़ होती गईं त्यों त्यों तत्कालीन ऋषियों में भेदभाव का विष अधिकाधिक फैलता चला गया। और यह संघर्ष इतना आगे बढ़ा कि कुछ ऋषियों की तो देवताओं के प्रति एक प्रकार से अश्रद्धा ही हो गई थी। देखिये ऋग्वेद के एक ऋषि इन्द्र के सम्बन्ध में क्या कह रहे हैं—

नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह कई ददर्श कमभिष्टवाम।

(ऋग्० ८।१००।३)

अर्थ—नेम ऋषि कहता है कि इन्द्र नाम का कोई भी देवता नहीं है। उसे किसने देखा है? अस्तु, हम लोग किस की स्तुति करें?

उक्त मंत्र में स्पष्टरूप से इन्द्र के अस्तित्व से इन्कार किया गया है। वैदिक युग में सबसे बड़ा प्रभावशाली देवता इन्द्र ही माना गया है। जब कि उस इन्द्र के सम्बन्ध में ही ये विचार उठ खड़े हुए थे तो दूसरे छोटे देवताओं की तो बात ही क्या रही होगी? मनुष्य समाज का यह नैसर्गिक स्वभाव है कि वह उपास्य के रूप में थोड़ी सी संख्या वाले व्यक्तियों की ही श्रद्धा भक्ति के साथ उपासना कर सकता है। इसके विपरीत जब वह इधर उधर चारों ओर उपास्य व्यक्तियों के दल के दल देखता है तो सहसा संशयाकुल हो जाता है और धीरे धीरे एक दिन सर्वथा अश्रद्धालु बन जाता है। वैदिक ऋषियों ने जब इस भाँति तख्ता उलटता देखा तो उन्होंने बड़ी समझ-

'हिंद तत्व ज्ञान नो इतिहास'' पूर्वार्द्ध पृष्ठ ७ का टिप्पण देख लेना उपयुक्त होगा। वहाँ लिखा है कि 'द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र अष्टवसु, इन्द्र और प्रजापति मिल कर तेंतीस देव कोटि अर्थात् वर्ग हैं।' कोटि का करोड़ अर्थ होकर तेंतीस करोड़ देवों की प्रथा लोक में बाद में प्रचलित हुई है।

'देवउत्त' शब्द

गाथोक्त मौलिक 'देवउत्त' शब्द का टीकाकार ने 'देवैर्गुप्त' ऐसा दूसरा अर्थ किया है, वह प्रस्तुत अनेकेश्वरवाद में ठीक ठीक लागू पड़ता है। क्योंकि उस समय के वैदिक लोग अग्नि, मित्र, वरुण, इन्द्र आदि अनेक देवों को अपने संरक्षक माना करते थे। उनकी मान्यता थी कि "मनुष्य आखिर मनुष्य है। वह संकट पड़ने पर अपने आप अपनी रक्षा नहीं कर सकता। संकट काल में एकमात्र देवताओं का कृपाभाव ही रक्षक हो सकता है।" अस्तु प्रस्तुत मान्यता की ठीक तरह संगति बैठाने के लिए गाथा में आए हुए लोक शब्द से अपने आसपास का आँखों से देखा जाने वाला प्रत्यक्ष लोक ही समझना चाहिए। मालूम होता है कि प्राचीनतम वैदिक युग के ऋषियों की दृष्टि अधिक व्यापक रूप से नहीं फैली थी। उनका दृष्टि कोण बहुत छोटी सी अपनी कौटुम्बिक दुनिया तक ही सीमित था। यही कारण है कि अधिकांश वैदिक ऋषि देवताओं के दरबार में एकमात्र अपना, अपने कुटुम्ब का, अपने पशुओं का रक्षण तथा अपने शत्रुओं का विनाश-माँगते देखे जाते हैं। अतः समस्त 'देव उत्त' शब्द का 'देवैर्गुप्त' देवताओं से रक्षित ऐसा बहुवचन सर्वथा उपयुक्त ही है।

अर्थ—देवताओं की जब गणना हुई, तब सब देवताओं में मात्र तीन देवता ही मुख्य ठहरे—वायु, आदित्य और पर्जन्य। क्योंकि ये तीनों ही ससारी मनुष्यों के कर्मानुसार क्रमश चलते हैं, तपते हैं और बरसते हैं।

पाठक देख सकते हैं कि उक्त मन्त्र में स्पष्टत सब देवताओं का तीन देवताओं में ही समावेश कर दिया है। इतना ही नहीं आगे चलकर तो अनेकदेववाद पर बड़ा कर्कश आघात किया है और समन्वय करते करते सब देवताओं के स्थान मे बस एक ही देवता को रख लिया है। देखिये—

इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

(ऋग्० १। १६४। ४६)

अर्थ—पडित लोग आदित्य को इन्द्र, मित्र, वरुण तथा अग्नि कहा करते हैं। वही सुपर्ण और गरुत्मान् है। उसी को अग्नि, यम और मातरिश्वा भी कहते हैं। य सब वास्तव में एक ही हैं। तथापि विद्वान् उन्हें अनेक नामों से पुकारते हैं।

यही बात शतपथ ब्राह्मण म भी स्पष्टत कही गई है—

तद् यदिदमाहुरमु यजामु यजेत्येकैक देवमेतस्यैव, सा विसृष्टिरेष उह्येव सर्वे देवा।

(शत० ब्रा० १४। ४। २)

अर्थ—जहाँ कहीं एक एक देवता को उद्देश्य करके जो यह कहा गया है कि इसका यज्ञ करो या उसका यज्ञ करो वह सब इस एक की ही सृष्टि है। यह एक ही सर्वदेवरूप है। अर्थात् एक के ही अनेक नाम हैं।

द्वारा स काम लिया, और देवताओं की तूफान के समान निरंतर बढ़ती जाने वाली संख्या को रोक कर पहले बनी हुई संख्या म स कमी करनी शुरू कर दी।

निरुक्तकार के मत से तीन देवता

निरुक्तकार यास्क ने सब देवताओं का मात्र तीन देवताओं में ही समावेश कर दिया है। वह इस प्रकार है —

> तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता । अग्निः पृथ्वीस्थानो, वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थान, सूर्यो द्युस्थान । तासा महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति । इतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयश्च ।
>
> (नि० दै० ७ । २ । १)

अर्थ—निरुक्तकार कहते हैं कि —तीन ही देवता हैं। पृथ्वी स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्षस्थानीय वायु अथवा इन्द्र, और द्युस्थानीय सूर्य। ये तीनों देवता बड़े ही भाग्यशाली हैं अत एक एक देवता के अनेकानेक नाम होगये हैं। ये एक दूसरे से परस्पर जन्म लेने वाले और परस्पर समान प्रकृति वाले हैं।

यह कल्पना मात्र यास्क का या उससे पहले के निरुक्तकारों का ही हो यह बात नहीं है। स्वयं ऋग्वेद के मूल मन्त्रों पर से ही इस मान्यता के उद्गम का पता चलता है। निम्नोक्त अवतरण से यह बात अच्छी तरह समझ में आ सकेगी।

> देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
> त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥
>
> (ऋग्० १० । २७ । २३)

अर्थ—देवताओं की जब गणना हुई, तब सब देवताओं में मात्र तीन देवता ही मुख्य ठहरे—वायु, आदित्य और पर्जन्य। क्योंकि ये तीनों ही संसारी मनुष्यों के कर्मानुसार क्रमशः चलते हैं, तपते हैं और बरसते हैं।

पाठक देख सकते हैं कि उक्त मन्त्र में स्पष्टतः सब देवताओं का तीन देवताओं में ही समावेश कर दिया है। इतना ही नहीं आगे चलकर तो अनेकदेववाद पर बड़ा कर्कश आघात किया है और समन्वय करते करते सब देवताओं के स्थान में बस एक ही देवता को रख लिया है। देखिये—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋग्० १।१६४।४६)

अर्थ—पंडित लोग आदित्य को इन्द्र, मित्र, वरुण तथा अग्नि कहा करते हैं। वही सुपर्ण और गरुत्मान् है। उसी को अग्नि, यम और मातरिश्वा भी कहते हैं। ये सब वास्तव में एक ही हैं। तथापि विद्वान् उन्हें अनेक नामों से पुकारते हैं।

यही बात शतपथ ब्राह्मण में भी स्पष्टतः कही गई है—

तद् यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव, सा विसृष्टिरेष उह्येव सर्वे देवाः।

(शत० ब्रा० १४।४।२)

अर्थ—जहाँ कहीं एक एक देवता को उद्देश्य करके जो यह कहा गया है कि इसका यज्ञ करो या उसका यज्ञ करो वह सब इस एक की ही सृष्टि है। यह एक ही सर्वदेवरूप है। अर्थात् एक के ही अनेक नाम हैं।

अर्थ—यद्यपि एक ही संसार रूपी वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा दोनों समान सम्बन्ध से रहे हुए हैं। तथापि उनमें से जीवात्मा भोगों में आसक्त होने के कारण शोक तथा मोहजन्य दुःख का अनुभव करता है। इसके विपरीत परमात्मा शोक मोह आदि से सर्वथा रहित है। जब जीवात्मा भी योगाभ्यास द्वारा ज्ञानज्ञेय परमात्मा को देखता है, तब वह भी वीतशोक हो जाता है।

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो, यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।

(श्वेताश्व० ६।६)

शांकरभाष्ये—आत्मा यद्यपि संसारवृक्षकालाद्याकृतिषु तत्तदाकाररूपेणैव तत्र तत्र प्रविष्टः ।

भाष्यकार ने मूलोक्त वृक्ष शब्द का अर्थ संसार रूप वृक्ष किया है।

वेदों और उपनिषदों में तो इस सम्बन्ध में मात्र संक्षिप्त संकेत ही मिलता है। परन्तु महाभारत में तो उक्त वृक्ष का बड़े विस्तार से साथ साङ्गोपाङ्ग वर्णन उपलब्ध होता है। देखिये—

अव्यक्त बीजप्रभवो बुद्धिस्कन्धमयो महान्।
महाहंकारविटप इन्द्रियान्तरकोटरः ॥ १२ ॥
महाभूतविशाखश्च विशेषप्रतिशाखवान्।
सदापर्णः सदापुष्पः शुभाशुभफलोदयः ॥ १३ ॥
आजीव्यः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः।
एनं छित्वा च भित्वा च तत्त्वज्ञानासिना बुधः ॥१४॥
हित्वा सङ्गमयान् पाशान्
निर्ममो निरहंकारो मुच्यते नात्र

भावार्थ—अव्यक्त प्रकृति जिसका बीज है, बुद्धि महान जिसका स्कन्ध है, अहंकार जिसका प्रधान पल्लव है, मन और दस इन्द्रियाँ जिसके अन्तर्गत कोटर हैं, सूक्ष्म महाभूत—पाँच तन्मात्राएं जिसकी बड़ी बड़ी शाखाएं हैं, स्थूल महाभूत जिसकी छोटी छोटी शाखाएँ हैं, ऐसा सदा पत्र, पुष्प तथा शुभाशुभ फल धारण करने वाला समस्त प्राणियों का आधारभूत सनातन विश्व वृक्ष है। विवेकी पुरुष का कर्तव्य है कि उक्त वृक्ष को तत्त्वज्ञान रूप खड्ग के द्वारा छेदन भेदन करके दूर करे। जो पुरुष जन्म, जरा और मृत्यु उत्पन्न करने वाले संगमय पाशों का परित्याग कर ममता और अहंकार रहित बनता है वह सदा के लिए संसार बंधन से मुक्त हो जाता है, इसमें जरा भी संशय नहीं है। १२-१३ १४ १५।

इसी संसार वृक्ष का वर्णन गीता में भी किया गया है, परन्तु वहाँ उसका एक और विशेष रूप चित्रित किया गया है। साधारण वनस्पति का मूल भाग नीचे की ओर पृथ्वी में रहता है और ऊर्ध्व भाग शाखा आदि सब ऊपर की ओर रहता है। परन्तु संसार वृक्ष की दशा इसके सर्वथा विपरीत है।

लोक—जगत् को वृक्ष की उपमा

संसार को वृक्ष की उपमा देना, कुछ आजकल की कल्पना नहीं है। बहुत प्राचीन काल से यह रूपक चला आ रहा है। प्राचीन से प्राचीन रूपक ऋग्वेद के प्रथम मंडल में मिलता है। देखिये —

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
(ऋग्० १।१६४।२०)

अर्थ—समान सम्बन्ध रखने वाले, मित्र के समान वर्तन वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) संसाररूपी वृक्ष के आश्रित रहते हैं। इनमें से एक पक्षी (जीवात्मा) पिप्पल = पुण्य पाप जन्य सुख दुःख रूप परिपक्व फल को रस पूर्वक खाता है, जब कि दूसरा पक्षी (परमात्मा) उस फल को न खाकर केवल देखता रहता है।

ऊर्ध्वमूलोऽवाकशाख एषोश्वत्थ सनातन । (कठो० २ । २ । १)

उक्त वृक्ष का नाम यहाँ गीता और कठ में तो पिप्पल दिया हुआ है। कुछ ग्रंथों में वड वृक्ष और उदुम्बर वृक्ष भी बतलाया है। नाम के सम्बन्ध में कुछ अधिक विवाद नहीं है, मन सन्तोष के लिये जो भी हो उसी से काम चल सकता है। परन्तु उक्त वर्णन से खास समझने की बात है तो यह है कि संसार एक वृक्ष है, और इसलिये वह किसी का बोया हुआ होना चाहिए। कोई भी वृक्ष बिना बोये नहीं उगा करता। जब कि यह धारणा निश्चित हो जाती है कि संसार वृक्ष है और वह बोया हुआ ही उत्पन्न हुआ है तब एक प्रश्न और उठ खड़ा होता है कि—किस का बोया हुआ है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि "देवउत्तो देवेनोप्त" अर्थात् 'अनेक देवों में से सब से बड़े देव के रूप में चुने हुए एक देव ने यह संसार वृक्ष बोया है' ऐसा संहिता काल के ऋषियों की तरफ से जगत् रचना के सम्बन्ध में प्राथमिक उत्तर मिलता है।

श्रद्धेय शीलांग सूरि ने देवउत्त देवपुत्त का तीसरा अर्थ देवपुत्र भी किया है। देवपुत्त शब्द मौलिक है और उसका संस्कृत रूप देवपुत्र बनता है। देवपुत्र का देवउत्त कैसे बन गया ? प्राकृत भाषा में कितने ही ऐसे विशेष स्थल हैं जहाँ ९ का लोप हो जाता है - स्वर शेष रह जाता

है। यह स्थल भी उन्हीं में से है, अत 'देवपुत्र' का 'देवउत्त' व्याकरण की दृष्टि से बिल्कुल ठीक सिद्ध हो जाता है। यह तो हुई शब्द सिद्धि की बात। अर्थ विचारणा में देवपुत्र का अर्थ— 'देवस्य पुत्र देवपुत्र' अर्थात् 'देव का पुत्र' यह होता है। अनेक देवों में से एक देव की श्रेष्ठता तो पहले सिद्ध कर ही आये हैं। अतएव यहाँ 'देवस्य' यह एक वचन बिल्कुल उचित ही है। पिता के स्थान में देव का ग्रहण है और पुत्र के स्थान में लोक अर्थात् जगत् का ग्रहण किया है

उपर्युक्त निर्णय हो जाने के पश्चात् एक प्रश्न और शेष रहता है। वह यह कि देव और लोक का पिता पुत्र के रूप में व्यवहार कहाँ किस ग्रंथ में बतलाया गया है? विचार चर्चा में कोई भी बात निराधार यों ही मान्य नहीं हो सकती। इसके उत्तर में वैदिक दर्शन की ओर से ही कहा जाता है। ऋग्वेद आदि अनेक स्थानों पर यह पिता पुत्र सम्बन्धी व्यवहार स्पष्टत सूचित है। देखिये—

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥

(ऋग् १।१६४।३३)

भावार्थ—द्युलोक अर्थात् आदित्य, (किसी किसी ठिकाने द्युलोक का अर्थ इन्द्र अथवा पर्जन्य = मेघ भी किया है) मेरा पिता—पालक एवं जनिता = उत्पादक है। कारण कि—नाभि रूप सोम रस है, जिससे अन्न निष्पन्न होता है, अन्न से वीर्य होता है और फिर उससे मनुष्य पैदा होता है। इसी भाँति यह विशालकाय पृथ्वी माता है—मातृ स्थानीय है। द्युलोक और पृथिवी दोनों के ठीक बीच में अन्तरिक्ष है, वह योनि है। उस

में सूर्य (इन्द्र या मेघ) दूरस्थित पृथिवी में गर्भ धारण कराता है। यहा गर्भ स अभिप्राय वृष्टि से है।

उक्त मन्त्र में सबसे बड़े देव आदित्य या इन्द्र को पिता के रूप में कल्पित किया है। उसी से मनुष्य, पशु, पक्षी वगैरह का उत्पन्न होना एव उसी से पालित पोषित होना बतलाया गया है। अस्तु, सूत्रकृताग म सृष्टिरचना सम्बन्धी वैदिक मान्यताओ का उल्लेख करते हुए जो यह लिखा है कि लोक देव का पुत्र है, यह कपोल-कल्पित नहीं है, प्रत्युत वेद मूलक है। और भी अधिक स्पष्टता चाहिये तो दशम मडल की निम्नोक्त ऋचा पर और विचार कर सकते हैं।

यो न पिता जनिता यो विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवाना नामधा एक एव, त सप्रश्न भुवना यन्त्या॥
(ऋ० १०।८२।३)

अर्थ—जो हमारा (चराचर का) पिता (रक्षक) जन्म दाता-विधाता है, जो विश्व के समस्त धामों को जानता है, जो अनेक देवों के नाम धारण कर के भी एक = अद्वितीय देव है, उसको जानने के लिए अखिल ब्रह्माड उत्सुक है।

प्रस्तुत ऋचा में भी अनेक नाम धारी एक (इन्द्रादि) का जगत के पिता के रूप म उल्लेख किया है। वेद म ही नहीं, उपनिषदों में भी इस प्रकार के अनेक अवतरण मिल सकते हैं परन्तु विस्तारभय के कारण यहाँ उन्हें छोड दिया गया है।

बमउत्ते = ब्रह्मोप्त।

गाथा क चतुर्थ चरण म 'बंभउत्त' शब्द आया है। मौलिक 'उत्त' का सस्कृत रूप 'उप्त' होता है और इसका अर्थ वही है, जो कि 'देवउत्त' शब्द के विवेचन में बतलाया गया है। अत

इस सम्बन्ध में कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। वृक्ष की उपमा सामान्यत दोनों जगह लागू होती है। बल्कि महाभारत के उपर्युक्त श्लोक १३ में तो 'ब्रह्म वृक्ष सनातन' ही कहा है। अर्थात् जगत को स्पष्ट शब्दों में ब्रह्म वृक्ष ही बतलाया है। अतएव प्रस्तुत स्थल पर भी उस शब्द का समन्वय करने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती है। अब तो जो कुछ भी बात शेष रहती है, वह मात्र ब्रह्म शब्द की रहती है। देव शब्द का स्थान ब्रह्म शब्द ने कब और किस प्रकार लिया है, यही एक प्रश्न है। इस सम्बन्ध में पहले दार्शनिक जगत् का थोडा इतिहास देख लेना आवश्यक है।

आधिभौतिक में से आध्यात्मिक चिन्तन।

संहिताकाल के आधिभौतिक विचार कर्मकाड म परिणत हो कर ब्राह्मण काल में आधिदैविक रूप में निकसित होते हैं। और आगे चल कर वे ही विचार उपनिषद् काल में आध्यात्मिक भावना के रूप में प्रस्फुटित होते हैं। सक्षेप मे यह निष्कर्ष निकला कि—कर्मकाड आधिभौतिक, उपासना आधिदैविक और ज्ञानकाड आध्यात्मिक चिन्तन का परिणाम है। आधिभौतिक चिन्तन में से आध्यात्मिक चिन्तन का विकास करने वाले महर्षियों में सबसे प्रथम नम्बर पर शाडिल्य महर्षि और श्वेतकेतु के पिता उद्दालक आरुणि महर्षि आते हैं। दोनों का वर्णन छादोग्य उपनिषद् में मिलता है। सर्व प्रथम महर्षि शाडिल्य का चिन्तन इस प्रकार है —

सर्वं खल्विद ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।

(छांदो० ३।१४)

अर्थ—आँखों से यह जो कुछ भी देखने में आता है, वह

जान लिये जाते हैं। क्योंकि मृत्तिका रूप कारण से कार्यरूप विकार उत्पन्न होता है। और उस विकार के जो भिन्न भिन्न नाम लिए जाते हैं वे सब वाणी से शुरू होते हैं, अत कथन मात्र हैं, वास्तविक सत्य नहीं है। वास्तव में तो उनमें एक मात्र मृत्तिका ही सत्य है।'

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यात्। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्। (छांदो० ६।१।५)

अर्थ—पूर्ववत्। लोहमणि अर्थात् सुवर्ण।

यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्यात्। वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कार्ष्णायसमित्येव सत्यम्।(छांदो० ६।१।६)

अर्थ—पूर्ववत्। कार्ष्णायस अर्थात् लोह।

ऊपर के तीनों दृष्टान्तों से जिस प्रकार यह सिद्ध होता है कि—कार्यरूप विकार केवल कथन मात्र हैं—वास्तव में कारण ही सत्य पदार्थ है, ठीक उसी प्रकार अखिल जगत भी विकार होने के कारण असत्य है, और उसका मूल कारण जो ब्रह्म है वस्तुत वही एकमात्र सत्य है।

ब्रह्मविद्या का आरंभ काल

आध्यात्मिक चिन्तन के रूप में ब्रह्मविद्या का यह आरभ काल गिना जा सकता है। ब्रह्मविद्या का इससे अधिक स्पष्टीकरण याज्ञवल्क्य से शुरू होता है। याज्ञवल्क्य का अपने चचा एव गुरु वैशपायन के साथ किसी एक बात पर विरोध हो गया था, फलस्वरूप याज्ञवल्क्य का वेद विद्या से बहिष्कार कर दिया गया था। इस पर आप हिमालय चले गए और वहाँ सूर्याराधन सम्बन्धी कठोर तपश्चरण करके यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा का स्वतन्त्र रूप से निरूपण किया। प्राचीन शाखा कृष्ण

अर्थ—मनुष्य का प्रयत्न निष्फल न जाने पाए, इसलिए कर्मफल प्रदाता के रूप में ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है।

दूसरा वादी शंका करता है कि—ऐसा मानने से तो पुरुष कर्म के बिना भी फल की प्राप्ति होगी, कारण कि—ईश्वर की इच्छा नित्य है।

ईश्वरवादी उत्तर देता है कि—पुरुष कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है, अतः तुम्हारा यह हेतु हेत्वाभास है—अर्थ साधक नहीं है।

ईश्वर को कर्मफल दाता के रूप में स्वीकार करने वाले ईश्वरवादी के ऊपर कहे हुए तीन सूत्रों को गौतम मुनि ने अपने न्याय दर्शन में स्थान जरूर दिया है, परन्तु वे दूसरे की मान्यता के रूप में हैं अपनी मान्यता के रूप में नहीं। इस से यही कहा जा सकता है कि—पतञ्जलि मुनि के समान गौतम ने ईश्वरवाद को स्वीकार नहीं किया है। कपिल के समान निषेध भी नहीं किया है और कणाद के समान इस सम्बन्ध में कुछ भी न कहने के लिए मौन भी नहीं रक्खा है। हाँ, दूसरे की मान्यता को अपने सन्दर्भ में मात्र स्थान दिया है। यह मान्यता भाष्यकार तथा टीकाकारों को इष्ट होने के कारण अथवा यों कहिए कि अपनी मान्यता के सम्बन्ध में अनुकूल एवं समर्थक मालूम होने के कारण भाष्यकार तथा टीकाकार दोनों ही ने गौतम महर्षि के अपने निजी सूत्रों के रूप में उन पर अपनी ओर से गहरी छाप लगा दी है। भाष्यकार वात्स्यायन ने सूत्र के बिना भी स्वतन्त्ररूप से अपने न्याय भाष्य में ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार प्रदर्शित किया है—

"गुणविशिष्टमात्मान्तरमीश्वर । तस्यात्मकल्पात् कल्पान्तरानुपपत्ति । अधर्ममिथ्याज्ञानप्रमादहान्या धर्मज्ञानसमाधिसम्पदा च विशिष्टमात्मान्तरमीश्वर , तस्य च धर्मसमाधिफलमणिमाद्यष्टविधमैश्वर्यं सकल्पानुविधायी चास्य धर्मः प्रत्यात्मवृत्तीन् धर्माधर्मसचयान् पृथिव्यादीनि च भूतानि प्रवर्तयति । एव च स्वकृताभ्यागमस्यालोपेन निर्माणप्राकाम्यमीश्वरस्य स्वकृतकर्मफल वेदितव्यम् ।"

अर्थ—गुण विशेष से युक्त एक प्रकार का आत्मा ही ईश्वर है। ईश्वर आत्म तत्त्व से कोई पृथक् वस्तु नहीं है। अधर्म, मिथ्या ज्ञान तथा प्रमाद उसमें बिल्कुल नहीं है। इसके विपरीत धर्म, ज्ञान तथा समाधि संपदा से वह पूर्णतया युक्त है। अर्थात् धर्म, ज्ञान और समाधि विशिष्ट आत्मा ही वास्तव में ईश्वर है। धर्म तथा समाधि के फलस्वरूप अणिमा आदि आठ प्रकार का ऐश्वर्य उसके पास है। ईश्वर का धर्म सङ्कल्पमात्र से उत्पन्न होता है, किसी प्रकार के क्रियानुष्ठान से नहीं। ईश्वर का वह धर्म ही प्रत्येक आत्मा के धर्माधर्मसचय को तथा पृथिवी आदि भूतों को प्रवर्ताता है—अर्थात् प्रवृत्ति कराता है। इस प्रकार स्वीकार करने से स्वकृताभ्यागम का लोप न होकर ईश्वर का सृष्टि निर्माणादि कार्य स्वकृत कर्म का फल ही जानना चाहिए।

मत का खडन और ईश्वर का समर्थन।

भाष्यकार मत का खण्डन और ईश्वर का समर्थन करते हुए कहते हैं कि—

"न तावदस्य बुद्धि विना कश्चिद् धर्मो लिङ्गभूत शक्य उपपादयितुम् । बुद्ध्यादिभिरयात्मलिङ्गैर्निरुपाख्यमीश्वर प्रत्यक्षानुमानागमविषयातीत क शक्त उपपादयितुम् । स्वकृताभ्यागमलोपेन च प्रवर्तमान-

स्यास्य मनुष्क प्रतिषेधमात । अकर्म निमित्ते शरीर सर्गे सर्वं प्रसज्येत ।"

अर्थ—बुद्धि क अतिरिक्त और कोई धर्म इश्वर की उपपत्ति या सिद्धि करने में लिङ्ग=हेतु नहीं बन सकता । ब्रह्म में तो बुद्धि आदि धर्म माने नहीं जाते, फिर बतलाइये प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम क सर्वथा अविषय भूत ब्रह्म की कौन सिद्धि कर सकता है? तथा उसमें सृष्टिजनक स्वकृत धर्म रूप कर्म का अभ्यागम स्वीकार नहीं किया गया फलत अकर्मनिमित्तक शरीरसर्ग की मान्यता में जितने दोष आते हैं वे सब दोष यहाँ ब्रह्म सृष्टि में भी ज्यों के त्यों उपस्थित होंगे । उनका परिहार कैसे हो सकेगा ?

भाष्यकार का आशय क्या है ? पाठक ऊपर के उद्धरणों से बहुत कुछ समझ गये होंगे ? भाष्यकारक माने हुए ईश्वर म बुद्धि सकल्प आदि होने क कारण सकल्प स सृष्टिजनक धर्मरूप कर्म उत्पन्न होता है और उसके द्वारा सृष्टि निर्माण का कार्य संभव बनाया जाता ह । परन्तु ब्रह्म में तो बुद्धि सकल्प आदि कुछ भी न होने से सृष्टिजनक कर्म नहीं उत्पन्न हो पाता है, फलत सृष्टि निर्माण भी सर्वदा सर्वथा असभवित ही बना रहता है । तथा ब्रह्म का जानने के लिए कोइ प्रमाण भी नहीं है, अत प्रमाण बहिर्भूत ब्रह्म को कौन बुद्धिशाली मान सकता है ? इस प्रकार ब्रह्मवाद को पराजित करने क लिए इश्वर वाद का विस्तार शुरू हुआ । भाष्यकार की तरफ से इश्वरवाद पर इस भाँति स्वीकार सूचक छाप लग जाने स न्याय कुसुमाञ्जलि, न्याय वार्तिक, न्याय मजरी, न्याय कन्दली आदि अनेकानेक न्याय ग्रन्थों में इश्वरवाद अधिकाधिक पल्लवित होता चला गया ।

ब्रह्मवाद के अनन्तर ईश्वरवाद का प्रादुर्भाव होने से दोनों का पौर्वापर्य स्पष्ट हो जाता है। अतएव 'बभउत्त' के पश्चात् 'ईसरेण कडे लोए' अर्थात् यह जगत् ईश्वरकृत है, ऐसा ईश्वरवादी का कहना है। अन्त में ईश्वर कैसा है ? यह खुद ईश्वर के ही शब्दों में देखिये —

ईश एवाहमत्यर्थं न च मामीशते पर । ददामि च सदैश्वर्यमीश्वर स्तेन कीर्त्यते । (६८ ०पु०)

अर्थात्—मैं सब के ऊपर अत्यन्त सामर्थ्य रखता हू। मुझ पर किसी की सत्ता नहीं है। मैं ही हू, जो अपने भक्तों को अणिमा आदि ऐश्वर्य दे सकता हूँ। इस कारण मैं ईश्वर कहलाता हूँ।

प्रकृतिवाद

देव, ब्रह्म और ईश्वर ये तीनों चेतनरूप या आत्मारूप होने से एक पक्षी-चेतन पक्षी हैं। अर्थात् चैतन्य सत्ता की अपेक्षा से तीनों एक ही श्रेणि में आते हैं हालाकि तीनों की प्रक्रिया में काफी अन्तर है, फिर भी चैतन्य का साम्य तीनो को एकता की ओर ले आता है। अस्तु, यहाँ तक जगत्कर्तृत्व का अधिकार चैतन्य आत्मा को मिला हुआ है। अब साख्य दर्शनकार आते हैं, जो सृष्टि निर्माण की सम्पूर्ण सत्ता जड़ के हाथों में सौंप देना चाहते हैं। जरा उनके विकास की भूमिका का भी अवलोकन कीजिये।

जगत् चेतन और अचेतन उभयतत्व से मिश्रित है। ब्रह्मवाद के सम्बन्ध में एक बडी भारी शका यह उत्पन्न होती है कि— चेतन ब्रह्म में से अचेतन—शरीर तथा परमाणु आदि किस प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं ? साख्यदर्शन इसका सीधा उत्तर

देता है कि—मात्र चेतन उपादान से ही अचेतन जगत् उत्पन्न होना चाहिए। ब्रह्म चेतन है, जब कि प्रकृति अचेतन है। ब्रह्म निर्गुण है, जब कि—प्रकृति सगुण अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमोगुणमय है। जगत् में भी तीनों गुण देखे जाते हैं। अस्तु, निर्गुण ब्रह्म से त्रिगुणात्मक जगत् का आविर्भाव होना सर्वथा असम्भव है। प्रकृति से ऐसा असंभव नहीं है, क्योंकि प्रकृति परिणामशील है। अतः उससे यह सब जगत् का प्रपंच उत्पन्न हो सकता है।

सांख्य दर्शन को समझने के लिए प्रकृति और विकृति इन दोनों शब्दों का स्वरूप समझ लेना अत्यावश्यक है। उपर्युक्त सत्त्व रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है और विषमावस्था का नाम विकृति है। यह सिद्धान्त आगम प्रमाणसिद्ध है। देखिए—

> अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्।
> अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥
> (श्वेताश्व० ४।५)

अर्थ—एक पुरुष = आत्मा लोहित—रजोगुण, शुक्ल सत्त्वगुण और कृष्ण—तमोगुणमय, अजा—कभी उत्पन्न न होने वाली अनादि, विकार रहित, अनेक असंख्य प्रजा पदार्थों को उत्पन्न करती हुई प्रकृति का सेवन करता हुआ उसमें मग्न रहता है। जब कि दूसरा पुरुष—आत्मा भोगी हुई प्रकृति को छोड़कर अलग हो जाता है। पहला संसारी आत्मा और दूसरा मुक्त आत्मा समझना चाहिए।

पुराणकारों ने तो इस प्रकृति को देवी का रूप दे दिया है—

> प्रकृष्टवाचक प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचक।
> सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृति सा प्रकीर्तिता ॥

गुणे प्रकृष्टे सत्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ ।
मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्दस्तमसि स्मृत ॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमा वता ।
प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥

(ब्रह्म० वै० २।१ ६ ७)

अर्थ—'प्रकृति' शब्द में प्रशब्द प्रकृष्ट अर्थ का वाचक है तथा कृति शब्द सृष्टि वाचक है। अर्थात् सृष्टि रचना के कार्य में जो प्रकृष्ट देवी है वह प्रकृति कही जाती है। श्रुति में कहा है कि प्रकृष्ट सत्वगुण में प्रशब्द की वृत्ति है, मध्यम रजोगुण में कृशब्द की वृत्ति है और तामस गुण में तिशब्द की वृत्ति है। प्रआदि तीन अक्षरों के मेल से बना हुआ प्रकृति शब्द सत्व, रज और तमोगुण युक्त प्रकृतिरूप अर्थ बतलाता है। अर्थात् जो त्रिगुणात्मक स्वरूपवाली है, सर्व प्रकार की शक्तियों से युक्त है, सृष्टि रचने में प्रधान=मुख्य कारण है, वह प्रकृति कहलाती है।

प्रकृति के पर्याय

प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त, जगद्योनि, जगद्बीज आदि अनेक पर्याय हैं। काल दृष्टि से प्रकृति अनादि अनन्त है। प्रलयकाल में तीनों गुणों की साम्यावस्था रहती है, अत प्रलयकाल में प्रकृति शब्द पूर्णतया सार्थक है। उस समय इसका स्वरूप अव्यक्त तमस् रूप रहता है। जब कि सृष्टिकाल में गुणवैषम्य होने पर प्रकृति व्यक्तरूप होती है, तब प्रधान शब्द अधिक सार्थक बनता है। सूत्रकृताग सूत्र में प्रकृति अर्थ वाले प्रधान शब्द का प्रयोग किया है—'पहाणाइ तहावरे'। 'पहाण' यह प्रधान शब्द का प्राकृत रूप है। वेदान्तियों ने वेदों की जिन

न त सयं कडं दुक्ख कओ अन्नकडं च णं।
सुहं वा जइ वा दुक्खं सेहियं वा असेहियं॥
सयं कडं न अन्नेहिं वेदयंति पुढो जिया।
संगइयं तहा तेसिं इहमेगेसिमाहियं॥
(सूय० १।१।२)

अर्थ—सुख और दुःख अपने पुरुषार्थ से निष्पन्न होते हैं, तब फिर अन्य कृत तो होंगे ही कहाँ से! अतः वे (सिद्धि सम्बन्धी), और असैद्धिक सभी सुख दुःख जीव पुरुषार्थ से किए हुए नहीं भोगते हैं। वैसे ही दूसरे के पुरुषार्थ से किए हुए भी नहीं भोगते हैं। किन्तु यह सब सुख दुःख परंपरा सांगतिक अर्थात् नियति प्राप्त है, इस प्रकार कई एक वादियों का कहना है।

नियति शब्द का स्पष्ट अर्थ क्या है? यह जानने के लिए नीचे का श्लोक देख लेना आवश्यक है—

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः॥
(सूय० टी०)

उपासक दशांग के सातवें अध्ययन में गोशालक के श्रावक सकडालपुत्र कुम्हार के साथ—जो कि पीछे से महावीर स्वामी के श्रावक बन गए थे—भगवान महावीर स्वामी का जो वार्तालाप मिलता है उस से यह सिद्ध हो जाता है कि आजीविक मत में नियतिवाद मुख्य सिद्धान्त था।

यदृच्छावाद

अचानक-एकाएक हो जाते हैं। कॉटे में जो अग्र भाग पर तीक्ष्णता है उसका कुछ भी कारण नहीं है। उपाय से या किसी निमित्त से अगर मनुष्य का बचाव हो सकता हो तो फिर कोई भी साधन सपन्न मनुष्य दु:खी नहीं हो सकता, राजा महाराजा तो कभी मरें ही नहीं ? परन्तु ऐसा होता नहीं है। कहा भी है –

"अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षित सुरक्षित दैवहत विनश्यति।"

"दैवी विचित्रा गति।"

दैववाद या कुदरतवाद का भी इसी में समावेश हो सकता है। वस्तुत देखा जाय तो अकारणवाद या अनिमित्ततावाद का ही अपर नाम यदृच्छावाद है। अनिमित्ततावाद का उल्लेख सुप्रसिद्ध न्यायदर्शन में भी आया है। वहाँ चौथे अध्याय के प्रथम आह्निक में लिखा है कि—

अनिमित्तता भावोत्पत्ति कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्।

(न्या० सू० ४ । १ । २२)

अर्थ—शरीरादि भाव की उत्पत्ति, निमित्त कारण के बिना केवल उपादान मात्र से होती है। क्योंकि काँटे में तीक्ष्णता का भाव इसी प्रकार का देखा जाता है।

महाभारत में उक्त वाद का यदृच्छावाद के नाम से ही उल्लेख हुआ है —

पुरुषस्य हि दृष्ट्वेमामुत्पत्तिमनिमित्तत ।

यदृच्छया विनाशं च शोकहर्षावनर्थकौ ॥

(म० भा० शान्ति प० ३३ । २३)

अर्थ—मनुष्य के जन्म तथा विनाश निमित्त के बिना अकस्मात् होते देखकर शोक या हर्ष करना सर्वथा निरर्थक है।

उपर्युक्त सब वादियों का सग्रह 'पहाणाइ' में आए हुए आदि शब्द से हो जाता है। सूयगडाग के टीकाकार श्री

शीलाग सूरि ने भी एसा ही दर्शाया है। गाथा के उत्तरार्ध में "जीवाजीवसमाउत्ते सुहदुक्खसमन्निए" इस प्रकार लोक के दो विशेषण बतलाए हैं। लोक जीव अजीव से व्याप्त है। अर्थात् सृष्टि जड तथा चेतन उभय रूप है। इस में से चैतन्य सृष्टि सुख दु ख स व्याप्त है। इस सम्बन्ध म ईश्वरवादी का तो यह मन्तव्य है कि—जड़ चेतन उभय सृष्टि में तथा पुरुष के सुख दु ख में ईश्वर निमित्त कारण है। जब कि इससे ठीक उलटे रूप में प्रकृतिवादी मान्य का मन्तव्य है कि—जड चेतन उभय सृष्टि में प्रकृति उपादान कारण है। ईश्वर के निमित्त कारण की यहाँ कोइ आवश्यता नहीं। आत्माएं दोनों के मत में अनन्त हैं तथा व्यापक हैं। ईश्वरवादी के मत में आत्मा कर्ता भोक्ता सब कुछ है, जब कि प्रकृतिवादी के मत में आत्मा कर्ता न होकर केवल भोक्ता ही है। कर्तृत्व का सारा भार प्रकृति पर डाला गया है। (६)

अवतारवाद और अण्डवाद

मूल सयमुणा कडे लोए इति वुत्त महेसिणा।
मारेण सथुया माया, तेण लोए असासए ॥
(सूय १।१।३।७)

छाया—स्वयभुवा कृतो लोक इति प्युक्तं महर्षिणा।
मारेण संस्तुता माया तेन लोकोऽशाश्वत ॥

भावार्थ—'स्वयंभू ने लोक बनाया है'—ऐसा महर्षि ने कहा है। मार ने माया का विस्तार किया, इस कारण लोक अशाश्वत है।

मूल-माहणा समणा एगे आह अडकडे जगे।
असो तत्तमकासी य अयाणता मुस वदे ॥
(सूय० १ । १ । ३ । ८)

स० छा०—ब्राह्मणा श्रमणा एके आहुरण्डकृत जगत्।
असौ तत्त्वमकार्षीच्च अजानन्तो मृषा वदन्ति ॥

भावार्थ—कई श्रमण ब्राह्मण कहते हैं कि—यह जगत् अडे में से बना हुआ है। ब्रह्मा ने महाभूतादि तत्त्व रचे हैं। वस्तुस्थिति न समझने वाले, इस प्रकार मिथ्या भाषण करते हैं।

विवेचन—ईश्वरवादियों के निराकार, आत्मविशेष रूप ईश्वर में इच्छा एव सकल्प आदि किस प्रकार हो सकते हैं? यह शका अभी तक खडी हुई है। ईश्वरवादियो की ओर से उक्त शका के समाधान के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं हो सका है। सांख्य की प्रकृति में पुरुष का सानिध्य सृष्टि का कारण माना गया है। परन्तु यहाँ भी प्रश्न है कि—पुरुष का सानिध्य तो हमेशा ही बना रहता है अत सृष्टि हमेशा बनती रहेगी। कभी प्रलय की तो सभावना ही नहीं की जा सकती! यह शका प्रकृतिवाद में भी बनी रहती है, जिसका कि सांख्य के पास कोई खास उत्तर नहीं है। अब रहे ब्रह्मवादी। इस सम्बन्ध में उनकी अवस्था भी अच्छी नहीं कही जा सकती। उनके मत म भी यह शका बनी रहती है कि—निर्गुण निराकार ब्रह्म में विकार किस प्रकार आ सकते हैं? इन सब शकाओं का समाधान करने के लिए एक सगुण, साकार ईश्वर की कल्पना की गई है, जिसका नाम स्वयभू रक्खा गया है। स्वयभू का अर्थ है 'स्वय भवतीति स्वयभू' जो अपने आप स्वतन्त्र रूप में उत्पन्न होता है। अर्थात् कर्म के योग से नहीं, परन्तु अपनी इच्छा से जो विशिष्ट आत्मा

शरीर धारण करता है, वह स्वयम्भू है। टीकाकार इस विष्णु तथा अन्य नाम से संबोधित करते हैं। परन्तु इतने मात्र से ही इसका परिष्कार नहीं हो सकता। कारण 'स्वयम्भू' शब्द के पीछे एक बहुत लम्बी प्रक्रिया है। शरीरधारी सृष्टि कर्ता के रूप में सब से प्रथम स्वयम्भू भगवान उपस्थित होते हैं। यहाँ से अवतार वाद का प्रारम्भ होता है। वैष्णव इसे विष्णु कहते हैं और शैव इसे शिव मानते हैं। सृष्टिवादी इसका ब्रह्मा के नाम से परिचय देते हैं और बौद्ध विद्वान अमरसिंह ने अपने अमरकोष में—

> ब्रह्मात्मभू सुरज्येष्ठ परमेष्ठी पितामह ।
> हिरण्यगर्भो लोकेश स्वयम्भूश्चतुरानन ॥
>
> (अम० को० १ । ११)

ब्रह्मा का नाम स्वयम्भू बतलाया है। सृष्टि कर्ता के रूप में अधिक प्रसिद्धि ब्रह्मा की है। विष्णु पालक और शिव संहारक के तौर पर पुराणों में वर्णित हैं। अगर वस्तुतः देखा जाय तो उक्त त्रिमूर्तिरूप ही स्वयम्भू होता है। त्रिगुणात्मक प्रकृति रूप इसका शरीर है। इसमें से रजोगुण प्रधान ब्रह्मा का उद्भव होता है। इसी प्रकार सत्त्वगुण प्रधान विष्णु और तमोगुण प्रधान शिव का भी उत्पादक यही है। इस दृष्टि से यह पितामह भी कहा जाता है। उक्त अवतारवाद का मुख्य प्रयोजन क्या है? गीता में इसका अच्छा दिग्दर्शन किया गया है। देखिये —

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
>
> (गीता ४ । ७ ८)

अर्थ—हे भारत! संसार में जब जब अन्याय, अनीति, दुष्टता और अंधाधुन्धी का प्राबल्य होने पर साधुओं को कष्ट होने लगता है और दुष्टों की महिमा बढ जाती है, तब तब साधुओं का रक्षण करने के लिए, दुष्टों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की व्यवस्था करने के लिए युग-युग में मैं अवतार धारण करता हूँ। आत्मसृष्टि अर्थात् आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध जोड़ कर जगत में उपस्थित होता हूँ।

गीतोक्त अवतार धारण सृष्टि के बीच का है। क्योंकि सृष्टि को आदि में तो ऐसा कोई प्रयोजन नहीं होता, केवल रात्रि पूरी होने पर प्रलयकाल पूरा हो जाता है और सृष्टि का प्रारंभ काल आ जाता है। इसलिए निम्नोक्त मनुस्मृति के श्लोकानुसार सृष्टि का आरंभ होता है—

> ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
> महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
> (मनु० १।६)

अर्थ—अव्यक्त अर्थात् बाह्येन्द्रिय अगोचर एकमात्र योगाभ्यासियों द्वारा जानने योग्य, सृष्टि रचना में पूर्ण सामर्थ्य रखने वाला स्वयंभू भगवान्, आकाशादि पाँच महाभूतों तथा महत्तत्त्वादिकों को—जो पहले सूक्ष्मरूप में थे, स्थूलरूप में प्रकाशमान करने वाला और प्रलयावस्था का नाश करने वाला या प्रकृति को प्रेरित करने वाला प्रकट हुआ।

> सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
> अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ (मनु० १।८)

अर्थ—उस स्वयंभू ने विविध प्रजा सर्जन करने की इच्छा से प्रकृति रूप अपने शरीर में से जल उत्पन्न हो' ऐसा संकल्प

कर के सब से पहले जल की सृष्टि की। तत्पश्चात् उस जल में शक्तिरूप बीज का आरोपण किया।

सूत्रकृताग की सातवीं गाथा के पूर्वार्द्ध में कहे अनुसार स्वयभू की सृष्टि यहाँ पूर्ण हो जाती है अस्तु, 'इति वुत्त महसिणा' इस पद में के 'महर्षि' शब्द का अर्थ 'मनु' लेने का है। अर्थात् मनु महर्षि ने ऐसा कहा है, यह भावार्थ ग्रहण करना है।

उत्तरार्द्ध में मार एव माया का उल्लेख आया है। इसका विवेचन आठवीं गाथा के विवेचन में आगे किया जाने वाला है। कारण कि—मनु की इस सृष्टि प्रक्रिया में स्वयभू, अड तथा ब्रह्मा इन तीनों का अनुक्रम से सकलित प्रबन्ध है फलत उक्त अनुक्रम को कायम रखने के लिए हम ने विवेचन पद्धति की योजना भी उसी रूप में की है।

अण्डसृष्टि

स्वयभू के बाद अड सृष्टि का नम्बर आता है। अण्ड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं। एक बहुत प्रचीन है, जो छादोग्योपनिषद् में बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृति में दिखलाया है। दोनों की प्रक्रिया भिन्न भिन्न हैं और दोनों में काफी अन्तर है। छादोग्य म अड के साथ स्वयभू का कोइ सपर्क नहीं है जब कि—मनुस्मृति की सृष्टि में स्वयभू अडे मे प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करता है। उक्त विविधता का दिग्दर्शन कराए बिना पाठकों को इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता इसलिए अडे की दोनों प्रक्रियाओं का स्वरूप दिखा देना यहाँ अतीव आवश्यक है। 'अडकडे जगे' सूयगडाग की इस गाथा के अनुसार तो छादाग्योपनिषद् की प्रक्रिया अधिक प्रकरण

सगत मालूम होती है। अत प्रथम छान्दोग्योपनिषद् की प्रक्रिया बता कर पीछे मनुस्मृति की प्रक्रिया को उठाया जायगा।

छान्दोग्योपनिषद् ३, १६ में लिखा है —

असदेवेदमग्र आसीत्।

अर्थ—सृष्टि से पहले प्रलयकाल में यह जगत् असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था।

तत्सदासीत्।

अर्थ—वह असत् जगत् सत् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्।

अर्थ—अंकुरीभूत बीज के समान क्रम से कुछ थोड़ा सा स्थूल बना।

तदाण्ड निरवर्तत।

अर्थ—आगे चलकर वह जगत अंडे के रूप में बना।

तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत।

अर्थ—वह एक वर्ष पर्यन्त अंडरूप में रहा।

तन्निरभिद्यत।

अर्थ—वह अंडा एक वर्ष के पश्चात् फूटा।

ते आण्डकपाले रजत च सुवर्णं चाभवताम्।

अर्थ—अंडे के दोनों कपालों में से एक चाँदी का और दूसरा सोने का बना।

तद्यद् रजत सेय पृथिवी।

अर्थ—उनमें जो चाँदी का था, उसकी पृथ्वी बनी।

यत्सुवर्णं सा द्यौ

अर्थ—जो कपाल सोने का था उसका ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग) बना।

यज्जरायु त पर्वता ।

अर्थ—जो गर्भ का वष्टन था उसके पर्वत बने ।

यदुल्व स मेघो नीहार ।

अथ—जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुषार बना ।

या धमनय ता नद्य ।

अर्थ—जो धमनियाँ थीं वे नदियाँ बन गई ।

यद्वास्तेयमुदकं स समुद्र ।

अथ—जो मूत्राशय का जल था उसका समुद्र बना ।

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्य ।

अर्थ—अनन्तर अंडे में से जो गभ रूप में पैदा हुआ वह आदित्य-सूय बना ।

यह अंडे की आमूलचूल स्वतत्र सृष्टि है । इसमें स्वयभू ईश्वर, या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । जहाँ तक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रग ढग का वर्णन छांदोग्योपनिषद् में उपलब्ध है । सूत्रोक्त 'अहकडे जगे' गाथा के अथ क साथ उक्त रूपक का सम्बन्ध ठीक ठीक लागू पड़ता है ।

मनु महर्षि की अड सृष्टि ।

तदण्डमभवद्धैम सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वय ब्रह्मा सर्वलोकपितामह ॥

(मनु० १ । ९)

अथ—स्वयभू के सकल्प से वह बीज सूर्य के समान अतीव समुज्ज्वल प्रभा वाला सोने का अंडा बना । अनन्तर उस अंडे में

भगवान स्वयभू योगशक्ति से पूर्वधृत प्रकृतिमय सूक्ष्म शरीर को छोड़कर सर्वलोक पितामह ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥

अर्थ—वह भगवान् अंडे में ब्रह्मा के एक वर्ष तक निरन्तर रहता रहा और अन्त में उसने अपने ही सकल्प रूप ध्यान से उस अंडे के दो टुकडे किए।

ताभ्या स शकलाभ्या च दिव भूमि च निर्ममे।

मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपा स्थान च शाश्वतम् ॥

मनु० (१ । १३)

अर्थ—तत्पश्चात भगवान् ने उन दो टुकडों से—ऊपर के टुकडे से स्वर्ग और नाचे के टुकडे मे भूमि बनाई। बीच के भाग से आकाश और आठ दिशाएँ तथा पानी का शाश्वत स्थान समुद्र बनाया।

तत्त्वसृष्टि

'असो तत्त्वमकासी य'

अड सृष्टि क पश्चात ब्रह्मा की तत्त्वसृष्टि १४ वें श्लोक मे शुरू होती है। कारण कि गाथा में 'असो' मूल तथा 'असौ' सस्कृत शब्द ब्रह्मा का परामर्शक है। टीकाकार ने भी यही अर्थ बतलाया है। यहाँ से स्वयभू का अधिकार ब्रह्मा को प्राप्त होता है। वेदान्त दृष्टि से ब्रह्म स्वयभू और ब्रह्मा एक आत्मस्वरूप ही हैं। जो भिन्नता है केवल उपाधि जन्य है, अन्य कुछ नहीं। अर्थात् ब्रह्म निराकार, निर्गुण है, स्वयभू प्रकृतिरूप शरीर धारी है और ब्रह्मा रजोगुण प्रधान है, इस प्रकार उपाधिभेद की विशेषता है। साख्य की दृष्टि मे स्वयभू का शरीर अव्याकृत

प्रकृतिरूप है तथा ब्रह्मा का शरीर रजोगुण प्रधान व्याकृत प्रकृति रूप है यह विशेषता है। ब्रह्मा प्राणी सृष्टि रचने के लिए सब से पहले अपना शरीर बनाता है और उसके लिए तत्त्वसृष्टि का आरम्भ करता है —

> उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
> मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥
> महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ।
> विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥
> (मनु० १ । १४ १५)

अर्थ—ब्रह्मा ने स्वयम्भू परमात्मा में से सत् (अनुमान आगम-सिद्ध) असत् (प्रत्यक्षागोचर), ऐसे मन का सृजन किया। मन से पहले अहकार का निर्माण किया कि जिससे 'मैं ईश्वर (सर्व कार्य करने में समर्थ) हूँ' ऐसा अभिमान हुआ। अहकार से पहले महत्तत्व की रचना की। टीकाकार मेधातिथि कहता है कि 'तत्त्वसृष्टिरिदानीमुच्यते' अर्थात् यहाँ से तत्त्वसृष्टि का वर्णन किया जाता है। उक्त वाक्य के तत्त्व शब्द का अर्थ महत्तत्व (बुद्धि) समझना चाहिए इस कथन से मन, अहकार और महत्तत्व की उलटे क्रम से संयोजना करनी चाहिए। अर्थात् सब से प्रथम महतत्व है, उसके बाद अहकार है और उसके बाद मन का नम्बर आता है। मन के पश्चात् पाँच तन्मात्रा की, तीन गुण वाली विषय ग्राहक पाँच ज्ञानेन्द्रियों की और 'च' कार से पाँच कर्मेन्द्रियों की रचना भी ब्रह्मा ने स्वयम्भू में से की।

> तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ।
> सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥
> (मनु० १ । १६)

अर्थ—अपरिमित शक्तिशाली पाँच तन्मात्राएँ और एक अहकार इन छ तत्त्वों को और इन सूक्ष्म अवयवों को आत्मा के सूक्ष्म अशों में मिला कर ब्रह्मा, देव, मनुष्य आदि सर्वभूतों का सृजन करता है। कारण कि उक्त मिश्रण ही सृष्टि का उपादान कारण है। मेधातिथि तथा कुल्लूकभट्ट दोनों टीकाकारों का उपर्युक्त अभिप्राय है। परन्तु टीकाकार राघवानन्द दोनों से अलग रास्ते पर जाते हैं, और अपना आशय नीचे के शब्दों में व्यक्त करते हैं —

षण्णां मन आदीनाममितौजसाम् । आत्ममात्रासु अपरिच्छिन्नस्यै-कस्यात्मन उपाधिवशात् अवयववत्प्रतीयमानेषु आत्मसु [1] ॥

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन "—इतिस्मृते ।

"अशो नानाव्यपदेशादित्यादि सूत्राच्च, तासु मन आदि षडवयवान् सूक्ष्मान् सनिवेश्य सर्वभूतानि सर्वान् जीवान् निमम इत्यन्वय ।"

अर्थात् राघवानद ने पाँच तन्मात्रा के उपरांत छठे अहकार के बदले मन को रक्खा है। आत्ममात्रा शब्द से एक ब्रह्म के उपाधिभेद से पृथक् हुए अनेक अश रूप जीवात्माओं का ग्रहण किया है। मन आदि छ तत्वों के अवयवों को आत्ममात्रा के साथ मिश्रण कर के ब्रह्मा ने सब जीवों का निर्माण किया। इस प्रकार जीव सृष्टि रचना सम्बन्धी राघवानन्द का अभिप्राय है।

यन्मूर्त्यवयवा सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिण ॥
(मनु० १ । १७)

[1] गीता० १५ । ७

हैं। वे इस प्रकार हैं—स्वारोचिष,[1] उत्तम,[2] तामस, रैवत[4], चाक्षुस, विवस्वत्सुत। ये सातों अपने अपने अन्तर काल में स्थावर जगम रूप सृष्टि उत्पन्न करते हैं।

'मारेण संथुया माया'

सूत्रकृतांग की सातवीं गाथा के उत्तरार्द्ध में मार और माया शब्द आए हैं। वे प्रलयकाल के सूचक हैं। उनमें मार शब्द मृत्युरूप काल वाचक है। और माया शब्द स्वयंभू भगवान् की योगमाया का वाचक है। इस सम्बन्ध में भागवत के तृतीय स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में कहा है कि—

> "अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिता ।
> विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थां वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥"

बाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड १०४ सर्ग में टीकाकार राम, माया शब्द का अर्थ संकल्प अर्थात् भगवान् की संकल्प शक्ति करता है—

> "मायासमाविवो वीर काल सर्वसमाहर'

टीका—'मायासभाविवो = मायया संकल्पेन संभाविव उत्पादित। सवसमाहर = सर्व संहारकर्तेति।"

काल स्वयं महर्षि का—तपस्वी का रूप धारण करके भगवान् रामचन्द्र जी के पास आता है और अपना परिचय देते हुए कहता है कि—"भगवन् मुझे ब्रह्मा ने भेजा है। आपने भूलोक में ठहरने की ११ हजार वर्ष की मर्यादा दी थी वह अब पूरी हो गई है। अतएव कृपा करके स्वर्ग में पधारिए। आप मुझे पहचानते हैं न? मैं आपका हिरण्यगर्भ अवस्था का पुत्र हूँ, भगवन् की संकल्प शक्ति रूप माया से पैदा हुआ हूँ।

में समस्त चराचर का सहार करने वाला हूँ।" उक्त कथन से काल की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ मालूम होती हैं। जैसे कि उत्पादक काल, स्थापक काल, और सहारक काल। सृष्टि का आरभ काल, उत्पादक काल है। सृष्टि का स्थिति काल, स्थापक काल है, और अन्त में जो प्रलय काल आता है वह सहारक काल है। सहारक काल, यही मार है। यह मार ही तमोगुण प्रधान रुद्र नामधारी स्वयमू अश को प्रेरणा करता है कि—"दिन पूरा हुआ, सृष्टि काल समाप्त हुआ, इस लिए सब झगडे टटे से अवकाश ग्रहण कर आनन्द से शयन करो। अर्थात् सब का सहार करो।" अत मार की प्रेरणा से सकल्प रूप माया शक्ति के द्वारा रुद्र जगत का सहार करता है। जगत का सहार होता है—प्रलय होता है, फलत यह लोक अशाश्वत है। मनुस्मृति में कहा है कि—

> एव सर्वं स सृष्ट्वेद मा चाचिन्त्यपराक्रम ।
> आत्मन्यन्तर्दधे भूय काल कालेन पीडयन् ॥
>
> (मनु० १।५१)

अर्थ—मनुजी कहते हैं कि—अचिन्त्य पराक्रमशाली ब्रह्मा इस भाँति मुझे और सर्व प्रजा को सर्जन कर अन्त में प्रलय काल के द्वारा सृष्टि काल का नाश करता हुआ पुन आत्मा मे अन्तर्धान लीन हो जाता है। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि इस प्रकार असंख्य सृष्टि प्रलय अतीत में हुए हैं और भविष्य में होते रहेंगे।

> यदा स देवो जागर्ति तदेद चेष्टते जगत् ।
> यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्व निमीलति ।
>
> (मनु० १।५२)

का एक दिवस होता है, वही कल्प कहलाता है। कल्प के अन्त में १४ मन्वतर पूरे हो जाने पर सृष्टि क्रम से विपरीत रूप में भूलोक आदि अखिल सृष्टि का ब्रह्मा में लय हो जाता है। पृथ्वी एकार्णवस्वरूप बन जाती है और उस समय स्वयंभू जल में शयन करता है वह नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। इसे ही अन्तर प्रलय अथवा गृह प्रलय भी कहते हैं। दो परार्द्ध वर्षों में तीन लोक के पदार्थों का प्रकृति में या परमात्मा में जो लय होता है उसका नाम प्राकृतिक प्रलय या महाप्रलय है। और किसी सत्कारी आत्मा की मुक्ति होना आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है।

पहले महाभारत का जो प्रलय बताया गया है वह है तो महा प्रलय, परन्तु उसमें विश्व का लय प्रकृति के बदले ईश्वर में, किया गया है। महाभारत की प्रलय प्रक्रिया की अपेक्षा वृह्म पुराण का प्रलय प्रक्रिया कि हीं अशों में पृथक् है। वह पार्थक्य इस भाँति है —महाभारत में प्रथम सूर्य तपता है जब कि वृह्म पुराण क प्रलय में सर्व प्रथम सौ वष अनावृष्टि = दुष्काल पड़ता है। इस काल म अल्प शक्ति वाले पार्थिव प्राणियों का नाश हो जाता है। इसके बाद विष्णु रुद्र रूप धारण कर, सूर्य की सात किरणों में प्रवेश कर, समुद्र तालाब आदि का समस्त जल पी जाता है। उक्त कथन के समर्थन में ऋग्वेद की एक ऋचा भी है, वह इस प्रकार है —

> यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे दवै सपिबते यम ।
> अत्रा नोपि विश्पति पिता पुराणां अनुवेनति ॥
>
> (ऋग् १० । १३५ । १)

अर्थ—वृत्ततुल्य ससार में पितृयम = सर्वजीवों का पितृस्थानीय सूर्य अपनी किरणों द्वारा जीवों की उत्पत्ति और रक्षा करता है। वही सूर्य वयोहीन जीवों के सत्व को खींच कर स्ववश करता है, अर्थात् मार डालता है।

प्रस्तुत प्रसग में भी सूर्य जल का शोषण कर जीवों को मारता है। अस्तु, तदनन्तर वही विष्णु भगवान् सप्त सूर्य के रूप में आकाश में ऊँचे नीचे और तिरछे इस प्रकार चारों ओर भ्रमण करके पाताल सहित भूलोक को खूब तपाता है। फल स्वरूप कूप, नदी, पर्वत निर्झर आदि सब के सब जल स्रोत स्नेहहीन हो जाते हैं। वृक्षलता वगैरह भस्म हो जाते हैं। यह पृथ्वी ऊपर से वीरान होकर कछुवे की पीठ के समान बिल्कुल समतल बन जाती है। तदनतर रुद्र कालाग्नि का रूप धारण करके पाताल लोक को भी जला देता है, और एक प्रकार से सम्पूर्ण पृथ्वी तल को ही दग्ध कर डालता है। तत्पश्चात् यह अग्नि ज्वाला उर्ध्वलोक में जाकर भुव लोक और स्वर्ग लोक को भी जलाती है। जिससे गन्धर्व यक्ष राक्षस पिशाच आदि भी नष्ट हो जाते हैं। बाद में रुद्र रूपी विष्णु, मुख के निश्वास से पाँचों रग के बादल आकाश में बनाता है। उनमें से मूसलधार वर्षा के बरसने से अग्नि शान्त हो जाती है। निरन्तर सौ वर्ष तक वर्षा के बरसते रहने से समग्र पृथ्वी एकाकार जलार्णवमय हो जाती है। और वह जल ठेठ सप्तर्षि तक ऊपर चढ जाता है और भूर्लोक, भुवर्लोक स्वर्लोक सब एकाकार बन जाते हैं। इसके बाद बादलों को छिन्न भिन्न करने के लिए (बिखेरने के लिए) मुख के निश्वास से प्रचड वायु बनाता है। सौ वर्ष तक वायु के तूफान से मेघ घटा सर्वथा बिखर जाती है—समूल नष्ट हो जाती है। यह

सब कुछ कर चुकने पर सृष्टि कर्ता विष्णु भगवान्, वायु को भी पाकर एकार्णव जल प्रवाह में शेष शय्या पर सो जाते हैं। इस प्रकार योग निद्रा में सोते हुए एक हजार चतुर्युग परिमित ब्रह्मा की समग्र रात्रि समाप्त हो जाती है। इस समय अर्थात् शयन काल में भग्नावशिष्ट जन लोक और ब्रह्मलोक में रहने वाले सनकादि मुमुक्षु भगवान् की स्तुति करते रहते हैं। यह नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। विष्णु पुराण में भी ऐसा ही मिलता जुलता वर्णन है। कूर्म पुराण में थोड़े से हेर फेर के साथ उल्लेख हुआ है। वहाँ प्रलय के तीन के बदले चार भेद बतलाए हैं। तीन तो वही ज्यों के त्यों हैं, चौथा भेद नित्य प्रलय का बढ़ाया है। नित्यप्रति जो मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े आदि जीव मृत्यु समय आने पर मरते हैं, वह नित्य प्रलय कहलाता है।

प्राकृतिक प्रलय

पूर्वोक्त रूप में अनावृष्टि और कालाग्नि के सम्पर्क से जब पाताल आदि लोक स्नेहहीन—रूखे सूखे हो जाते हैं, तब महत्तत्वादि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त विकार कहलाने वाले द्रव्यों का ध्वंस करने के लिए प्राकृतिक प्रलय उपस्थित होता है। उस समय सर्व प्रथम अनावृष्ट्यादि कारण से प्राणी शरीर अन्न में लीन होते हैं। अन्न बीजमात्र शेष रह कर अवशिष्ट भूमि में लीन हो जाता है। तदनन्तर भूमि गन्ध गुण में, गन्ध जल में, जल रस में, रस अग्नि में, अग्नि रूप में, रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में, आकाश शब्द में, शब्द तन्मात्रा में, तन्मात्रा इन्द्रियों में, इन्द्रियाँ मन में, मन अहङ्कार में, अहङ्कार महत्तत्व (बुद्धि) में, और महत्तत्व अपने मूलद्रव्य प्रकृति में लीन हो जाता है। यह सांख्य का प्राकृतिक प्रलय है।

वेदान्त इन सब से एक क़दम और आगे बढ़ता है। वह कहता है कि—प्रकृति और पुरुष जो शेष रहते हैं, उनका भी एकमेवाद्वितीय परब्रह्म में लय हो जाता है। इस प्रकार एक मात्र ब्रह्म ही शेष रहता है, यह वेदान्त का प्राकृत प्रलय होता है। उक्त महाप्रलय का वर्णन भागवत तृतीय स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में किया है। इस के अतिरिक्त विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण और कूर्म पुराण मे भी ऐसा ही प्रसग आया है। भागवत, विष्णु पुराण, और ब्रह्म पुराण में अन्तिम लय विष्णु में किया गया है, जब कि कू ॅ पुराण में रुद्र में किया है।

काल परिमाण

मनुष्यों का एक मास अर्थात् तीस अहोरात्र, पितृदेवों का एक अहोरात्र होता है। मनुष्यों का एक वर्ष, वह देवताओं का एक अहोरात्र। देवताओं के बारह हजार वर्ष बीतने पर एक चतुर्युग अर्थात् सत्य द्वापर, त्रेता और कलियुग होता है। एक हजार चतुर्युग में ब्रह्मा का एक दिवस, और इतने ही काल में ब्रह्मा की एक रात्रि होती है। अस्तु, ब्रह्मा का एक दिवस सृष्टिकाल और ब्रह्मा की एक रात्रि नैमित्तिक प्रलय काल के बराबर है।

इस प्रकार सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि की परपरा चलती रहने के कारण सृष्टिवादी सज्जन इस लोक को अशाश्वत मानते हैं। (७-८)

मूल—सएहि परियाएहि, लोय बूया कडे ति य।
तत्त ते ण वियाणति, ण विणासी कयाइवि ॥

(सूय० १।१।३।१२)

स० सू०—स्वकै पर्याये, लोक मृषु कृतमिति च।
तत्त ते न विजानन्ति, न विनाशी कदाचिदपि॥

अर्थ—अपनी अपनी युक्तियों (कल्पनाओं) के बल पर "लोक(जगत) बनाया हुआ है" ऐसा जो कहते हैं वे "लोक कदाचित् भी विनाशी नहीं है" इस तत्त्व का नहीं जानते।

विवेचन—वैदिक धम म सृष्टिवाद के सम्बन्ध में मुख्य रूप से सात वादी माने जात हैं। ये सात वादी लोक को देवउप्त, ब्रह्मउप्त ईश्वरकृत, प्रधानादिकृत, स्वयभू कृत, अण्डकृत और यमाकृत मानते हैं। इनका पूवपक्ष के रूप में काफी विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। लोक कार्य रूप है, बना हुआ है, सृष्टिरूप है—इस बात म साता एक मत हैं। अर्थात् इस सामान्य सिद्धान्त में व परस्पर कुछ भी मतभेद नहीं रखते। परन्तु इस जगत् का स्रष्टा (बनाने वाला) कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर म सब के सब बहुत विभिन्न मत रखते हैं। आपस में एक दूसरे की मान्यता पर गहरी छींटाकशी हुई है, यही इनकी अज्ञता है। यदि इनका कथन ज्ञान पूवक होता तो इतना मतभेद नहीं होता। सत्य सिद्धात में कभी मतभेद नहीं होता है। उल्लिखित साता वादी वेद को प्रमाण रूप मानते हुए भी, एक तत्त्व को नहीं पा सके हैं। इस लिये सूत्रकार ने बहुत ठीक ही कहा है कि—"तत्त तेन वियाणन्ति=तत्त्व ते न विजानन्ति" अर्थात्—ये वादी खरी बात (सत्य सिद्धान्त) को नहीं जानते हैं। अपनी अपनी कल्पना से 'लोक अमुक का किया हुआ है' इस प्रकार कहते हैं। कोई भी सिद्धान्त केवल वादी के

कहने मात्र से निर्णीत नहीं हो सकता, किन्तु "वादिप्रतिवादिभ्या निर्णीतोर्थ सिद्धान्त" अर्थात्–वादी और प्रतिवादी के कथन से निर्णीत हो वही सिद्धान्त माना जाता है। यहाँ वादियों का पक्ष तो ऊपर बता चुके, अब प्रतिवादी का पक्ष क्या है, यह दिखाया जाता है, जिससे कि सत्य सिद्धान्त को समझने में सरलता हो। स्मरण रहे कि—सभी वादी वेद को प्रमाण रूप से मानते हैं, और उसी का अवलम्बन लेते हैं। उस वेद का स्मृतियों तथा पुराणों में कौनसा पक्ष स्थिर होता है, इसकी समालोचना की जाती है।

सभी वादियों के सामने सर्व प्रथम तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सृष्टि के प्रारम से पूर्व क्या तत्त्व था जिसमें से यह ससार उत्पन्न हुआ है ? इसका उत्तर वेद ब्राह्मण और उपनिषद् में कितने प्रकारों से दिया गया है सो दिखाया जाता है—

(१) असद्वा इदमग्र आसीत् (तै० उप० २।७)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व यह जगत् असद्रूप था।

(२) सदेव सौम्येदमग्र आसीत् (छान्दो० ६।२)

अर्थ—उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेत केतु से कहते हैं कि हे सौम्य ! यह जगत् पहले सद्रूप ही था।

ये दोनों उत्तर परस्पर विरोधी हैं। एक कहता है कि जगत् पहले असद्रूप था, तब दूसरा कहता है कि सद्रूप था, यह स्पष्ट विरोध पाया जाता है। जो सद् होता है वह असद् नहीं हो सकता, और जो असद् है वह सद् नहीं हो सकता। ब्रह्म सूत्र में कहा है कि—"नैकस्मिन्नसम्भवात्" सद् और असद्

परस्पर विरोधी धर्म एक वस्तु में नहीं रह सकते, क्योंकि ऐसा होना असंभव है यद्यपि जैन दर्शन, जो अनेकान्तवादी है, अपेक्षा भेद से परस्पर विरोधी धर्मों का एकधर्मी में समन्वय कर सकता है तथापि उक्त मत तो एकान्त वादियों का है इसलिये ऊपर बताये हुए दोनों उत्तर एक दूसरे के विरोधी ज्ञात होते हैं। अस्तु, आगे और देखिये—

(३) आकाश परायणम् (छान्दो० १।९)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व आकाश नाम का तत्व था, क्योंकि वह परायण अर्थात् परात्पर अर्थात् सब से पर है।

(४) नैवेह किंचनाग्र आसीत्, मृत्युनैवेदमावृतमासीत् (बृहदा० १।२।१)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व कुछ भी नहीं था, यह जगत् मृत्यु से व्याप्त था, अर्थात् नष्ट हो चुका था।

(५) तमोवा इदमग्र आसीत्। (मैत्र्यु० ५।२)

अर्थ—सब से पहले यह जगत् अन्धकार मय था।

यही भाव मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के पांचवें श्लोक में भी वर्णित है, देखिये—

(६) आसीदिदं तमोभूत-मप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥
(मनु० १।५)

अर्थ—यह जगत् सृष्टि के पूर्व अन्धकार में था, अप्रज्ञात= प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर नहीं था, अलक्षण=अनुमान गम्य नहीं था, अप्रतर्क्य=तर्कणा के योग्य नहीं था, अविज्ञेय=शब्द प्रमाण द्वारा अज्ञेय था, और सभी ओर से घोर निद्रा में लीन और शून्याकार था।

जिस आगम प्रमाण के आधार पर पूर्व के आठ वादियों के भिन्न भिन्न प्रकार के मतभेद उपस्थित हुये, उसी आगम के आधार पर सृष्टि के पूर्व की अवस्था के सम्बन्ध में पुन पाच या छह मतभेद उपस्थित हुये।

संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् विभाग में तो प्रलयावस्था का वर्णन संक्षेप मे बताया गया है, किन्तु पुराणों में तो प्रलय-काल के विस्तार से अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैं, जिनमें से महाभारत और ब्रह्मपुराण का किञ्चित् भाग हमने ऊपर बताया है। उनमें नैमित्तिक प्रलय की अवस्था भिन्न और प्राकृतिक प्रलय की अवस्था भिन्न चित्रित की गई है। कोई जल प्रलय बताता है, तो कोई अग्नि प्रलय बताता है। जलाकार प्रलय में भी कोई विष्णु को शेष शय्या में शयन करवाते हैं, कोई रुद्र को, कोई स्वयंभू का, तो कोई प्रजापति को उसमें विराजमान करते हैं। इस प्रकार भिन्न २ मत पाये जाते हैं। आर्य समाजी तो इन पुराणों को प्रमाण रूप ही नहीं मानते, केवल कपोल कल्पित गप्पें बताते हैं। किन्तु शाक्त और सनातनी बन्धु इन पुराणों को प्रमाण रूप स्वीकार करते हैं। थोड़ी देर के लिये यदि इनकी मान्यता का स्वागत कर लिया जाय तो वेद विभाग के साथ इन मान्यताओं का समन्वय होना चाहिये। क्योंकि मूल प्रमाण तो वेद हैं। स्मृति और पुराणों की जो बातें वेद मूलक हों वही प्रामाणिक गिना जा सकती हैं। वेद में जो प्रलय की अवस्था ऊपर बताई गई है उसमें न तो जल है न अग्नि, न शेष नाग, और न उसकी शय्या बना कर विष्णु भगवान को ही सुलाया गया है। इससे पाया जाता है कि ये पुराणों की

बातें भी प्रमाण रहित हैं। यदि प्रमाण युक्त होतीं तो इनसे अधिक प्रामाणिक और प्राचीन माने जाने वाले वेदों में ऋषि लोग इन बातों का उल्लेख नहीं करते क्या? वेदों में, "कुछ भी नहा था, अन्धकार था, या असद् था" इस प्रकार क्यों कहा गया? कदाचित् विष्णु या रुद्र का निद्रावस्था में होना कहा जाय तो यह भा ठीक नहीं है क्योंकि मात्र निद्रावस्था से ही उनका अभाव तो नहीं कहा जा सकता। असली बात तो यह है कि पुराणों की रचना पक्षपात पूर्ण है। शिव पुराण ने शिव का माहात्म्य बता कर विष्णु की निन्दा की, तो विष्णु पुराण के रचयिता ने विष्णु का माहात्म्य गाकर शिव की निन्दा की। ब्रह्म पुराण में ब्रह्मा का सामर्थ्य बताई गई, तो देवी भागवत में देवी की ही सामर्थ्य बताइ गइ है। यदि वेद में प्रलय काल की अवस्था में किसी व्यक्ति विशेष के होने का खुलासा होता तो पुराणों में इस प्रकार के मतभेद उत्पन्न न होते कारण कि भागवतादि पुराणकार वेद का सर्वोपरि प्रमाण रूप से स्वीकार करते हैं।

सृष्टि की आरम्भावस्था के मतभेद

जिस प्रकार प्रलयावस्था के विषय में मत भेद बताये गये उसी प्रकार सृष्टि की प्रारम्भावस्था के विषय में भी वेद विभाग में मतभेद दिखाइ देते हैं, वे इस प्रकार हैं—

देवानां युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि॥
(ऋग्० १०। ७२। ३)

* अर्थ—देवताओं की सृष्टि के पूर्व अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में असद् में से सद् उत्पन्न हुआ, उसके बाद दिशाएं उत्पन्न हुईं, और तत्पश्चात् उत्तानपद = वृक्ष उत्पन्न हुए।

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदिति परि ॥
(ऋग्० १० । ७२ । ४)

अर्थ—पृथ्वी ने वृक्ष उत्पन्न किये, पृथ्वी में से दिशाएं पैदा हुईं, अदिति में से दक्ष और दक्ष से पुन अदिति उत्पन्न हुईं।

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष ! या दुहिता तव
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृत बन्धव ॥
(ऋग्० १० । ७२ । ५)

अर्थ—हे दक्ष ! तेरी पुत्री अदिति ने भद्र = स्तुत्य और मृत्यु के बन्धन से रहित देवों को जन्म दिया, [अदिति के अपत्य = पुत्र, इसलिये आदित्य याने देव कहलाते हैं।]

यद्देवा अद सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥
(ऋग्० १० । ७२ । ६)

अर्थ—हे देवो ! जब तुम उत्पन्न हुए तब पानी में नृत्य करते हुए तुम्हारा एक तीव्र रेणु (अंश) अतरिक्ष में गया, [तात्पर्य यह कि वही रेणु सूर्य बन गया]

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्येजातास्तन्वस्परि
देवाँ उपप्रैत्सप्तभि परामार्ताण्डमास्यत् ॥
(ऋग्० १० । ७२ । ८)

* इन ऋचाओं का अर्थ भाव सायणभाष्य के अनुसार लिखा गया है।

अर्थ—अदिति के शरीर से जो आठ पुत्र उत्पन्न हुये, उनमें से सात पुत्रों के साथ अदिति स्वर्ग में देवताओं के पास गई, आठवाँ पुत्र जो मार्तण्ड=[मृताण्डाज्जात इति मार्तण्ड] (सूर्य) था उसे स्वर्ग में छोड़ गई।

अदिति के आठ पुत्रों के नाम

मित्रश्च[1] वरुणश्च[2] धाता[3] चार्यमा[4] च।
अंशश्च[5] भगश्च[6] इन्द्रश्च[7] विवस्वांश्चेत्येते[8] ॥
(तै० आ० १ । १३ । १०)

अर्थ—प्रसिद्ध है, विवस्वान् अर्थात् सूर्य।

[१] इसमें तीसरी ऋचा के पूर्वार्द्ध में यह कहा गया है कि असद् से सद् उत्पन्न हुआ, यह विचारणीय है, असद्=अभाव, शून्य, उसमें से सद् किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है? हजारों शून्य एकत्रित करने पर भी एक अङ्क बनना असंभव है। हजारों शून्य की जोड़ भी शून्य ही होती है। गीता में कहा है कि—"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" अर्थात् असत् में से सत्=भाव नहीं उत्पन्न होता और सत् से असत्=अभाव भी उत्पन्न नहीं हो सकता। असत् का अव्याकृत ब्रह्म रूप जो लाक्षणिक अर्थ किया जाता है उसका विचार आगे करेंगे।

[२] तीसरी और चौथी ऋचा परस्पर विरोधी हैं। वह विरोध इस प्रकार है—तीसरी ऋचा में तो कहा है कि सत् में से प्रथम दिशाएँ उत्पन्न हुई और बाद में वृक्ष उत्पन्न हुए और चौथी ऋचा में कहा कि भूमि ने पहले वृक्ष उत्पन्न किये, बाद में दिशाएँ उत्पन्न कीं।

[३] चौथी ऋचा के उत्तरार्द्ध में बताया है कि अदिति ने दक्ष को उत्पन्न किया, और दक्ष ने अदिति को उत्पन्न किया,

यह भी परस्पर विरुद्ध है, पाँचवीं ऋचा में दक्ष को सम्बोधन करके कहा है कि हे दक्ष ! तेरी पुत्री अदिति ने देवों को उत्पन्न किया है, क्या यह विरोध का समर्थन नहीं है ? अदिति के आठ पुत्र गिनाये हैं। उनमें दक्ष का नाम नहीं आता। इस हिसाब से दक्ष अदिति के पिता सिद्ध होते हैं। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड के १४ वें सर्ग में भी दक्ष प्रजापति की साठ पुत्रियों में से अदिति को भी एक पुत्री बताई है, तब अदिति ने दक्ष को पैदा किया इसका क्या अर्थ ? स्वयं सायण ने भी अपने भाष्य में यह शंका उठाई है, और उसका समाधान यास्क के वचनों से किया है, किन्तु वह भी संतोष कारक नहीं है।

[४] छठी ऋचा में देवताओं को पानी में नृत्य करते बताया है, किन्तु पानी तो अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ। पृथ्वी, वृक्ष और दिशाओं की उत्पत्ति बताई गई है, पानी की उत्पत्ति तो नहीं बताई गई ऐसी हालत में जल के अभाव में देवों ने पानी पर नृत्य किस प्रकार किया ?

[५] सातवीं ऋचा में अदिति के आठ पुत्रों में एक सूर्य भी है, जो तैतरिय आरण्यक से सिद्ध होता है। और सात पुत्रों को लेकर अदिति स्वर्ग में जाती है और सूर्य को आकाश में ही छोड़ जाती है, इस प्रकार कहा गया है और छठी ऋचा में कहा है कि देवता नृत्य करते थे उनमें से एक तीव्र रेणु आकाश में उड़ा उसी का सूर्य बनगया। क्या इन दो बातों में परस्पर विरोध नहीं है ? इसके सिवाय मार्तण्ड शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार मृत अण्ड में से सूर्य का उत्पन्न होना बताया गया है। इतनी विरोधी बातों में सत्य बात किसे स्वीकार करें ?

पाठको! जरा और आगे बढ़ें। ऋग्वेद के १२० वें सूक्त में सूर्य नारायण को खास परमात्मा का पुत्र होना बताया है, और शत्रु के संहारक के रूप में परिचय दिया है देखिये —

> तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
> सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥
> (ऋग्० १०। १२०। १)

अर्थ—भुवन = तीनों लोक में ज्येष्ठ = प्रशस्त, या सबसे प्रथम जगत् का आदि कारण वह था, [तद् शब्द से ब्रह्म का ग्रहण किया है, किन्तु यह एक देशीय अर्थ है। सामान्य रूप से परमात्मा अर्थ हो सकता है।] वह परमात्मा कि जिससे उग्र = प्रदीप्त तेज वाला त्वेषनृम्ण = सूर्य उत्पन्न हुआ और उस सूर्य ने उत्पन्न होते ही शत्रुओं का संहार किया। उस सूर्य को देख कर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं।

इस सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति परमात्मा से बताई गई है। और ७२ वें सूक्त में अदिति के आठवें पुत्ररूप में तथा देवता के तीव्र रेणु कण के रूप में सूर्य का परिचय दिया गया है। क्या ऐसे भिन्न उल्लेखों में पारस्परिक विरोध नहीं है? भाष्यकार सायण ने कहा है कि "सूर्य उत्पन्न होते ही मन्देहादि राक्षसों को मारता है।" इस कथन से भी शंका उत्पन्न होती है कि, परमात्मा के द्वारा सूर्य की उत्पत्ति होने के पहले ही राक्षस कहाँ से आ गये? परमात्मा और सूर्य के बीच में राक्षसों की उत्पत्ति नहीं बताई गई है। कदाचित् राक्षसों की उत्पत्ति मान ली जाय तो सूर्य के साथ उनकी शत्रुता कैसी? यदि पूर्व की शत्रुता कहें तो, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि परमात्मा के पुत्ररूप से उत्पन्न हुए सूर्य में ऐसी घातक वृत्ति—क्रूरता कहाँ से आई? यदि

अन्धकार को सूर्य का शत्रु मानकर उसी का नाश करने के लिए परमात्मा ने सूर्य को पैदा किया ऐसा कहा जाय तो "शत्रून्" इस बहुवचन की अनुपपत्ति होती है। इसके सिवाय सायणाचार्य ने तो मन्देहादि राक्षसों के नाम लेकर उनका बहु शत्रु के रूप में निर्देश किया है। तीसरी असगति यह है कि—सूर्य को देख कर सभी "उमा" प्राणी प्रसन्न होते हैं तब क्या सूर्य के उत्पन्न होने के पूर्व सभी प्राणी उत्पन्न हो चुके थे? यहा परमात्मा और सूर्य के बीच में प्राणियों की सृष्टि नहीं बताई गई है फिर ये प्राणी कहा से आगये! इस ऋचा से तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि राक्षस और प्राणी आदि लोक में पहले से ही उपस्थित थे। केवल सूर्य की अनुपस्थिति से उन्हें कष्ट होता था, राक्षस लोग प्राणियों को डराते थे। किन्तु परमात्मा ने सूर्य को पैदा किया, जिससे राक्षसों और अन्धकार का नाश हुआ होगा और सभी प्राणी प्रसन्न हो गये अथवा इतिहासकारों के कथनानुसार जहाँ जहाँ लम्बे समय तक सूर्य दर्शन नहीं होता ऐसे नोर्वे जैसे प्रदेश में रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी जब एशिया में आये तब प्रति दिन सूर्य के दर्शन होने से अन्धकार का नाश होते देखकर वे लोग प्रसन्न हुये, उनकी दृष्टि में सूर्य का नूतन आविर्भाव हुआ था। ऐसे सूर्य को परमात्मा के सिवाय दूसरा कौन पैदा कर सकता है ऐसी कल्पना होने पर इन ऋचाओं का उच्चारण उनके मुह से हुआ हो तो इसमें कौनसी असगति है? वास्तव में तो विषुवत् प्रदेश से २३॥ अंश दक्षिण में और २३॥ अंश उत्तर में सूर्य का उदय अस्त होता ही रहता है, किन्तु अन्य प्रदेश से सूर्य वाले प्रदेश में आने वाले

अर्थ—उत्तर सृष्टि की सिद्धि के लिये बाह्य द्रव्य न होने से देवों न यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में देवताओं ने विराट् पुरुष को हवि बनाया। वह यज्ञ मानसिक था इसलिए पुरुष आग में होमने के बजाय सङ्कल्प मात्र से ही पशु मान कर यज्ञस्तंभ में बांधा गया और हविरूप से मन में कल्पना कर लिया गया। इस यज्ञ में वसंतऋतु घृत था, ग्रीष्म ऋतु इंधन और शरद् ऋतु हविरूप में मानी गई थी।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥
(ऋग्० १०।९०।७)

अर्थ—सब से प्रथम उत्पन्न हुए विराट् पुरुष को ही यज्ञ पुरुष कहा जाता है। उस यज्ञ पुरुष को बर्हिष् अर्थात् मानस यज्ञ में देवताओं ने होम दिया। सृष्टि साधने योग्य प्रजापति आदि देवों ने तथा तदनुकूल ऋषियों ने उस पशुकर के माने हुए यज्ञ पुरुष से मानस यज्ञ की रचना की।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥
(ऋग्० १०।९०।८)

अर्थ—सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञ में होमा जाता है, उस यज्ञ का नाम "सर्वहुत्" है, उस सर्वहुत्=पुरुषमेधयज्ञ में से देवों ने दधि युक्त घृत आदि भोग्य पदार्थ, वायव्य, आरण्यक, (जंगली) और ग्राम्य पशु बनाये।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।
(ऋग्० १०।९०।९)

अर्थ—उस सर्वहुत यज्ञ में से ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम-वेद तथा छन्द गायन उत्पन्न हुये।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावय ॥
(ऋग्० १०।६०।१०)

अर्थ—उस यज्ञ में से घोड़े, ऊपर नीचे दाँत वाले खच्चर गन्हे आदि, गायें, बकरियें, भेड़े आदि उत्पन्न हुईं।

यत्पुरुष व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥
(ऋग्० १०।६०।११)

अर्थ—प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने जिस विराट् पुरुष को बनाया, उसकी कल्पना कितने प्रकार से की गई? उस पुरुष का मुख क्या था? दोनों भुजाएं क्या थीं? दो जघाएं और दो पाँव क्या थे?

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृत ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या शूद्रोऽजायत ॥
(ऋग्० १०।६०।१२)

अर्थ—ब्राह्मण उस पुरुष के मुख में से पैदा हुए, क्षत्रिय भुजा में से, वैश्य ऊरू में से, और शूद्र पाँव में से उत्पन्न हुये।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥
(ऋग्० १०।६०।१३)

अर्थ—उस पुरुष के मन में से चन्द्र, आख में से सूर्य, मुख में से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण में से वायु उत्पन्न हुए।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥
(ऋग्० १० । ९० । १४)

अर्थ—उस पुरुष की नाभि में अन्तरिक्ष की, मस्तक में स्वर्ग की, पाँव में भूमि-लोक की तथा कान में दिशाओं की कल्पना की गई ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषम् पशुम् ॥
(ऋग्० १० । ९० । १५)

अर्थ—उस यज्ञ की गायत्री आदि सात छन्द रूपी सात परिधियां थीं बारह मास, पांच ऋतुएं, तीन लोक और सूर्य ये इक्कीस समिध्—इन्धन थे । प्रजापति के प्राण और इन्द्रिय रूप देवताओं ने मानस यज्ञ करते हुए विराट् पुरुष को पशुत्व की भावनाओं से हविरूप मान कर यज्ञ स्तंभ में बांधा।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह नाकमहिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
(ऋग्० १० । ९० । १६)

अर्थ—देवताओं ने मानस यज्ञ से पुरुष यज्ञ या प्रजापति यज्ञ किया, उस यज्ञ में जगन्निर्माण रूप मुख्य धर्म था। उस यज्ञ के उपासक विराट् प्राप्ति रूप स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, जहाँ साध्य देवता = सृष्टि साधने के योग्य देवता रहते हैं, यह यज्ञ का दूसरा फल है ।

पुरुष सूक्त की समालोचना

पहली चार ऋचाएं पुरुष और जगत् का स्वरूप बताती हुई परस्पर व्याप्य व्यापकता दिखाती हैं। प्रथम ऋचा में पुरुष

के हजार मस्तक और हजार आँखें तथा पाव दिखाये हैं, यह घटना बराबर घटित नहीं होती है क्योंकि एक मस्तक के साथ दो आँखें और दो पाँव होने ही चाहिये। यदि एक मस्तक के साथ एक ही आँख और एक ही पाँव हो तो वह मनुष्य काना और लगड़ा कहा जाता है। इस असगति का परिहार करने के लिये भाष्यकार ने अच्छा खुलासा कर दिया है कि सहस्र शब्द उपलक्षण मात्र है। सायण ने सहस्र का अर्थ "अनत" किया है, रामानुज ने "असख्य" अर्थ किया है, और मगलाचार्य तथा महीधर ने "बहुत्व" अर्थ किया है। अर्थात्—मस्तक, आँख और पाँव वाले जीव जगत् में असख्य=अगणित =अनत हैं। वे सभी अवयव आदि पुरुष के गिने जाते हैं, इसलिये वह पुरुष अनन्त मस्तक, अनन्त आँख और अनन्त हाथ पाँव वाला है। इस पुरुष का नाम, विराट् पुरुष कहा जाता है, क्योंकि विराट् ब्रह्माड उसका शरीर है, और उस शरीर का अभिमानी, उस शरीर में प्रवेश करने वाला विराट् पुरुष है। ब्रह्माड और विराट् पुरुष परस्पर व्याप्य व्यापक हैं। दूसरा आदि पुरुष या मुख्य पुरुष जगद् व्यापक तो है पर जगत् से बाहर भी रहता है। प्रथम ऋचा बताती है कि वह जगत् से दस अगुल बाहर रहता है, अर्थात् विराट् पुरुष या ब्रह्माड से आदि पुरुष—परमात्मा दस अगुल चारों तरफ बाहर रहते हैं और तीसरी ऋचा में कहा है कि आदि पुरुष का एक पाद ब्रह्माड व्यापी है, और शेष तीन पाद ब्रह्माड से बाहर अलिप्त रहते हैं। यह अभिप्राय सायण और महीधर का है। इस हिसाब से पहली और तीसरी ऋचा में परस्पर विरोध दिखाई देता है। मगलाचार्य और रामानुज उक्त विरोध को इस प्रकार दूर करते हैं कि—"दिवि" शब्द का अर्थ ऊर्ध्वलोक, अथवा जनलोक, और सत्यलोक

समझना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि तीन चरण तो ऊर्ध्वलोक में प्रकाश करते हैं और एक चरण अधोलोक में प्रकाश करता है। इसीलिये भूलोक से स्वर्गलोक में अधिक सुख और अधिक प्रकाश है। इस हिसाब से पहली और तीसरी ऋचा का पारस्परिक विरोध तो दूर हो जाता है, किन्तु भाष्यकारों का मतभेद तो बना ही रहता है, क्योंकि सायण और महीधर के मत से आदि पुरुष ब्रह्माण्ड से तीन गुणा बड़ा है। तब मंगलाचार्य और रामानुज के मत से ब्रह्माण्ड व्यापी—ब्रह्माण्ड परिमित आदि पुरुष है, अर्थात् आदि पुरुष और विराट् पुरुष लगभग बराबर है। यह एक मतभेद हुआ।

(२) प्रथम ऋचा में भूमि शब्द आता है। उसका प्रसिद्ध अर्थ तो पृथ्वी होता है, किन्तु भाष्यकारों ने इस अर्थ को छोड़ कर नये ही अर्थ किये हैं। सायण ने भूमि शब्द का अर्थ ब्रह्माण्ड का गोला किया है। महीधर ने भूमि शब्द को भूतोपलक्षक मान कर उसका अर्थ पृथ्वी, जल, आदि पांच भूत किया है। मंगलाचार्य ने भूशब्दोपलक्षित भूर्भुवः स्वः यह त्रैलोक्य अर्थ किया है। रामानुज ने सशब्द का भूमि के साथ जोड़ कर समस्त भूमि शब्द का अर्थ किया है। प्रकृति सहित अर्थात् भूमि याने प्रकृति, उस सहित जीव, काल और स्वभावरूप समुदाय, इतना अर्थ सभूमि शब्द का किया है। इस प्रकार भिन्न भिन्न अर्थ करते हुए भी ब्रह्माण्ड व्यापित्व रूप तात्पर्य में चारों एक मत हो जाते हैं। किन्तु पांचवीं ऋचा में जो भू[illegible] आता है उसके अर्थ में सभी क्या मत भेद रखते हैं [illegible] [illegible] सायण तो भूमि अर्थात् [illegible] [illegible] [illegible] तल, वितल आदि सात [illegible] लोक

वाला अर्थ करते हैं। तब रामानुजाचार्य भूम्यन्त समुदाय ऐसा अर्थ करते हैं, इनका समन्वय कहाँ होगा? एक ही सूक्त में एक ही शब्द का एक स्थान पर एक अर्थ और दूसरे स्थान पर दूसरा अर्थ करना यह कल्पना नहीं तो क्या है?

(३) इसी प्रकार चौथी ऋचा में आये हुए साशन और अनशन शब्द के सम्बन्ध में भी मत भिन्नता है। सायण ता साशन अर्थात् भोजन व्यवहार सहित चेतन जगत् और अनशन अर्थात् भोजन व्यवहार रहित जड जगत् अर्थ करते हैं। तात्पर्य यह है कि परमात्मा का चतुर्थांश जड चेतन व्याप्त होता है, और तीन हिस्से चेतन ही चेतन रहते हैं। यह सायण का अर्थ हुआ। महीधर का भी यही अभिप्राय है। मगलाचार्य ने साशन शब्द का अर्थ अधोलोक और अनशन शब्द का अर्थ उर्ध्व लोक किया है, क्योंकि अशन अर्थात् कर्म फल कर्तृत्व भोक्तृत्वादि व्यवहार उससे युक्त वह साशन और ऐसे व्यवहार से रहित वह अनशन। अधोलोक में ऐसा व्यवहार है इसलिए वह साशन और उर्ध्वलोक में ऐसा व्यवहार नहीं है अत वह अनशन है। रामानुजाचार्य ने अशना का अर्थ वासना किया है। साशना अर्थात् वासना सहित अधो लोक और अनशना अर्थात् वासना रहित उर्ध्वलोक। इस हिसाब से सायण और महीधर का एक मत और मगलाचार्य तथा रामानुजाचार्य का दूसरा मत होता है। इस अर्थ भेद से आदि पुरुष की महत्ता मे भी बड़ा अन्तर हो जाता है। वह इस प्रकार है कि सायण और महीधर के मतानुसार आदि पुरुष के तीन हिस्से ससार स्पर्श से रहित और एक हिस्सा—चतुर्थ भाग ससारस्पर्शी—जगद्विकार सहित है। और मगलाचार्य और

रामानुजाचार्य के मतानुसार परमात्मा के तीन हिस्से ऊर्ध्व लोक में और एक हिस्सा अधोलोक में प्रकाशमान होता है, इस प्रकार चारों हिस्से ब्रह्माण्ड में ही आजाते हैं। फर्क मात्र इतना ही कि—ऊर्ध्व लोक में तीन हिस्से होने से अधिक प्रकाश होता है, तब अधोलोक में एक हिस्सा होने से थोडा प्रकाश रहता है।

पाचवीं ऋचा में सृष्टि का क्रम सक्षेप से बताया गया है सब म प्रथम विराट् की उत्पत्ति होती है। विराट् के दो अर्थ होते हैं—जगत् और ईश्वर स्थानीय विराट् पुरुष। जिसकी यहाँ प्रथम उत्पत्ति बताई है, वह विराट् पुरुष नहीं किन्तु ब्रह्माण्ड जगत् है। ब्रह्माण्ड तैयार हो जाने के बाद उसमें प्रवेश करने वाला और ब्रह्माण्ड को अपना देह बनाकर उस देह का अभिमान रखने वाला विराट् पुरुष (हजार मस्तक आदि अवयवों वाला ईश्वर) उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् वह विराट् पुरुष देव, तिर्यच, मनुष्य आदि जीवरूप धारण करता है। वह जीवों को अपने से अलग करता है। बाद म भूमि पृथ्वी बनाता है। उसके बाद ऊपर बताये हुए जीवों के शरीर बनाता है। बस इस एक श्लोक में विराट की सृष्टि का क्रम पूरा होजाता है। इसी बात को यदि स्पष्टता से कहें तो इस प्रकार कह सकते हैं—

१ वह पुरुष—आदि पुरुष,
२ विराट् ब्रह्माण्ड—जगत्,
३ विराट् पुरुष,
४ देवादि जीव,
५ पृथ्वी,
६ जीवों क शरीर।

यह क्रम सायण और महीधर के मतानुसार है। मगलाचार्य विराट् पुरुष को विराट् जगत् से उत्पन्न होना बताते हैं, आदि पुरुष से नहीं। और देवादि जीवों की भिन्न सृष्टि भी नहीं बताते हैं। इसके सिवाय छट्ठे नम्बर में जीवों के शरीर की जगह जरायुजादि चतुर्विध भूत योनि उत्पन्न होना कहते हैं। देवादि जीवों की उत्पत्ति के बदले ऊर्ध्वलोक में पुरुष प्रकाश करता है—ऐसा कहते हैं।

मगल भाष्य का स्पष्ट सृष्टि क्रम इस प्रकार है—

१ वह पुरुष—आदि पुरुष,
२ विराट् ब्रह्माड शरीर,
३ वैराज पुरुष,
४ वैराज पुरुष का ऊर्ध्वलोक प्रकाशन,
५ भूमि पृथ्वी,
६ जरायुजादि भूत योनि।

रामानुज के भाष्यानुसार सृष्टि क्रम—

१ वह पुरुष—अन्तर्यामि आदि पुरुष,
२ कार्य कारण रूप प्रकृत्यधिष्ठाता विराट् पुरुष,
३ महत्तत्वादि कार्याधिष्ठाता अधि पुरुष,
४ महत्तत्व अहंकारादि रूप कार्य परिणत स्वतत्र अतिरिक्त,
५ भूम्यन्त समुदाय = पच भूत समुदाय सर्जन,
६ देह आदि।

उक्त प्रकार से चारों भाष्यकारों के भिन्न भिन्न अभिप्राय हैं। स्वामी दयानन्दजी का अभिप्राय तो इनसे भी अलग है। इन्होंने तो बहुत से स्थानों पर अर्थ में परिवर्त्तन किया है जिसकी समा-

यह तो महिमा बढने का लक्षण है, किन्तु शिव में से जीव का होना यह तो प्रत्यक्ष महिमा घटने का लक्षण है, इस प्रकार परमात्मा की महिमा घटाना क्या उचित है? महिमा घटाने वाली लीला वासना वाले पुरुषों को हो सकती है, वासना रहित परमात्मा को लीला कैसी? आनन्दघनजी ने ठीक ही कहा है कि—

"दोषरहित ने लीला नवि घटेरे, लीला दोष विलास"

एक तरफ तो यह कहना कि—"पुरुष एवेदम्" यह जगत् पुरुष रूप ही है और दूसरी तरफ यह कहना कि "सजातोऽत्यरिच्यत" विराट् पुरुष देव तिर्यञ्च मनुष्यादि जीव रूप से अलग हुआ, क्या इन दोनों बातों में परस्पर विरोध नहीं है। पहले जीव बनाये, फिर भूमि बनाई, और उसके बाद जीवों के शरीर बनाये, तो बतलाइये कि—जब तक शरीर न बने थे तब तक जीवों को कहाँ रक्खा गया? शरीर बनने के पूर्व ही परमात्मा के लिये "सहस्र शीर्षा" इत्यादि विशेषण लगाना कहाँ तक घटित हो सकते हैं? ऐसे अनेक प्रश्न, अनेक मत भेद पाच ऋचाओं की समालोचना में उपस्थित होते हैं, इसलिये यह प्रक्रिया खास विचारने के योग्य है। अब जरा पीछे की ऋचाओं पर विचार करें।

छट्ठी से दसवीं तक की पाँच ऋचाएँ देव सृष्टि का प्रतिपादन करती हैं। विराट् का अधिकार देवताओं को मिलता है। विराट् रिटायर हो जाते हैं और देवता उनका कार्य भार उठा लेते हैं। सायण और महीधर कहते हैं कि उत्तर सृष्टि के लिये द्रव्यान्तर की जरूरत होने से देवताओं को यज्ञ आरम्भ करना पडता है, यज्ञ में हवि दी जाती है, और हवि के लिये किसी उत्तम वस्तु की आवश्यकता रहती है। दूसरी उत्तम वस्तु के नहीं मिलने से

अर्थ—अग्रे = सृष्टि के पहले हिरण्यगर्भ = स्वर्ण के अंड में से उत्पन्न होने वाला प्रजापति विद्यमान था। वह हिरण्यगर्भ की अध्यक्षता में सृष्टि उत्पन्न करने वाले परमात्मा से उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही सारे जगत् का स्वामी बन गया। उसने स्वर्गलोक द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि को धारण किया। उस प्रजापति की हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> यन द्यौरग्रा पृथिवी च दृह्ला येन स्व स्तभितं येन नाक ।
> यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै ॥
>
> (ऋग्० १० । १२१ । ५)

अर्थ—जिस प्रजापति ने अन्तरिक्ष, पृथ्वी, और स्वर्ग को स्थिर किया, तथा नाक = सूर्य को आकाश में रोक रक्खा और जो आकाश में पानी का निर्माण करता है, उस प्रजापति देव का हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> मानो हिंसीज्जनिता य पृथिव्या, यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान
> यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै ॥
>
> (ऋग्० १० । १२१ । ९)

अर्थ—जो प्रजापति पृथ्वी को उत्पन्न करने वाला है, जिस सत्यधर्म वाले प्रजापति ने स्वर्ग को उत्पन्न किया जिसने आह्लादजनक बहुत पानी को पैदा किया, उस प्रजापति देव की हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> प्रजापते न त्वदेतान्य यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
>
> (ऋग्०१० । १२१ । १०)

अर्थ—हे प्रजापते ! तेरे सिवाय अन्य कोई भी देव विश्वव्यापी महाभूतादि सर्जन करने के लिए समर्थ नहीं है।

इन चार ऋचाओं में या दस ऋचा वाले सूक्त में अकेले प्रजापति को ही सृष्टि कर्ता बताया गया है। दसवीं ऋचा में तो भार पूर्वक कहा गया है कि—तेरे सिवाय अन्य कोई सर्व भूतों को सर्जने में समर्थ नहीं है।इससे हम पूछते हैं कि—क्या इस सूक्त से पुरुष सूक्त और मनुस्मृति की बाता का खंडन नहीं हो जाता है? इस से प्रजापति के सिवाय बाकी के सभी उम्मेदवारों को अपनी अपनी सृष्टि का दावा नहीं उठा लेना पड़ता है? पहली ऋचा के अवतरण में सायण ने हिरण्यगर्भ को प्रजापति के पुत्र रूप से दिखाया है। क्या इस बात में परस्पर विरोध नहीं है?

ऋचादि सृष्टि

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
(ऋग्० १०। १६०। १)

अर्थ—ऋत=मानसिक सत्य, और सत्य=वाचिक सत्य तपे हुए तप से उत्पन्न हुए, उसके बाद रात्रि=अन्धकार उत्पन्न हुआ, उसके बाद पानी वाले समुद्र उत्पन्न हुये।

समुद्रादर्णवा दधि सम्वत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥
(ऋग्० १०। १६०। २)

अर्थ—समुद्र के बाद सम्वत्सर उत्पन्न हुआ (सम्वत्सर सर्वकाल का उपलक्षक है, अर्थात् सर्वकाल उत्पन्न हुआ) वह सूर्य अहोरात्रि को (उपलक्षण से सर्व भूतों को) उत्पन्न करता हुआ सर्व जगत् का स्वामी बना।

अर्थ—अग्रे = सृष्टि के पहले हिरण्यगर्भ = स्वर्ण के से उत्पन्न होने वाला प्रजापति विद्यमान था। यह की अध्यक्षता में सृष्टि उत्पन्न करने वाले उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही सारे जगत् का स्वामी उसने स्वर्गलोक द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि को धारण उस प्रजापति की हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> यन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्व स्तभित येन नाक ।
> यो अ तरिक्षे रजसा विमान कस्मै ॥
> (ऋग्० १० । १२१ । ५)

अर्थ—जिस प्रजापति ने अन्तरिक्ष, पृथ्वी, और स्वर्ग को स्थिर किया, तथा नाक = सूर्य को आकाश में रोक रक्खा और जो आकाश में पानी का निर्माण करता है, उस प्रजापति देव की हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> माना हिंसीज्जनिता य पृथिव्या, यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान
> यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै ॥
> (ऋग्० १० । १२१ ।

अर्थ—जो प्रजापति पृथ्वी को उत्पन्न करने व जिस सत्यधर्म वाले प्रजापति ने स्वर्ग को उत्पन्न किया, आह्लादजनक बहुत पानी को पैदा किया, उस प्रजापति की हम हवि द्वारा सेवा करते हैं।

> प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता
> (ऋग्०१०

अर्थ—हे प्रजापते ? तेरे सिवाय अन्य व्यापी महाभूतादि सर्जन करने के लिए समर्थ

धाता का सृष्टि क्रम—

१ ऋत	६ अहोरात्रि—सर्वभूत	
२ सत्य	७ सूर्य चन्द्र	
३ रात्रि (अन्धकार)	८ स्वर्ग	त्रैलोक्य
४ समुद्र	९ पृथ्वी	
५ सम्वत्सर—काल	१० अन्तरिक्ष	

प्रजापति की सृष्टि का चौथा प्रकार

आपो वा इदमग्रे सलिल मासीत् । तेन प्रजापतिरश्रम्यत् । कथमिद स्यादिति । सो पश्यत्पुष्करपर्णं तिष्ठत् । सोऽमन्यत् । अस्तिवैतत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूप कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथिवी मध आच्छ्र्‌त् । तस्या उपहत्योदमज्जत । तत्पुष्करपर्णेऽप्रथयत् । यद प्रथयत् । तत्पृथि-व्यै पृथिवित्वम् ।

(कृ० यजु० तै० ब्रा० १ । १ । ३ । ७)

अर्थ —सृष्टि के पूर्व यह जगत् जलमय था । इसलिये प्रजा पति ने तप किया और विचार किया कि यह जगत किस प्रकार बने इतने में उसे एक कमल पत्र दिखाई दिया । उसको देखलेने पर उन्होंने तर्क किया कि इसके नीचे भी कुछ होना चाहिए। इसलिये प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर के पानी में डुबकी लगाई, और भूमि के पास पहुँच कर दाढ से कुछ गीली मिट्टी खोदर ऊपर लाया, उस मिट्टी को कमल पत्र पर फैलाई, जिससे यह बडी पृथ्वी बन गई। बस यही पृथ्वी का पृथ्वी पन है। यह देख कर प्रजापति को संतोष होगया कि स्थावर जगम की आधार भूत पृथ्वी तो बन गई अब अन्य भी सब ठीक हो जायगा।

पहले कहा गया था कि—सृष्टि के पूर्व "नेवेह किंचनाग्र

उत्पन्न करवाने को उसे गर्भवान बनाना, क्या यह परमात्म पद की अवहेलना नहीं है? असुर, मनुष्य और देवता एक ही गर्भ से पैदा हुए, फिर भी जन्म हरएक का भिन्न भिन्न स्थान से होता है अर्थात् असुरों का जघन स्थान से, मनुष्यों का जननेन्द्रिय से, और देवताओं का मुँह से। इसका कारण क्या है? एक ही प्रजापति रूप पिता के समान पुत्र होते हुए भी, एक को मिट्टी के पात्र में, दूसरे को काष्ठ पात्र में, तीसरे को रजत पात्र में और चौथे को स्वर्ण पात्र में आहार देना और वह भी भिन्न भिन्न प्रकार का देना, इसका क्या कारण है? क्या परम पिता का भी ऐसी भेद दृष्टि रखना उचित है? असुरों के साथ रात्रि उत्पन्न की गई मनुष्यों के साथ प्रकाश, ऋतुओं के साथ सन्ध्या, और देवताओं के साथ दिन उत्पन्न किया। बिना दिन के रात्रि और सन्ध्या कैसे घट सकती हैं? दिन और रात्रि का सन्धि काल ही तो सन्ध्या कही जाती है। सूर्य के उदय अस्त से ही दिन, रात्रि, सन्ध्या और प्रकाश आप ही बन जाते हैं। इन्हें उत्पन्न करने का प्रजापति को कष्ट क्यों उठाना पड़ा? इसके सिवाय पशु, पक्षी कीट, वृक्ष, लता वायु, आकाश आदि की तो सृष्टि बताई ही नहीं, क्या ये अपने आप उत्पन्न हो गये, या किसी दूसरे ने इन्हें उत्पन्न किया? [illegible] में तो इन सब की सृष्टि भी [illegible] है।

अर्थ—सृष्टि के पूर्व केवल पानी ही था। प्रजापति वायु रूप होकर उस में फिरने लगा। पानी के नीचे उसने इस पृथ्वी को देखा। उसे देख कर प्रजापति ने वराह—सूअर का रूप धारण किया और पानी में से पृथ्वी को खोद कर ऊपर ले आया। फिर वराह का रूप छोड़ कर प्रजापति विश्वकर्मा बना, और पृथ्वी का प्रमार्जन किया, फिर उसका विस्तार किया, जिससे यह बड़ी पृथ्वी बन गई। विस्तार के कारण से ही इस पृथ्वी का पृथ्वीपन है।

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। स प्रजापतिः पुष्करपर्णे वातो भूतोऽलेलायत्। स प्रतिष्ठां नाविन्दत। स एतदपां कुलायमपश्यत्। तस्मिन्नग्निमचिनुत। तदियमभवत्। ततो वै स प्रत्यतिष्ठत्।

(कृ० यजु० तै० स० ५। ६। ४)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व केवल पानी ही था। वह प्रजापति पवन रूप होकर कमल पत्र पर हिलने लगा, उसे कहीं भी स्थिरता नहीं मिली, इतने में उसे शेवाल (काई) दिखाई दी। उस शेवाल पर उस ने ईंटों से अग्नि की चुनाई (चुनना बनवाना) की, जिससे पृथ्वी बनगई। उसके ऊपर उस बैठने का स्थान (प्रतिष्ठा) मिल गया।

कृष्ण यजुर्वेद तैत्तरीय सहिता के ऊपर कहे हुए दो पाठ तथा कृष्ण यजुर्वेद तैत्तरीय ब्राह्मण के प्रथम काड प्रथम प्रपाठक के तीसरे अनुवाक का एक पाठ जो कि सृष्टि के चौथे प्रकार से बताया गया है, उक्त तीनों पाठों की प्रक्रिया एक ही पृथ्वी बनाने की है। फिर भी तीनों में क्रम भिन्न भिन्न है।

(१) ब्राह्मण के पाठ में प्रजापति तप करता है और किस प्रकार सृष्टि बनाना इसकी चिन्ता भी करता है। कमल पत्र

अर्थ—उस यज्ञपुरुष ने प्रजापति से कहा कि मैं तेरे समीप पृथ्वी पर आऊँ ? प्रजापति ने कहा कि यहाँ जगह नहीं है। तब उस यज्ञपुरुष ने विश्वकर्मा को पूछा कि मैं तुम्हारे पास अन्तरिक्ष में आऊँ ? विश्वकर्मा ने पूछा कि क्या वस्तु लेकर तू मेरे पास आयेगा ? यज्ञपुरुष ने कहा कि—दिशाओं में देन की आहुति लेकर आऊँगा। विश्वकर्मा ने उसे स्वीकार कर लिया। यज्ञपुरुष ने अन्तरिक्ष में दिशा का आश्रय किया और प्राची आदि दिशाएँ बन गईं।

स परमेष्ठी प्रजापतिमब्रवीत्। उपत्वाऽयानीति। नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत्। स विश्वकर्माणञ्च यज्ञञ्चाब्रवीत्। उप वामाऽयानीति। नेह लोकोऽस्तीत्य-ब्रूताम्। स एतां तृतीयां चितिमपश्यत्। तामुपाधत्त तदसावभवत्।

(कृ० यजु० तै० स० ५। ७। ५)

अर्थ—(उसके बाद चौथा परमेष्ठी आता है) परमेष्ठी ने प्रजापति, विश्वकर्मा और यज्ञपुरुष को पूछा कि मैं तुम्हारे पास आऊँ ? तीनों ने उत्तर दिया कि हमारे पास जगह नहीं है। इतने में परमेष्ठी ने तीसरी चिति = आहुती देखी, उसका आश्रय लिया तो वह स्वर्ग लोक बन गई।

स आदित्य प्रजापतिमब्रवीत्। उपत्वाऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत्। स विश्वकर्माणं च यज्ञं चाब्रवात्। उप वामाऽयानीति। नेह लोकोऽस्तीत्यब्रूताम्। स परमेष्ठिनमब्रवीत्। उपत्वाऽयानीति। केनमोपैष्यसीति लोकं पृणयेत्यब्रवीत्तम्। लोकंपृणयोपैत्तस्मादयातयाम्नी। लोकं पृणाऽयातयामा ह्यसावादित्य।

(कृ० यजु० तै० स० ५। ७। ५)

अर्थ—उस सूर्य ने प्रजापति को कहा कि मैं तेरे पास आऊँ ? न कहा कि यहाँ अवकाश नहीं है। उसके बाद विश्व

कर्मा और यज्ञपुरुष को पूछा तो उन दोनों ने भी मना कर दिया। तब सूर्य ने परमेष्ठि को पूछा, परमेष्ठि ने कहा कि क्या लेकर मेरे पास आयगा ? सूर्य ने कहा कि लोकपृणा (बार बार उपयोग करने पर भी जिसका तत्त्वक्षीण नहीं हो और चिति में जहां छिद्र हो जाय, वहां जिससे छिद्र बन्द किया जाय वह लोकपृणा कहलाती है) लेकर मैं आऊँगा। परमेष्ठी ने स्वीकार किया, सूर्य ने लोकपृणा के साथ स्वर्ग में आश्रय लिया और प्रति दिन आहुति करके लोक को प्रकाश देने का कार्य चालू रक्खा। लोकपृणा अक्षीण-सारा है, इस लिये सूर्य भी अक्षीण सार है, अर्थात् अक्षय प्रकाश वाला है।

तानृषयोऽब्रुवन्नुप व आयामेति। केन न उपैष्यथेति। भूम्नेत्यब्रुवन् तान् द्वाभ्यां चितीभ्यामुपायन्त।

(कृ० यजु० तै० स० ५।७।५)

अर्थ—ऋषियों ने प्रजापति आदि पाँचों से पूछा कि हम तुम्हारे पास आवें ? पाँचों ने पूछा कि तुम हमें क्या दोगे ? ऋषियों ने कहा कि हम बहुत बहुत देंगे। पाँचों ने स्वीकार किया। ऋषियों ने चौथी और पाँचवीं दो चितियों के साथ आश्रय लिया।

यह सृष्टिक्रम सब से विलक्षण है। प्रजापति ने भूलोक बनाया, विश्वकर्मा ने अन्तरिक्ष लोक बनाया, परमेष्ठी ने स्वर्गलोक बनाया, यज्ञ पुरुष ने दिशाएं बनाईं। अनेक भागीदारों (हिस्सेदारों) ने मिल कर सृष्टि बनाई है यह कहना क्या ठीक नहीं है ? एक की बनाई हुई सृष्टि में दूसरे को पैर रखने का भी अधिकार नहीं है वैसी हालत में भागीदारी कैसी ? बदले में रिश्वत

(लाच) लकर स्थान देना यह स्वार्थ वृत्ति नहीं है क्या ? चिति= अग्नि, अथवा आहुति में त्रैलोक्य की रचना कैसे हुई ? जब अग्नि पाँच भूतों में स एक भूत है, तो उस म स पाँचों भूतों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? तीन चितिओं में से तीन लोक बने तो ऋषियों की चौथा व पाँचवीं चिति से क्या बना ? क्या उन में से चेतन सृष्टि उत्पन्न हुई ? सब को भिन्न भिन्न सृष्टिकर्ता मानें या सब को एक कंपनी मानें। कंपनी भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि इनमें स किसी को भी एक दूसरे की सहायता नहीं है।

प्रजापति की अशक्ति का एक और नमूना देखिये—

प्रजापति प्रजा सृष्ट्वा प्रेमानु प्राविशत्। ताभ्य पुन सम्भवितु नाशक्नोत्। सोऽब्रवीत्। ऋध्नवदित् स यो मेत पुन सचिनवदिति। तं देवा समचिन्वन्। तता वै त आध्नुवन्।

(कृ० यजु० तै० स० ५। ५। २)

अर्थ—प्रजापति ने प्रजा का सर्जन करके प्रेम स उस प्रजा में प्रवेश किया। किन्तु उसम से पीछे निकल न सका तब उसने देवताओं को कहा कि जो मुझे इसमें से निकाल देगा वह ऋद्धिमान् होगा। देवताओं ने उसे बाहर निकाल दिया जिससे वे ऋद्धिमन्त हो गये।

प्रजापति प्रजा में फँस जाता है। अपने को उसम से निकलवाने के लिये देवों को लालच देकर प्रार्थना करनी पड़ती है। क्या यह प्रजापति की कमजोरी नहीं है ? क्या इससे यह स्पष्ट है कि देवों स प्रजापति की शक्ति न्यून है ?

प्रजापति की सृष्टि का आठवाँ प्रकार

एकयाऽस्तुवत । प्रजाअधियन्त । प्रजापतिरधिपतिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत । ब्रह्माऽसृज्यत । ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् । पञ्चभिरस्तुवत । भूता यसृज्यन्त । भूतानां पतिरधिपतिरासीत् । सप्तभिरस्तुवत । सप्तर्षयोऽसृज्यन्त । धाताधिपतिरासीत् ।

(शु० यजु० माध्य० स० १४ । ३० । २८

अर्थ—प्रजापति ने प्राणाधिप्रायक देवों को कहा कि तुम मेरे साथ स्तुति में सम्मिलित होओ। हम लोग स्तुति करके प्रजा उत्पन्न करें। देवताओं ने यह बात स्वीकार करली। प्रजापति ने पहले अकेली वाणी के साथ स्तुति की, जिससे प्रजा पति क गर्भ रूप से प्रजा उत्पन्न हुई। उसका वह अधिपति हुआ (१) उसके बाद प्राण, उदान और व्यान इन तीनों के साथ प्रजापति ने दूसरी स्तुति की, जिससे ब्राह्मण जाति उत्पन्न हुई, उसका अधिपति देवता ब्रह्मणस्पति हुआ (२) उसके बाद पाँचों प्राणों के साथ तीसरी स्तुति की, उसस पाँच भूत उत्पन्न हुये, उनका अधिपति भूतपति बना (३) तत्पश्चात् दो कान, दो आँख, दो नाक और वाणी इन सातों के साथ प्रजापतिने चौथी स्तुति की तो उससे सप्तऋषि उत्पन्न हुए, धाता उनका अधिपति देव बना (४)।

नवभिरस्तुवत । पितरोऽसृज्यन्त । अदितिरधिपत्नी आसीत् । एकादशभिरस्तुवत । ऋतवोऽसृज्यन्त । आर्तवा अधिपतय आसन् । त्रयोदशभिरस्तुवत । मासा असृज्यन्त । संवत्सरोऽधिपतिरासीत् । पञ्चदशभिरस्तुवत । क्षत्रमसृज्यत । इन्द्रोऽधिपतिरासीत् । सप्तदशभिरस्तुवत । ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त । बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ।

(शु० यजु० माध्य० स० १४ । ३० । २६)

अर्थ—दो आख, दो कान, दो नाक, एक वाणी, यह सात ऊर्ध्वप्राण तथा दो अध प्राण इस तरह नौ प्राणों के साथ प्रजापति ने पाँचवीं स्तुति का, जिससे पितरों की उत्पत्ति हुई। अदिति इनकी अधिपत्नी हुई (५) दस प्राण और एक आत्मा इन ११ के साथ प्रजापति ने छठी स्तुती की, जिससे ऋतुओं का उत्पत्ति हुई, आर्तव देव इनका अधिपति बना (६) दस प्राण, दो पाँव और एक आत्मा इन तेरह के साथ प्रजापति ने सातवीं स्तुति की, जिस स महानों की उत्पत्ति हुई, सवत्सर उनका अधिपति बना (७) हाथों का दस अगुलिया, दो हाथ, दो बाहु, और एक नाभि के ऊपर का भाग, इन पन्द्रहों के साथ प्रजापति ने आठवीं स्तुति की, जिसस क्षत्रिय जाति की उत्पत्ति हुई, इन्द्र इसका अधिपति बना (८) पैरों की दस अगुलिया, दो उरु दो जघाएँ और एक नाभि के नीचे का भाग, इन सत्रह के साथ प्रजापति ने नवीं स्तुति की, जिससे ग्राम्य पशुओं की उत्पत्ति हुई, बृहस्पति इनका अधिपति हुआ (९)

नव दशभिरस्तुवत। शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्। एकविंशत्या स्तुवत। एकशफा पशवाऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्। त्रयो विंशत्याऽस्तुवत। क्षुद्रापशवो ऽसृज्यन्त। पूषाधिपतिरासीत्। पञ्चविंशत्याऽस्तुवत। आरण्य पशवोऽसृज्यन्त। वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविंशत्याऽस्तुवत। द्यावापृथिवीव्यैताम्। वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायस्त एवाधिपतय आसन्।

(शु० यजु० माध्य० स० १४। ३०। ३०)

अर्थ—हाथों की दस अगुलियाँ और ऊपर, नीचे रहे हुए शरीर के नौ छिद्र यों १९ प्राणों के साथ प्रजापति ने दसवीं स्तुति की, जिसस शूद्र और वैश्य उत्पन्न हुए, अहोरात्रि इनका अधि-

पति हुआ (१०) हाथ और पैर की बीस अगुलियें और एक आत्मा, इन इकीस के साथ प्रजापति ने ११ वीं स्तुति की, जिस से एक खुर वाले पशुओं की उत्पत्ति हुई, वरुण उनका अधिपति हुआ।(११) हाथ पैर की बीस अगुलियें, दो पाँव, एक आत्मा यों तेईस के साथ प्रजापति ने बारहवीं स्तुति की, जिससे क्षुद्र पशुओं की उत्पत्ति हुई। पूषा उनका अधिपति हुआ (१२) हाथ पाँव की बीस अगुलियाँ, दो हाथ, दो पाँव, एक आत्मा, यों पचीस के साथ प्रजापति ने तेरहवीं स्तुति की, जिसमे आरण्यक पशुओं की उत्पत्ति हुई। वायु इनका अधिपति हुआ (१३) हाथ पाव की बीस अगुलिया दो भुजाएँ, दो ऊरु, दो प्रतिष्ठा और एक आत्मा, यों सत्ताईस के साथ प्रजापति ने चौदहवीं स्तुति की, जिससे स्वर्ग और पृथ्वी उत्पन्न हुई। वैसे ही आठ वसु, ग्यारह रुद्र, और बारह आदित्य भी उत्पन्न हुए, और इनके अधिपति भी ये ही बने (१४)

नवविंशत्याऽस्तुवत। वनस्पतयाऽसृज्यन्त। सोमोऽधिपतिरासीत्। एकत्रिंशताऽस्तुवत। प्रजा असृज्यन्त। यवश्चा यवाश्चाधिपतय आसन्। त्रयस्त्रिंशताऽस्तुवत। भूतान्यशाम्यन् प्रजापति परमेष्ठ्यधिपति रासीत्।

(शु० यजु० माध्य० स० १४। ३०। ३१)

अर्थ—हाथ पाँव की बीस अगुलिया और नौ छिद्र रूप प्राण, यों २६ के साथ प्रजापति ने पन्द्रहवीं ईंट की स्तुति की, जिससे वनस्पतियें उत्पन्न हुई, सोम उनका अधिपति हुआ, (१५) बीसअगुलिया दस इन्द्रियाँ और आत्मा यों इकत्तीस के साथ प्रजापति ने सोलहवीं स्तुति ईंट की की, जिसमे प्रजा उत्पन्न हुई, इनके अधिपति यव और अयव देव हुए, (१६) बीस अगुलियाँ दस इन्द्रियाँ दो पाँव, और एक आत्मा, यों तेंतीस के

साथ प्रजापति ने सत्रहवीं स्तुति की, जिससे सभी प्राणी सुखी हुए। परमेष्ठी प्रजापति इनका अधिपति बना, (१७)

सृष्टि क्रम कोष्टक

१	सामान्य प्रजा	९	ग्राम्य पशु,
२	ब्राह्मण	१०	शूद्र और वैश्य,
३	पाँच भूत,	११	एक खुर वाले पशु
४	सप्त ऋषि,	१२	क्षुद्र पशु—अजा आदि,
५	पितर,	१३	जंगली पशु,
६	ऋतुएँ,	१४	द्यावा पृथ्वी,वसु आदि देवता,
७	मास,	१५	वनस्पति,
८	क्षत्रिय,	१६	सामान्य प्रजा,

१७ प्राणियों की सुख सम्पत्ति

समालोचना

उक्त क्रम में पृथ्वी चौदहवें नम्बर पर उत्पन्न हुई है। तब यह शंका उत्पन्न होती है कि—बिना पृथ्वी के ब्राह्मण आदि चार वर्ण के मनुष्य, और गाँव तथा जंगल के पशु कहाँ रहे होंगे? पहले के क्रम में देवता की उत्पत्ति पहले और इस क्रम में पहले मनुष्य और बाद में देवताओं का पैदा होना लिखा है इसका क्या कारण है? प्रजापति ने स्तुति करने में प्राण और शरीर के अवयवों की सहायता ली है। क्या इनके बिना अकेले प्रजापति की शक्ति नहीं थी? यदि शक्ति थी, तो दूसरों की सहायता की क्या आवश्यकता थी? ईंट की स्तुति करने से सृष्टि उत्पन्न हुई है। क्या यह भी कोई वैज्ञानिक नियम है? इस सारे क्रम में सूर्य

चन्द्र की उत्पत्ति होने का तो उल्लेख ही नहीं है। फिर इनके बिना ही ऋतु और महीनों की उत्पति कैसे हो गई ? पच महाभूतों की उत्पत्ति के पूर्व ही ब्राह्मण जाति के शरीर किस प्रकार उत्पन्न हो गये ? बिना महाभूतों के शरीर बनना शक्य ही नहीं है।

प्रजापति की सृष्टि का नौवाँ प्रकार

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ सपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तां समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त।

(बृहदा० १ । ४ । ३ ।)

अर्थ—उस प्रजापति को चैन नहीं पड़ा। एकाकी होने से रति (आनन्द) नहीं हुई, वह दूसरे की इच्छा करने लगा, वह आलिंगित स्त्री पुरुष युगल के समान बड़ा हो गया बाद में प्रजापति ने अपने दो भाग किये, उसमें से एक भाग पति और दूसरा भाग पत्नी रूप बना। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि जिस प्रकार एक चने की दाल के दो भाग होते हैं वैसे ही दो भाग उसके हुए आकाश का आधा हिस्सा पुरुष से और आधा हिस्सा स्त्री से पूरित हुआ, पुरुष भाग ने स्त्री भाग के साथ रति क्रीडा की, जिससे मनुष्य उत्पन्न हुए।

साहेयमीक्षाञ्चक्रे कथं नु माऽऽत्मन एव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभवदृषभ इतरस्तां समेवाभवत् ततो गावोऽजायन्त। वडवेतराभवदश्ववृष इतरः। गर्दभीतरा गर्दभइतरस्तां समेवाभवत्तत एकशफमजायत। अजेतराभवद्वस्त इतरोऽविरितरा मेष इतरस्तां

समेवाभवत्तताऽजावयोऽजाय तैवमेव यदिदं किंच मिथुन मापीपिलिकाभ्यस्तत्सर्वं मसृजत (बृहदा० १ । ४ । ४)

अथ—स्त्री भाग का नाम शतरूपा रखा गया। वह शत रूपा विचार करने लगी कि मैं प्रजापति की पुत्री हूँ क्योंकि उसने मुझे उत्पन्न किया है और पुत्री का पिता के साथ सम्बन्ध करना स्मृति में भी निषिद्ध है, तब यह क्या अकृत्य कर डाला? मैं कहीं छिप जाऊं! ऐसा सोच कर वह गाय बन गई। तब प्रजापति ने बैल बन कर उसके साथ समागम किया, जिससे गायें उत्पन्न हुई। शतरूपा घोड़ी बनी तो प्रजापति घोड़ा बना, शतरूपा गधी बनी तो प्रजापति गदहा बना, दोनों का समागम हुआ, जिससे एक खुर वाले प्राणियों की सृष्टि हुई, पश्चात शतरूपा बकरी बनी, प्रजापति बकरा बना, शतरूपा भेड़ बनी, प्रजापति भेड़िया बना, दोनों के सभोग से बकरे और भेड़ियों की सृष्टि हुई। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के युगल रूप बनते बनते कीड़ों मकोड़ों तक की सृष्टि उत्पन्न हुई।

समालोचना

ऊपरके प्रसंग में प्रजापति में ईश्वरत्त्व जैसा कुछ भी नहीं दिखाई देता है बल्कि प्रजापति को सामान्य विषयी मनुष्य से भी गया बीता बताया गया है। स्वयं भाष्यकार शंकराचार्य प्रस्तुत मंत्र के भाष्य में लिखते हैं कि—"संसार विषय एव प्रजापतिरपि यत स प्रजा पतिर्विवेर रमे रतिं नान्व सवन्रत्याविष्टोऽमूढ़िर्यथो ऽस्मदादिव देव" भाष्य के टीकाकार आनन्दगिरि भी कहते हैं कि—'प्रजापतेर्मथाविष्टत्वं संसारान्तर्भूतत्त्वमुक्तमिदानीं तत्रैव हृदयन्तर माह इत चेति अरत्या विष्टत्वे प्रजापतेरेमाकित्व हेतू करोतियत

देवताओं ने उससे कहा कि इस कार्य के बदले में तुम हमसे कुछ माँगो। रुद्र ने पशुओं का आधिपत्य माँगा। देवताओं ने यह स्वीकार कर लिया जिससे रुद्र का नाम पशुवत् या पशुपति प्रसिद्ध हुआ।

प्रजापति को लक्ष्य करके रुद्र ने धनुष खींच कर बाण छोड़ा जिसस, मृग रूपी प्रजापति बाण से विंधकर अर्थो मुख स ऊँचा उछला, और आकाश में मृगशिर नक्षत्र के रूप में रह गया। रुद्र ने उसका पीछा किया। वह भी मृगव्याध के तारे के रूप में आकाश में रह गया। लालवर्ण वाली जो मृगी थी वह भी आकाश में रोहिणी नक्षत्र के रूप मे रह गई। रुद्र के हाथ मे जो बाण छुटा था वह अग्रशल्य, और पावरूप तीन अवयव वाला होने से, त्रिकाण्ड तारा रूप से रह गया। आज तक भी ये आकाश म एक दूसरे के पीछे घूमा करत हैं।

मनुष्य-सृष्टि

तद्वा इद प्रजापते रेत सिक्तमधावत् तत्सरोऽ भवन् ते देवा अनुवन् मेद प्रजापते रेतो दुषदिति यदनुवन्मेद प्रजापते रेतो दुषदिति तन्मादुषम भवन् तन्मादुषस्य मादुषत्वम्। मादुष ह वै नामैतद्यन्मानुष सन्मानुषमित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवा।

(ऐत० ब्रा० ३। ३। ६)

अर्थ—मृग रूप प्रजापति ने मृगी में वीर्य सिचन किया, वह वीर्य बहुत होने से बाहर निकल कर पृथ्वी पर पडा, उसका प्रवाह चलकर ढालू जमीन में एकत्रित हुआ, जिससे तालाब बन गया। देवताओ ने प्रजापति का यह वीर्य दूषित न हो जाय इस लिए इस तालाब का नाम "मादुष" रख दिया। यही मादुष का

प्रजापति की सृष्टि का दसवाँ प्रकार

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत् । तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूता-मभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैच्छन् य एनमारि-ष्यत्येतमन्योऽन्यस्मिन्नाविन्दं स्तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरंस्ताः सम्भृता एष देवोऽभवत्तदस्यैतद्भूतवन्नाम ।

तं देवा अब्रुवन्नयं वै प्रजापतिरकृतमकरिमं विध्येति स तथे-त्यब्रवीत्स वै वो वरं वृणा इति वृणीष्वेति स एतमेव वरमवृणीत पशूना-माधिपत्यं तदस्यै तत्पशुमन्नाम ।

तमभ्यायत्याविध्यत्स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृग इत्याचक्षते, य उ एव मृगव्याधः स उ एव स या रोहित्सा रोहिणी यो एवेषु त्रिकाण्डः सो एवेषु त्रिकाण्डा । (ऐत० ब्रा० ३ । ३ । ६)

अर्थ—प्रजापति ने अपनी पुत्री को पत्नी बनाने का विचार किया । फिर प्रजापति ने मृग बनकर लालवर्ण वाली मृगी रूप पुत्री के साथ समागम किया । यह देवताओं ने देख लिया, देव ताओं का विचार हुआ कि प्रजापति अकृत्य कर रहा है इसलिए इसे मार डालना चाहिए । मारने की इच्छा से देवता लोग ऐसे व्यक्ति को ढूँढने लगे, जो प्रजापति को मारने में समर्थ हो । किन्तु अपने में ऐसा कोई शक्तिशाली उन्हें नहीं मिला, इसलिए जो घोर—रूप शरीर वाले थे वे सभी मिल कर एक रूप हुए, अर्थात् सब मिलकर एक महान् शरीर धारी देव बना, उसका नाम रुद्र रक्खा गया । यह शरीर भूतों से निष्पन्न हुआ इसलिये उसका नाम भूतवत् या भूतपति भी प्रसिद्ध हुआ ।

देवताओं ने रुद्र से कहा कि—प्रजापति ने अकृत्य किया है इसलिए उसे बाँण से छेद डालो। रुद्र ने यह बात स्वीकार करली।

बनी, जिसको वरुण ने ग्रहण किया, जिससे भृगु वरुण का पुत्र कहलाया। तीसरी पिंडिका निकली उससे अदिति के, सूर्य के सिवाय बाकी के पुत्र—रुद्र बने। जो आग के अगार बच रहे वे अंगिरस ऋषि बने, और जो अगार उत्कर्ष से दीप्त हुआ वह बृहस्पति बना।

पशु सृष्टि

यानि परिक्षाणा-यासस्ते कृष्णा पशवोऽभवन् या लोहिनीमृत्तिका ते रोहिता, अथ यद् भस्माऽऽसीत् तत्परुष्य व्यसर्पद् गौरो गवय ऋश्य उष्ट्रो गर्दभ इति ये चैतेऽरुणा पशवस्ते च। (ऐत० ब्रा० ३।३—१०)

अर्थ—जो काले रग की लकड़ियां रहीं, वे काले रग के पशु बने। अग्नि दाह से जो मिट्टी लाल रग की हो गई थी, उससे लाल रग के पशु बन गये। जो राख बन गई थी, उससे कठोर शरीरवाले गौर, रोझ, मृग, ऊँट, गर्दभ आदि आरण्यक—जगली पशु बन गये और जगल मे फिरने लगे।

समालोचना

प्रजापति का जो कृत्य शतरूपा को अकृत्य रूप लगा, वह कृत्य देवों को भी अकृत्य रूप से मालूम हुआ। इतनाही नहीं देवताओं ने तो इस कृत्य के लिये प्रजापति को दण्ड भी दिया है। इस प्रकार अधम प्रवृत्ति मे सृष्टि उत्पन्न करने वाले को क्या अपराधी नहीं कहेंगे ?। इसके सिवाय प्रजापति को मृगशिर नक्षत्र के रूप में किसने बनाया ? रुद्रने, या अपने आपही बन गया। यदि रुद्रने बनाया तो क्या रुद्र की शक्ति प्रजापति से अधिक थी ? और रुद्र को मृग व्याध के तारे के रूप में किसने

मादुपपत है। लोगों ने पाछे स मादुप श -द में के "द" क स्थान पर "न" कार का उच्चारण किया जिसम मानुप शब्द (मनुष्य वाचक) बन गया। देवता परोक्ष प्रिय हाते हैं, इस लिए परोक्ष में जिस नकार का प्रवेश हाकर मानुप शब्द बन गया उसको देवताओं न स्वीकार कर लिया। तात्पर्य यह कि प्रजापति क द्वारा सचित वीर्य के तालाब में से मनुष्य सृष्टि उत्पन्न हुई।

देव सृष्टि

तदग्निना पर्यादधुस्त मरुतोऽधू वस्तदग्निन प्राच्यावयत् तदग्निना वैश्वानरेण पर्या धु स्त मरुतोऽ धूवँस्तदग्निर्वैश्वानर प्राच्यावयत्तस्य यद्रेतम प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद्यद् द्वितीय मासीत्तद् भृगुरभवत्त वरुणो न्यगृह्णीत तस्मात्स भृगुर्वारुणिरथ यत्तृतीयमदीदेदिव त आदित्या अभवन्। ये ऽङ्गारा आसस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्, यदङ्गारा पुनर वशान्ता उददीप्यन्त तद् बृहस्पतिरभवद्। (ऐत० ब्रा० ३ ३—१०)

अर्थ—मनुष्य बनन क बाद जा प्रजापति का वीर्य अव शिष्ट रहा, उसको घनीभूत बनाने और उसमें रहे हुए द्रवत्व को दूर करने के लिये देवों न उस तालाब के चारों किनारों पर अग्नि प्रज्वलित की और वायु ने उसकी आर्द्रता क शोषित करने का प्रयत्न किया। इतना करने पर भी वह वीर्य नहीं पका अर्थात् उसका गीलापन दूर नहीं हुआ। तब वैश्वानर नाम क अग्नि न पकाने का काम किया, और वायु ने शोषण करना चालू रक्खा, जिससे वह वीर्य पक कर पिण्डी भूत होगया। उस पिंड में से एक प्रथम पिंडिका उद्दीप्त हुई और प्रकाश करने लगी वह आदित्य—सूर्य बना। दूसरी पिंडिका निकली वह भृगु ऋषि

काष्ठ, मिट्टी और राख में से विविध प्रकार के पशु पैदा हुए हैं।

सृष्टि का ग्यारहवाँ प्रकार (आत्म सृष्टि)

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत । आकाशाद्वायु । वायोरग्नि । अग्नेराप । अप पृथिवी । पृथिव्या ओषधय । ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेत रेतस पुरुष ।

(तै० उप० म०—प्रथमखण्ड २ । १)

अर्थ—उस प्रसिद्ध आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधि से अन्न, अन्न से रेत–वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न होते हैं।

सृष्टि क्रम कोष्टक

१ आत्मा,	६ पृथ्वी,
२ आकाश,	७ औषधि,
३ वायु,	८ अन्न,
४ अग्नि,	९ रेत—वीर्य,
५ जल,	१० पुरुष,

समालोचना

सृष्टि के चौथे, छठे और सातवें प्रकार में "आपो वा इद मग्रे आसीत्" —सब से पहले पानी था, यह बताया गया है। और इस क्रम में सबसे पहले आत्मा, उसके बाद आकाश, वायु अग्नि, उत्पन्न हुए और उसके बाद पाचवे नंबर में जल की उत्पत्ति बताई गई है। क्या ये पारस्परिक विरोधी बातें नहीं है सृष्टि के छट्ठे प्रकार में वायु के पहले पानी होना बताया है,

बनाया ? रुद्र ने प्रजापति को मारने के लिये ही व्याध रूप किया था किन्तु वह प्रजापति को आजतक नहीं मार सका है। फिर सन्देह बाण लेकर पीछे पीछे फिरने की क्या आवश्यकता थी। यदि यह कहा जाय कि प्रजापति ने अपराध किया था जिससे उसको दण्ड दिया गया था किन्तु शतरूपा ने क्या अपराध किया था कि जिससे उसको भी रोहिणी बन कर मृगशिर के पीछे फिरना पड़ा। कदाचित् इसे रूपकालङ्कार कहा जाय तो भी वह घटित नहीं होता है। क्यों कि मिथुनी कृत्य में शतरूपा आगे और प्रजापति पीछे स्वाँग बदलते हैं, तब आकाश में मृगशिर रूप प्रजापति आगे, और रोहिणी रूपी शतरूपा पीछे रहती है। क्या यह उचित है ? प्रजापति के वीर्य से सारे सरोवर के भरजाने का जो उल्लेख किया गया है सो क्या सम्भवित है ? मादुष या मानुष इस उच्चारण से मादुष या मानुष शब्द की सिद्धि हो सकती है, किन्तु मनुष्य जाति की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है। वीर्य से मनुष्य शरीर बनने की बात कही गई है। उस में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि—ये शरीर गर्भ में रहकर बने या गर्भ के बिना ही। यदि गर्भ में रह कर बने तो किस के गर्भ में रह कर बने। अभी तक मनुष्य जाति उत्पन्न नहीं हुई है। यदि बिना गर्भ के ही बनने का कहा जाय तो क्या यह सम्भवित है। वीर्य को अग्नि से पकाने पर सूर्य आदि देव बने, ऐसा कथन भी क्या बुद्धिगम्य है ? सूर्य की उत्पत्ति तो पहले अनेक प्रकार से बताई गई है। और दूसरे देव भी अदिति और प्रजापति से उत्पन्न हुए हैं ऐसा उल्लेख है। फिर यह नई उत्पत्ति किस प्रयोजन से बताई गई है। यह बात भी बुद्धिग्राह्य नहीं है कि

अर्थ—जिसमें स्तब्ध हो कर प्रजापति सर्व लोक को धारण करके रहता है, उस स्कभ को बताओ कि वह कौन है ?

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्ष द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता यत्राग्निश्च न्द्रमा सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिता स्कभं त ब्रूहि कतम स्विदेव स ।

(अथ० सं० १० । ४ । ७ । १२)

अर्थ—जिस मे भूमि, अन्तरिक्ष और स्वग समाये हुए हैं, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु जिसे अर्पण किये हुए हैं, उस स्कभ का वर्णन करो कि वह कैसा देव है ।

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अगे सर्वे समाहिता
स्कभ त ब्रूहि कतम स्विदेव स ।

(अथ० सं० १० । ४ । ७ । १३)

अर्थ—जिस के अग मे तेंतीस देवता प्रतिष्ठित हैं, उस स्कभ को बताओ कि वह कैसा देव है ?

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिता
भूत च यत्र भव्य च सर्वे लोका प्रतिष्ठिता
स्कभ तं (अथ० सं० १० । ४ । ७ । २२)

अर्थ—जिस में आदित्य रुद्र और वसु देवता प्रतिष्ठित हैं भूत और भावि सर्व लोक जिस में प्रतिष्ठा पाये हुए हैं, उस स्कभ को बताओ कि वह कौन है ?

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्य जना विदु ।
स्कभस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्य लोके अन्तरा ।

(अथ० सं० १० । ४ । ७ । २८)

और इस क्रम म वायु के पहले ही आकाश की उत्पत्ति गई है। अर्थात् वायु का कारण आकाश, और आकाश कार्य वायु इस प्रकार का कार्य कारण भाव और किसी में बताया गया है। यहाँ नूतन क्रमकी योजना क्यों की गई है औषधि अन्न और रेत की भी इस क्रम में नवीनता है। आत्मा चेतनरूप है, उससे जडरूप आकाश की उत्पत्ति किस प्रकार सम्भवित हो सकता है। चेतन से चेतन और जड से जड की उत्पत्ति हो यह तो सम्भवित बात है परन्तु चेतन से जड की उत्पत्ति होना क्या नियम विरुद्ध नहीं है। यह भी विचारणीय है कि पुरुष के उत्पन्न होने के पूर्व ही अन्न में से वीर्य कैसे उत्पन्न हो गया।

सृष्टि का बारहवाँ प्रकार (स्कभ सृष्टि)

अथर्वण वेद काण्ड १० अनुवाक ४ के सातवें सूक्त में सब से बड़ा सृष्टि कर्ता देव स्कम्भ बताया गया है। सातवें सूक्त के प्रारम्भ में ही भाष्यकार लिखते हैं कि—

स्कम्भ इति सनातनतमः देवो ब्रह्मणोप्याद्यभूत । अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा । तस्मि सर्वमेतत्सिम्ति । तत्सर्वमेतेनाविष्टम् । विराडपि तस्मिन्नेव समाहित । तस्मिन्नेव देवादय सर्वे समाहिता । इत्यादिविषयानम ।

अर्थ—ब्रह्म से भी पहले का और सबसे पुराना देव स्कम्भ है, इसलिये इसका नाम ज्येष्ठ ब्रह्म है। उसी में सब रहता है। सब इसी से व्याप्त है। विराट का भी समावेश इसी में हो जाता है। सब देव भी इस में स्थापित किये हुए हैं।

यस्मिन् स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान् सर्वा अधारयत् स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेव स

(अथ० सं० १०।४।७।७)

सत्य चर्ते च चक्षुषी विश्व सत्य श्रद्धा प्राणो विराट् शिर ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदज पञ्चौदन ॥
(अथ० सं० ६ । ३ । ५ । २१)

अर्थ—उसके दो नेत्र सत्य और ऋत बने, उसके प्राण सम्पूर्ण सत्य और श्रद्धा बने, उसका सिर—मस्तक विराट बना इसलिए यह पचौदन अज अपरिमित है।

समालोचना

यहाँ यज्ञ और यज्ञ में होमने क बकरे की प्रशसा करते हुए सृष्टि का स्वरूप बताया गया है। अथर्व सहिता जैसी आदर्श पुस्तक में, केवल अलकार रूपमे ही यह कथन नहीं होना चाहिए। यदि प्रशसा रूप कथन है तो वहाँ खोटी प्रशसा नहीं होनी चाहिये। यदि सच्ची प्रशसा है तो उसका अर्थ ऊपर बताये अनुसार ही होगा। किन्तु इस मे प्रश्न यह होता है कि-यह बकरा जीवित था या मृतक ? जीवित नहीं हो सकता क्योंकि—उसका तो बलिदान दिया जा चुका है। वह इन्द्र को तृप्त करके तीसरे स्वर्ग मे पहुँच गया है। शेष मृतक बकरा ही रहा, अर्थात् बकरे का शव। उस से ऊपर बताये माफिक स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष दिशाएँ, समुद्र, सत्य, ऋत, श्रद्धा, विराट आदि बनाने का पहले कहा जा चुका है। क्या यह प्रशसा युक्तिहीन मिथ्यातिशयोक्ति रूप नहीं है ? दूसरी बात यह है कि—सब से पहले बकरा कहाँ से आया ! पशु सृष्टि बनने के पहले ही बकरे की उत्पत्ति कहाँ से और कैसे हो गई ? और मनुष्य सृष्टि या देव सृष्टि बनने के पहले ही यज्ञ समारभ किसनेकर दिया ? अज की आहुति किसने दी ? जिस अज में इतनी शक्ति है उसकी आहुति देना कृतघ्नता नहीं है क्या ?

अर्थ—जिस परम हिरण्यगर्भ का लोक है, उस हिरण्यगर्भ को सब से पहले स्कम ने ही था।

स्कंभो दाधार द्यावा पृथिवी उभे इमे स्कंभो
स्कंभो दाधार प्रदिश षडुर्वी स्कंभ इद विश्व भुवनमाविवेश।

(अथ० सं० १०। ४। ७। ३५)

अर्थ—स्कंभने पृथिवी को धारण कर रक्खा है। स्कंभ ही इस विशाल अन्तरिक्ष को धारण किया हुआ है। स्कंभ ही प्रदिशा तथा छ उर्वियों को धारण करता है। और स्कंभ ही इस भुवन में प्रविष्ट है।

सृष्टि का तेरहवाँ प्रकार (अज सृष्टि)

पचौदन नामक यज्ञ में अज की हवि दी जाती है। वह अज इन्द्र को तृप्त करके तीसरे स्वर्ग —पुण्य लोक में जाता है। ऐसा अथर्वेण के नौवें काण्ड के तीसरे अनुवाक के पाँचवें सूक्त के प्रारंभ में भाष्यकार ने कहा है।

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौ पृष्ठम्। अन्त रिक्षम् मध्य दिश पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी।

(अथ० सं० ६। ३। ५। २०)

अर्थ—सृष्टि बनाने के पूर्व सब से पहले अज ने (बकरेने) व्यक्रमण किया, अज का उर—छाती, पृथ्वी बनी। उसकी पीठ (पृष्ठ) स्वर्ग बनी। उसका मध्यभाग अन्तरिक्ष बना। उसके दोनों पार्श्व दिशाएँ बनी, और कुक्षि भाग समुद्र बना।

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे
त आस जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठ वरोऽभवत् ॥
(अथ० सं० ११ । ४ । १० । १२)

अर्थ—इस ऋचा में सृष्टि के समय में वर वधू और बराती कौन कौन थे यह प्रश्न है। मन्यु शब्द का अर्थ "सर्वंजानातीतिसर्वज्ञ" किया है। जब मन्यु ईश्वर का सकल्प के घर में विवाह हुआ, तब बराती कौन थे। कन्या पक्ष और वर पक्ष के सम्बन्धी कौन कौन थे ? और कन्या तथा प्रधान वर कौन था ? उत्तर-प्रलय काल रूप समुद्र में सृष्टि से पूर्व पर्यालोचन रूप तप और प्राणियों के भोग्य कर्म विद्यमान थे। ये ही कन्या पक्ष और वर पक्ष के सम्बन्धी थे। अर्थात्—ये ही बराती थे। जगत् कारण रूप ब्रह्म ज्येष्ठ वरराज और माया शक्ति उस की वधू थी।

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।

(अथ० सं ११ । ४ । १० । ३)

अर्थ—उक्त वर वधू के लग्न होते ही उन से अग्नि आदि अधिष्ठात् देवों के पहले पाँच ज्ञानेन्द्रिया और पाँच कर्मेन्द्रियाँ रूपी दस देव एक साथ प्रकट हुये। अर्थात् प्रथम दस पुत्र हुये। अथवा दो कान, दो नाक, दो आँखें, एक मुख यह सात शिर प्राण एक मुख्य प्राण, और दो गौणप्राण ये दस देवता प्रकट हुए। अथवा नीचे लिखे हुए दस देवता हुये—

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥
(अथ० सं० ११ । ४ । १० । ४)

सृष्टि का चौदहवां प्रकार (ब्रह्म सृष्टि)

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचोहितम् ॥
(अथ० का० १० । १ । २ । २४ २५)

अर्थ—यह पृथ्वी किसने बनाई ? उत्तर द्यौ—स्वर्ग किसने बनाया ? ऊर्ध्व भाग तिर्यग् भाग और जिस में प्राणी गमनागमन करते हैं ऐसा अन्तरिक्ष किसने बनाया है ? (उत्तर) ब्रह्म ने भूमि बनाई, ब्रह्म ने ही श्रेष्ठ स्वर्ग बनाया, ऊर्ध्व भाग तिर्यग् भाग, और प्राणियों के गमनागमन वाला अन्तरिक्ष भी ब्रह्म ने ही बनाया है।

समालोचना

एक ही अथर्व संहिता में भूमि, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को बनाने वाले तीन भिन्न भिन्न व्यक्ति—स्कंभ, अज और ब्रह्म बताये गये हैं। स्कंभ का ज्येष्ठ ब्रह्म कहकर उसी से सर्व सृष्टि बन जाने की बात कही है। फिर इस लघु ब्रह्म को त्रिलोक कर्त्ता बताने का क्या कारण है ? क्या तीनों ने मिलकर अमुक अमुक हिस्से बनाये या अलग अलग ?

सृष्टि का पन्द्रहवां प्रकार (कर्म-सृष्टि)

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि,
क आसं जन्याः कौवराः क उ ज्येष्ठ वरोऽभवत् ।

अर्थ—वर्तमान सृष्टि में इन्द्र कहाँ से हुआ ? सोम कहा से हुआ ? अग्नि किस में से हुई ? त्वष्टा कहाँ से उत्पन्न हुआ ? और धाता किस में से उत्पन्न हुआ ? उत्तर—इस प्रलय के पहले जो सृष्टि थी, उसमें इन्द्र था, उस इन्द्र में से ही वर्तमान सृष्टि का इन्द्र हुआ है। आगे के कल्प में जो सोम था, उसमें से वर्तमान कल्प का सोम हुआ, इसी प्रकार पूर्व की अग्नि में से वर्तमान अग्नि, पूर्व के त्वष्टा में से वर्तमान का त्वष्टा, और पूर्व के धाता में से वर्तमान धाता उत्पन्न हुआ। अथवा पूर्व का इन्द्र शब्द कर्म वाचक है, उस इन्द्रत्व योग्य पूर्व कर्म से वर्तमान इन्द्र उत्पन्न हुआ। ऐसे ही सोमादि के विषय में भी जान लेना चाहिये।

समालोचना

जब कि सृष्टि की उत्पत्ति में जीवों के कर्म ही मुख्य कारण हैं, कर्मानुसार ही पद की प्राप्ति होती है और धाता आदि भी कर्म की ही उपासना करते हैं। वैसी हालत में जीव और कर्म के बीच ईश्वर या ब्रह्म के पड़ने की क्या आवश्यकता है ? 'कारण से कार्य उत्पन्न होता है,' इस प्रसिद्ध नियम के अनुसार कर्म रूप कारण स उस कार्य की उत्पत्ति अपने आप हो जाती। ब्रह्म को माया शक्ति के साथ विवाह करने की, और वर वधू की जोडी की कल्पना करने की भी क्या आवश्यकता थी ? ससार में परिभ्रमण करक जो मुक्त हो चुके हैं, उनको फिर से ससार चक्र में फँसाने की कल्पना क्यों की जाती है ?

सृष्टि का सोलहवाँ प्रकार (ओंकार सृष्टि)

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे, स खलु ब्रह्मा सृष्टिश्चिन्तामापेदे केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वाश्च कामान् सर्वाश्च लोकान् सर्वांश्च

वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च शब्दान् सर्वांश्चव्युष्टी सर्वाणि च भूतानि स्थावरजंगमान्यनुभवेयमिति स ब्रह्मचर्यमचरत् । स ओमित्येतदक्षरमपश्यद् द्विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वं विभ्वयातयामम्ब्रह्म ब्राह्मीं व्याहृतिं ब्रह्मदैवत, तया सर्वांश्च कामान् सर्वांश्च लोकान् सर्वाणि च भूतानि स्थावरजंगमान्यन्वभवत् । तस्य प्रथमेन वर्णेनापस्नेहश्चान्वभवत् । तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतींष्यन्वभवत् ।

(गो० ब्रा० पू० भा० १ । २१)

अर्थ—ब्रह्म ने ब्रह्मा को कमल में उत्पन्न किया। उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने चिन्ता की कि—मैं एक अक्षर मात्र से सर्व काम, सब लोक, सर्व देवता, सर्व वेद सर्व यज्ञ, सर्व शब्द, सर्व वसतियाँ, सर्व भूत, स्थावर जंगम को किस प्रकार उत्पन्न करूँ? ऐसी चिंता करके उसने ब्रह्मचर्य रूप ब्रह्म तप का आचरण किया। उसने ओंकार अक्षर देखा जो कि दो अक्षर वाला, चार मात्राओं वाला, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, अयातयाम—निर्विकार ब्रह्मवाला, ब्राह्मी व्याहृति और ब्रह्म देवता वाला है। उस ओंकार से ब्रह्मा ने सर्व काम, सर्व लोक, सर्व देव, सर्व यज्ञ, सब शब्द, सर्व वसतियाँ, सर्व भूत और स्थावर जंगम रूप सब प्राणी उत्पन्न किये। ओंकार के पहिले वर्ण से जल और चिकनापन उत्पन्न किये। दूसरे वर्ण से तेज और ज्योति उत्पन्न की।

तस्य प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीमग्निमोषधिवनस्पतीन्, ऋग्वेदं भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तमृतुं वाचमध्यात्मं जिह्वां रसमितीन्द्रियाण्यन्वभवत् ।

(गो० ब्रा० पू० भा० १ । १७)

अर्थ—उस ओंकार की प्रथम स्वर मात्रा से ब्रह्मा ने पृथ्वी, अग्नि, औषधि, वनस्पति, ऋग्वेद, भू नाम की व्याहृति, गायत्री छन्द, ज्ञान, कर्म और उपासना युक्ति स्तोत्र, स्तुति, पूर्व दिशा, वसंत ऋतु, अध्यात्म वाणी, जिह्वा और रस ग्राहक इन्द्रियाँ बनाईं।

तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयाऽन्तरिक्ष, यजुर्वेद, भुवइति व्याहृतिस्त्रैष्टुभ छन्द पञ्चदश स्तोम, प्रतीचीं दिश ग्रीष्ममृतु प्राणमध्यात्म न्नासिके गन्धघ्राणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।

(गो॰ब्रा॰ पू॰ भा॰ १ । १८)

अर्थ—उसकी दूसरी स्वर मात्रा से ब्रह्मा ने अंतरिक्ष, वायु, यजुर्वेद, भुव इस प्रकार की व्याहृति, त्रैष्टुभ छन्द, पाच प्राण, पाच इन्द्रियाँ और पाच भूत यों पन्द्रह प्रकार की स्तुति, पश्चिम दिशा, ग्रीष्म ऋतु, आध्यात्मिक प्राण, दो नासिका, और गंध ग्राहक घ्राणेन्द्रिय बनाये।

तस्य तृतीयया स्वरमात्रया दिवमादित्य सामवेद स्वरिति व्याहृतिर्जागत छन्द सप्तदश स्तोममुदीचीं दिशां वर्षाऋतु ज्योतिरध्यात्म चक्षुषी दर्शनमितिन्द्रियाण्यन्वभवत्।

(गो॰ ब्रा॰ पू॰ भा॰ १ । १६)

अर्थ—उस ओंकार की तीसरी स्वर मात्रा से ब्रह्मा ने स्वर्ग लोक, आदित्य-सूर्य, सामवेद, स्वर् इस प्रकार की व्याहृति, जगति छंद, दस दिशाए, सत्व रजस् और तमस् तीन गुण, ईश्वर, जीव, और प्रकृति इन सोलहों से युक्त सत्रहवा संसार, यों सत्रह प्रकार की स्तुति, उत्तर दिशा, वर्षा ऋतु, अध्यात्म ज्योति, दो आखें और रूप ग्राहक इन्द्रियाँ उत्पन्न कीं।

सृष्टिवाद और ईश्वर

तस्य वकारमात्रयाऽऽपन्न्व द्रमसमथर्ववेद नक्षत्राणि, ओमिति स्वमात्मान जनदित्यगिरसामानुष्टुभं छन्द एकविंश स्तोम दक्षिणां दिशं शरदमृतु मनोऽध्यात्म ज्ञान ज्ञेयमिता दियाएयन्वभवत्।

(गो० ब्रा० पू० भा० १।२०)

अथ—उसकी वकार मात्रा स ब्रह्मा ने पानी, चन्द्रमा, अथर्ववेद, नक्षत्र, ओं रूप अपने स्वरूप को उत्पन्न करत हुए ज्ञान, अनुष्टुप् छन्द, पाच सूक्ष्म भूत, पांच स्थूल भूत, पाच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाच कर्मेन्द्रियाँ और अन्त करण ये -१ स्तोत्र—स्तुतियँ, दक्षिण दिशा, शरद् ऋतु, आध्यात्मिक मन, ज्ञान, जानने याग्य वस्तु और इ द्रिया न्त्पन्न कीं।

तस्य मकारश्रुत्येतिहासपुराण वाकोवाक्यगाथा, नाराशंसीरु निषदोऽनुशासनामिति वृधत् करद् गुहन् महत्तच्छमोमिति व्याहृती स्वरशम्यनानातन्त्री स्वरनृत्यगीतवादित्राण्यन्वभवत चैत्ररथ दैवतं वैद्युत ज्योतिर्बार्हतं छ दस्त्रणवत् त्रयस्त्रिंशौ स्तोमौध्रुवामूर्ध्वां दिशं हेमन्त शिशिरावृतू श्रोत्रमध्यात्म श ब्दश्रवयमिति दियाएयन्वभवत्।

(गो० ब्रा० पू भा० १।२१)

अथ – उसकी मकार मात्रा से ब्रह्म ने इतिहास, पुराण, बालने की सामर्थ्य, वाक्य, गाथा,और वीर नरा की गुणकथाएं, उपनिषद्, अनुशासन=शिक्षा, उपदेश वृधत्=वृद्धि वाला परिपूर्ण ब्रह्म, करत् सृष्टिकर्ता ब्रह्म, गुहत्=छिपा हुआ अ तर्यामी ब्रह्म महत् पूजनीय ब्रह्म, तत्= फैलाहुआ ब्रह्म, ये पाच महाव्याहृतिया, शम्‌शान्ति रक्षक ब्रह्म ओं सर्व रक्षक ब्रह्म, ये दोनों पाच में मिलने से सात महाव्याहृति, स्वर से शान्ति उपजाने वाली नाना प्रकार की वीणा आदि विद्याएं, स्वर, नृत्य, गीत, वादित्र बनाये और विचित्र गुण वाले दिव्य पदार्थों के समूह , विविध प्रकाश वाली

-ज्योति वेद वाणी युक्त छन्द, तीनों कालों में स्तुति किये गये तैंतीस देवता, सृष्टि प्रलय रूप दो स्तोम--स्तुति, ऊ ची नीची दिशाए, हेमत और शिशिर ऋतु, आध्यात्मिक श्रोत्र, शब्द और सुनने की सामर्थ्य, ज्ञान कर्म साधन रूप इन्द्रियाँ ब्रह्म ने बनाईं।

समालोचना

यदि ब्रह्म में पूर्ण सामर्थ्य था तो उसने ब्रह्मा को उत्पन्नकर के उसके द्वारा सारी सृष्टि क्यों उत्पन्न करवाई ? क्या ब्रह्मा के बिना ब्रह्म में सृष्टि उत्पन्न करने की सामर्थ नहीं थी ? ब्रह्माने भी ॐकार की सहायता से सृष्टि बनाई है। ब्रह्म बडा है या ॐकार ? ब्रह्म से ॐकार में शक्ति अधिक है या ॐकार से ब्रह्म मे ? यदि ब्रह्म मे अधिक शक्ति थी तो फिर उसे ॐकार की सहायता क्यों लेनी पडी ? ॐकार तो शब्द मात्र है, शब्द की एक एक मात्रा में भूलोक स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष आदि पूर्ण जगत् या जगत् के बीजक भरे थे या बीजक के बिना ही भूलोकादि प्रकट हुये ? यदि यह कहा जाय कि उपादान कारण ब्रह्म है उसी में से भूलोकादि प्रकट हुये तब यह प्रश्न होता है कि ॐकार की मात्रा से क्या उत्पन्न हुआ ! यदि सृष्टि से पहले कुछ भी नहीं था तो ॐकार का उच्चारण किसने किया ! ब्रह्म तो निरजन निराकार है, उसके शरीर या मुख है ही नहीं। ॐकार शब्द कहा से प्रगट हुआ ? क्या बिना उच्चारण किये ही वह अपने आप उत्पन्न हो गया ? यदि ॐकार बिना कारण के ही उत्पन्न हो गया तो जगत् को भी बिना कारण उत्पन्न होने में क्या बाधा थी ? यदि जगत् अपने आपही उत्पन्न हो जाय तो ॐकार और ब्रह्म की आवश्यकता ही क्या रहती है ?

सृष्टि का सत्रहवाँ प्रकार (प्रस्वेद सृष्टि)

सृष्टि के आरंभ के पहले ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं था ब्रह्म ने अपने को अकेला देखकर यह विचार किया कि मैं इतना बड़ा होकर भी अकेला क्यों दूसरे देवों को बनाऊ ? इस विचार से उसने तप किया, तप के कारण से भाल पर पसीना झलका उसने फिर अधिक तप किया, जिससे प्रत्येक रोम म से पसीन की धारा छूटन लगा। उस धारा का पानी बन गया। उसपानी में उसने अपनी छाया (परछाई) देखी। इतने में ही उसका वीर्य स्खलित होगया, वह वीय पानी में गिरा। फिर ब्रह्मा ने उस पानी को चारों आर से तपाया, जिससे वीर्य सहित पानी क दो भाग होगये। उसम एक भाग नहीं पीने योग्य ह र समुद्र बन गया, दूसरा भाग पेय—पाने याग्य स्वादिष्ट और राचक हुआ। पानी को तपाने स वीर्य परिपक्व हुआ उससे भृगु उत्पन्न हुआ यह उत्पन्न हाकर पूर्व दिशा की ओर चलने लगा, वहाँ वाणा न उसे रोका। तब वह दक्षिण की ओर चलने लगा। यहाँ भी वाणी न उसे रोका। वह पश्चिम की तरफ चलने लगा। वहां भी वाणी ने उसे रोका। उसन बाद वह उत्तर की तरफ चलन लगा वहा भी वाणी ने उस रोक कर कहा कि—सामन के जल में उस पुरुष को ढूँढ। भृगुने ढूढा तो उस जल म उत्पन्न हुआ, अथर्व दिखाई दिया। ब्रह्म ने अथर्वा ऋषि को तपाया, तो उसमें से अथर्वणवेद की उत्पत्ति हुई। उस वेद को तपाया ता उसमें से ॐ अक्षर की उत्पत्ति हुई। ब्रह्म ने फिर तप किया और अपने में से ही तीनों लोक और देवादिका निर्माण किया जो इस प्रकार हैं।

स खलु पादाभ्यामेव पृथिवीं निरमिमत। उदरादन्तरिक्षम्। मूर्ध्नो दिवम्। स तां स्त्रींल्लोकानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्, तेभ्य श्रान्तेभ्य स्तप्तेभ्य सन्तप्तेभ्यस्त्रीन् देवान् निरमिमत—अग्निं वायुमादित्यमिति। स खलु पृथिव्या एवाग्निं निरमिमत अन्तरिक्षाद्वायु दिव आदित्यम्। सतांस्त्रीन् देवानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत् तेभ्य श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्य सन्तप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान्निरमिमत—ऋग्वेदं, यजुर्वेदं, सामवेदमिति। अग्नेऋग्वेद, वायोर्यजुर्वेदमादित्यात्सामवेदम्।

(गो० ब्रा० पू० भा० २।१।६)

अर्थ—उस ब्रह्म ने पाव में से पृथ्वी का निर्माण किया। उदर में से अंतरिक्ष और मस्तक में स स्वर्ग का निर्माण किया। उसके बाद उसने तीनों लोकों को तपाया, उनमें से अग्नि, वायु और आदित्य इन तीनों देवों की उत्पत्ति हुई। उसने पृथ्वी में से अग्नि, अन्तरिक्ष में से वायु और स्वर्ग में स आदित्य को उत्पन्न किया। उसने तीनों देवों को तपाया तो उनमें से ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद इन तीन वेदों की उत्पत्ति हुई। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद बना।

स भूयाऽश्राम्यत् भूयोऽतप्यत, भूय आत्मानं समतपत्स मनस एव चन्द्रमसमनिरमिमत, नखेभ्यो नक्षत्राणि, लोमभ्य ओषधिवनस्पतीन्, क्षुद्रेभ्य प्राणेभ्योऽन्यान् बहून् देवान्।

(गो० ब्रा० पू० भा० १।१२)

अर्थ—उस ब्रह्म नेश्रमपूर्वक तप किया। मन से चन्द्रमा, नखों से नक्षत्र, रोम राजि से औषधि तथा वनस्पति और क्षुद्र प्राणों से अन्य बहुत से देव उत्पन्न किये

समालोचना

ब्रह्म को तप करने से परिश्रम हुआ जिससे ललाट पर पसीना आगया। ब्रह्म निराकार और निरवयव है। उसके शरीर

नहीं है। तब ललाट और उस पर पसीना किस प्रकार ५ 'मूलनास्ति कुत शाखा,' शरीर रूप मूल तो है ही नहीं, ललाट और पसीना रूप शाखा कहाँ से होगई। नहीं पर इतना हुआ कि जिससे धारा बहकर समुद्र बन गया। क्या यह सभवित है? प्रथम तो ब्रह्मा के शरीर ही नहीं है, यदि शरीर मान भी लिया जाय तो इतना कमजोर शरीर क्या मानाजाय कि जिससे तपका परिश्रम करने से पसीने की धार बह निकल। आजकल के सामान्य तपस्वी पचाग्नि तपकर के औंधे लटकते हैं फिर भी उनको पसीने की धारा नहीं छूटती है। क्या ब्रह्म में इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि वह तप करने के लिये एक सुदृढ शरीर बना लेता। यदि ऐसी सामर्थ्य नहीं थी तो ऐसा असह्य तप करने क कष्ट में पड़ने की भी क्या आवश्यकता थी। पसीने से खार समुद्र बनाये बिना उसका कौनसा कार्य रुक रहा था? यदि वह स्वय निज्ञानमय और आनन्दमय है तो उसके आनन्द म ऐसी कौनसी न्यूनता आगई था जिससे इतन कष्ट उठाने की आवश्यकता पड़ी। पानी म वीर्य स्खलित किया गया था, शरीर के बिना वीर्य कहाँ रहा हुआ था? वीर्य स्खलन का क्या कारण था? मानसिक निबलता या विषय की तीव्रता। ब्रह्म में ये नहीं होन चाहिए। पानी को तपाने मे खार जल और मिष्ट जल ऐसे दो भाग हो गये। पर प्रश्न यह होता है कि पानी को तपाया किस स। अग्नि अभी तक उत्पन्न नहीं हुई थी। क्या बिना तपाय ही खारे और मीठे जल को भिन्न करने की ब्रह्म में कोई दूसरी युक्ति या कला नहीं थी? स्त्री क गर्भाशय के बिना ही कवल वीर्य को तपाने मात्र से भृगु की उत्पत्ति कैसे हो गई? इसी प्रकार अथर्वा ऋषि की जल में

त्पत्ति कैसे हो गई। ब्रह्म ने अथर्वा ऋषी को तपाया जिससे थर्वण वेद की उत्पत्ति बताई गई है। इससे यह फलित होता है कि वेद पौरुषेय हैं। क्योंकि अथर्वण ऋषि पुरुष थे, और उन्हीं से वेद की उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा ने पाँव से पृथ्वी, उदरसे अन्तरिक्ष और मस्तक से स्वर्ग बनाया है। पाँव, उदर और मस्तक शरीर में होते हैं, किन्तु ब्रह्म के शरीर ही नहीं है। क्या उक्त कथन परस्पर विरुद्ध नहीं है? आदित्य की उत्पत्ति पहले कई प्रकार से बताई जा चुकी है। यहाँ भी स्वर्ग को तपाने से आदित्य की उत्पत्ति बताई गइ है इनमें से सत्य बात कौनसी है? अथर्वण वेद की उत्पत्ति अथर्व ऋषि से होनी बताई है। क्या ऋग्वेदादि अन्य तीन वेदों की उत्पत्ति इन से नहीं हो सकती थी? एक और तीन की उत्पत्ति भिन्न भिन्न मानने का क्या कारण है? अथर्वा ऋषि पहले उत्पन्न हुए और तीन देवता बाद में उत्पन्न हुये, इस अपेक्षा से अथर्वण वेद प्राचीन और बाकी के तीन वेद अर्वाचीन गिने जायँ तो यह बात ठीक होगी क्या? यदि ठीक मानी जाय तो वेदत्रयी से अथर्वण वेद की महिमा कम क्यों मानी जाती है?

मन से चन्द्रमा, नखों से नक्षत्र, रोम से औषधि, वनस्पति आदि उत्पन्न किये गये किन्तु ब्रह्म के शरीर ही नहीं है तब नख और रोम किस प्रकार माने जायँ? सूर्य को इतना अधिक तेज दिया गया तो चन्द्रमा और नक्षत्रों को इतना तेज क्यों नहीं दिया गया? पिता की सम्पत्ति में सभी पुत्रों का समान अधिकार होना चाहिये। ब्रह्म जैसे उदार पिता को न्यूनाधिक रूप से पक्षपात करने का क्या कारण था?

सृष्टि का अठारहवाँ प्रकार (परस्पर सृष्टि)

सवा अह्नो ऽजायत तस्मादहरजायत।
(अथ० सं० १३।४।७।१)

अर्थ—वह परमात्मा दिन से उत्पन्न हुआ और दिन
मात्मा से उत्पन्न हुआ।

स वै राज्या अजायत, तस्माद् रात्रिरजायत।
(अथ० १३।४।७।२)

अर्थ—वह परमात्मा रात्रि से उत्पन्न हुआ, और रात्रि
परमात्मा से उत्पन्न हुई।

स वा अन्तरिक्षादजायत, तस्मादन्तरिक्षमजायत।
(अथ० स० १३।४।७।३)

अर्थ—वह परमात्मा अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ, और
अन्तरिक्ष परमात्मा से उत्पन्न हुआ।

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत।
(अथ० स० १३।४।७।४)

अर्थ—वह ईश्वर वायु से उत्पन्न हुआ, और वायु
परमात्मा से उत्पन्न हुआ।

स वै दिवोऽजायत, तस्माद् द्यौरध्यजायत।
(अथ० स० १३।४।७।५)

अर्थ—वह परमात्मा स्वर्ग से उत्पन्न हुआ, और स्वर्ग
ात्मा से उत्पन्न हुआ।

स वै दिग्भ्योऽजायत, तस्माद् दिशोऽजायन्त।
(अथ० सं० १३। ४। ७। ६)

अर्थ—वह परमात्मा दिशा से उत्पन्न हुआ और दिशाएँ
रमात्मा से उत्पन्न हुई।

स वै भूमेरजायत, तस्माद् भूमिरजायत।
(अथ० सं० १३। ४। ७। ७)

अर्थ—वह ईश्वर पृथ्वी से उत्पन्न हुआ, और पृथ्वी पर
मात्मा से उत्पन्न हुई।

स वा अग्नेरजायत, तस्मादग्निरजायत।
(अथ० सं० १३। ४। ७। ८)

अर्थ—वह परमात्मा अग्नि में स उत्पन्न हुआ, और अग्नि
परमात्मा से उत्पन्न हुई।

स वा अद्भ्योऽजायत, तस्मादापोऽजायन्त।
(अथ० सं० १३। ४। ७। ९)

अर्थ—वह परमात्मा पानी से उत्पन्न हुआ और परमात्मा
से पानी उत्पन्न हुआ।

समालोचना

इस प्रक्रिया में पृथ्वी आदि की तरह परमात्मा को भी
उत्पन्न हुआ स्वीकार किया गया है। उत्पन्न होने से क्या परमा

सा में अनित्यता सिद्ध नहीं होती है ? पृथ्वी आदि भा
है और परमात्मा भी अनित्य है तो प्रलयकाल में
की नरह परमात्मा को भी नष्ट हो जाना चाहिये था
हिसाब से प्रलय में कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहना चाहिये।
बात सृष्टि के आरम में पृथ्वी और परमात्मामेंसे
हुआ ? पृथ्वी पहले नहीं थी तो परमात्मा उसमें से कैसे
गया? यदि परमात्मा पहले नहीं था तो उसमें से
हो गई ? पहले से दूसरे की, और दूसरे में से पुन
उत्पत्ति होना बताई है। इससे दोनों की एक ही
होना भी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार दिन, रात्रि, अ
रिक्ष वायु, स्वर्ग, दिशा, भूमि, अग्नि, पानी आदि द्वन्द्व
साथ या क्रम से उत्पन्न नहीं हो सकते। परस्पर एक दूसरे
काय कारण भाव रूप से उत्पन्न होना क्या सभवित हो सकता
है ? यदि परमात्मा को नित्य माना जाय, तो जगत् का भी नित्य
मानने में क्या बाधा है ? 'अजायत' इस क्रिया पद का अर्थ
'उत्पन्न हुआ' इतना ही होना है। परमात्मा के साथ 'अजायत' का
अर्थ 'अज्ञायत' = जाने गये ऐसा करना, और दिन रात्रि आदि
के साथ 'अजायत' का अर्थ उत्पन्न हुये ऐसा करना, युक्तिहीन
कथन है। 'अजायत' या 'अज्ञायत' दोनों का एक ही अर्थ करना
उचित है। भिन्नभिन्न अर्थ करना सदर्भ विरुद्ध है। 'अजायत' के
बदल 'अज्ञायत' ऐसा अर्थ करने से दोनों की नित्यता सिद्ध
हो जाती है।

सृष्टि का १६ वाँ प्रकार (ब्रह्म सृष्टि)

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं। नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्। अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
(ऋग्० १० । १२६ । १)

अर्थ—उस समय अर्थात् सृष्टि के आरम्भ काल में न असत् न सत् था, न अन्तरिक्ष था, न अन्तरिक्ष के ऊपर का आकाश था। ऐसी अवस्था में किसने किस पर आवरण डाला? किस स्थल पर डाला? और किसके सुख के लिये डाला? अगाध और गम्भीर जल भी कहाँ रहा हुआ था?

> न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि। न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेत।
> आनीदवातं स्वधया तदेकं। तस्माद्धान्यन्न पर: किंचनास॥
> (ऋग्० १०। १२६। २)

अर्थ—उस समय मृत्युशील = जगत् भी नहीं था। वैसे ही अमृत = नित्य पदार्थ भी नहीं था। रात्रि और दिन का भेद समझने के लिये कोई प्रकेत = साधन नहीं था। स्वधा = माया अथवा प्रकृति के साथ एक वस्तु थी, जो कि बिना वायु के ही स्वास ले रही थी। उसके सिवाय दूसरा उससे अन्य कुछ भी नहीं था।

> तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
> तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाऽजायतैकम्॥
> (ऋग्० १०। १२६। ३)

अर्थ—अग्रे = सृष्टि के पहले प्रलय दशा में अज्ञान रूप यह जगत् तम = माया से आच्छादित था। अप्रकेत = अज्ञायमान था। दूध और पानी की तरह एकाकार, एक रूप था। आभु = ब्रह्म, तुच्छ = माया से आच्छादित था। वह एक ब्रह्म तप की महिमा से प्रकट हुआ अर्थात्—नाना रूप धारण किए।

अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेना—
था को वेद यत आबभूव,
(ऋग्० १० । १२९ । ६)

अर्थ—इस जगत् का विस्तार किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से हुआ है यह परमार्थ रूप से निश्चय से कौन जान सकता है या इसका वर्णन कर सकता है? कोई नहीं कर सकता। क्या देवता नहीं जान सकते और न कह सकते? इसके उत्तर में कहते हैं कि—देवता भूत सृष्टि के बाद उत्पन्न हुए हैं इसलिये व पहले की बात कैसे जान सकते हैं? यदि देवताओं को भी यह मालूम नहीं है तो उनके बाद उत्पन्न होने वाले मनुष्यादिक का तो बात ही क्या कहना? अर्थात् मनुष्य कैसे जान सकते हैं कि अमुक निश्चित कारण से ही यह सृष्टि उत्पन्न हुई है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥
(ऋग्० १० । १२९ । ७)

अर्थ—गिरि, नदी, समुद्रादि रूप यह विशेष सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है उसे कौन जानता है? अथवा इस सृष्टि का किसी ने धारण की है या नहीं की है यह भी कौन जान सकता है? क्योंकि इस सृष्टि के अध्यक्ष परमात्मा परम उच्च आकाश में रहते हैं। उस परमात्मा को भी कौन जानता है? वह परमात्मा स्वयं सृष्टि को जानता है या नहीं? इसकी भी किसको खबर है? क्योंकि

सृष्टि के आरम्भ में देवता या मनुष्य कोई भी हाजिर नहीं थे, उन्हें सृष्टि सम्बन्धी कथा का ज्ञान कैसे हो सकता है ?

ऊपर बताई हुई दो ऋचाओं में सृष्टि के १६ प्रकारों का यह सारांश बताया गया है कि—"प्रभु के घर की बात प्रभु ही जाने" हम नहीं जान सक्ते। न देव ही जान सकते हैं। जब सृष्टि का आरम्भ हुआ था उस समय देवता या मनुष्य कोई भी उपस्थित नहीं थे इसलिये सृष्टि का मर्म जानना कठिन है, दुर्लभ है। जिस प्रकार सृष्टि का ज्ञान दुर्लभ है उसी प्रकार सृष्टि की रचना करना भी दुर्धर कार्य है। सृष्टि का उपादान कारण ब्रह्म है या कोई ईश्वर है या प्रकृति है अथवा परमाणु उपादान कारण है और ईश्वर निमित्त कारण है यह कोई भी नहीं जानता। यदि कोई जानता होता तो सृष्टि के सम्बन्ध में इतने मत भेद नहीं होते।

उपसंहार

सूयगडांग सूत्र के प्रथम अध्ययन के तीसरे उद्देशे की नौवीं गाथा में "सएहि परियाएहिं लोय बूया कडेतिय तत्त तेन वियाणन्ति" इन तीन पदों में जो भाव कहा गया है उसका विस्तार ही सृष्टि के १६ प्रकार हैं "तत्त ते न वियाणन्ति" इस तीसरे पद का रहस्य नासदीय सूक्त की ऊपर बताई हुई छट्ठी और सातवीं ऋचा में ठीक स्पष्ट प्रकट होता है अर्थात्—सृष्टि का तत्व कोई नहीं जानता। तत्व जाने बिना अपनी अपनी बुद्धि से या कल्पना से सृष्टिवाद उत्पन्न किया गया है वास्तव में लोक का स्वरूप क्या है यह चौथे पद में बताया गया है जिस का वर्णन आगे किया जायगा।

आर्य समाज सृष्टि

(सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी, नववीं आवृत्ति, अष्टम उल्लास के आधार से)

इस जगत की उत्पत्ति में प्रकृति उपादान कारण है और परमेश्वर निमित्त कारण है। प्रकृति, ईश्वर और जीव ये तीनों अनादि, परस्पर भिन्न और अज—जन्म रहित हैं। तीनों जगत के कारण हैं किन्तु इनका कोई कारण नहीं है। अनादि काल से जीव प्रकृति का भोग कर रहा है और उसमें फँसता जाता है। किन्तु ईश्वर न तो प्रकृति का भोग करता है और न फँसता ही है। सत्त्व रज, और तम की साम्यावस्थारूप प्रकृति है। उससे महत्तत्त्व-बुद्धि, बुद्धि से अहङ्कार, अहङ्कार से पांच तन्मात्राएँ सूक्ष्मभूत, दस इन्द्रियाँ और मन, पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूत इस प्रकार २४ तत्त्व हुए और पचीसवाँ पुरुष अर्थात जीव और परमात्मा। यह पचीस तत्त्वों का क्रम है (स० प्र० हिं० पृ० २१६)

कारण के प्रकार

कारण के तीन प्रकार हैं—१ निमित्त कारण २ उपादान कारण ३ साधारण कारण। निमित्त कारण के दो भेद मुख्य निमित्त कारण और साधारण निमित्त कारण। जगत की रचना करने में, पालन करने में सँहार करने में, और व्यवस्था करने में मुख्य निमित्त कारण ईश्वर परमात्मा है और साधारण निमित्त कारण जीव है जो कि परमेश्वर की सृष्टि से पदार्थों को ग्रहण करके अनेक प्रकार के कार्य करता है। जिसके बिना कार्य न हो सके,

जो स्वय अवस्थान्तर रूप बनता है या बिगडता है वह उपादान कारण कहा जाता है। जैसे जगत का उपादान कारण प्रकृति है। दिशा, काल, आकाश आदि साधारण कारण हैं। प्रकृति-परमाणु स्वय जड़ है अत अपने आप न तो बन सकती ह और न बिगड सकती है किन्तु दूसरों के बनाने से बनती है और बिगाडने से बिगडती है। कहीं कहीं जड के निमित्त से भी जड बन बिगड सकता है जैसे परमेश्वर द्वारा रचित बीज पृथ्वी में गिरने से और जल का सयोग मिलने से अपने आप वृक्ष रूप बन जाता है और अग्नि आदि जड के सँयोग से नष्ट भी हो जाता है किन्तु नियम पूर्वक बनना और बिगडना परमेश्वर और जीव के आधीन है। (स० प्र० हि० पृ०२२८)

जगत् बनाने में ईश्वर का क्या प्रयोजन है ?

जगत् की रचना करने में ईश्वर को ये प्रयोजन हैं—१ प्रलय की अपेक्षा सृष्टि में कई गुना सुख रहा हुआ है, जगत् बनाने से वह सुख जीवों को प्राप्त होता है। २ प्रलय में न तो पुरुपार्थ है और न मोक्ष ही, जगत् रचना करने से कई जीव पुरुपाथ करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। ३ प्रलय के पहले के जीवों के द्वारा किए हुए पुण्य पाप के फल सृष्टि के बिना जीव नहीं भोग सकते अत जीवों के द्वारा पुण्य पाप का फल भोग कराना यह तीसरा प्रयोजन है। ४ ईश्वर का ज्ञान और बल सृष्टि बनाये बिना निरर्थक हो जाते, सृष्टि बनाने से वे सार्थक हो गये हैं। ५ सब जीवों को जगत् के असख्य पदार्थ देकर परोपकार करना पाँचवा प्रयोजन है।

(स० प्र० हि० पृ० २२४)

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—वृक्ष पहले है या बीज पहले है ?

उत्तर—बीज पहले है क्योंकि हेतु, निदान, निमित्त, बीज और कारण ये सब पर्याय—एकार्थ वाचक शब्द हैं। कारण का ही नाम बीज होने से कार्य के पूर्व उपस्थित होता है।

प्रश्न—यदि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह प्रकृति और जीवों को भी क्यों नहीं बनाता ?

उत्तर—परमेश्वर सर्वशक्तिमान् होता हुआ भी स्वाभाविक नियम के विरुद्ध कुछ नहीं करता। जैसे जल की शीतलता, अग्नि की उष्णता स्वाभाविक है अतः ईश्वर इनका परिवर्तन नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा किसी की सहायता लिए बिना अपने सब कार्य पूरे कर सकता है।

प्रश्न—ईश्वर साकार है या निराकार ?

उत्तर—ईश्वर निराकार है। यदि साकार अर्थात शरीर युक्त होता तो वह ईश्वर नहीं बन सकता। क्योंकि शरीरधारियों में शक्ति परिमित होती है। देश काल की परिछिन्नता क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्णता, ज्वर पीडा आदि ईश्वर में पाये जाते किन्तु ये सब जीव के गुण हैं। ईश्वर में ये गुण घटित नहीं हो सकते अतः वह निराकार अशरीरी है। हम लोगों के समान यदि ईश्वर साकार होता तो त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश न कर सकता और सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् भी न बना सकता। वह निराकार होता हुआ भी अनन्त शक्ति बल पराक्रम से सब कार्य कर सकता है।

वह प्रकृति से भी सूक्ष्म है अर्थात् प्रकृति में व्याप्त होकर उसे पकड़ कर जगदाकार बना देता है।

प्रश्न—निराकार ईश्वर से साकार जगत् कैसे बना?

उत्तर—यदि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण होता तो निराकार ईश्वर से साकार जगत् नहीं बन सकता किन्तु हम तो ईश्वर को निमित्त कारण मानते हैं, उपादान कारण प्रकृति-परमाणु हैं। परमाणु साकार हैं अत साकार परमाणु प्रकृति से साकार जगत् उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्न—क्या उपादान कारण के बिना परमेश्वर कुछ भी नहीं कर सकता?

उत्तर—हाँ, उपादान कारण के बिना ईश्वर कुछ नहीं कर सकता। असत् का सत् कोई नहीं कर सकता। क्या किसी ने वन्ध्या पुत्र और वन्ध्या पुत्री का विवाह देखा है? नरशृङ्ग का धनुष, खपुष्प की माला, मृगतृष्णिका के जल में स्नान, गन्धर्व नगर में निवास, बादल के बिना वर्षा और पृथिवी के बिना अन्न की उत्पत्ति क्या किसी ने देखी है? नहीं।

प्रश्न—कारण बिना कार्य नहीं हो सकता तो कारण का कारण क्या है?

उत्तर—जो केवल कारण रूप हैं वे कार्य रूप नहीं होते। प्रकृति केवल कारण रूप होने से उसका कोई कारण नहीं है। परमेश्वर, जीव, प्रकृति, काल और आकाश ये पाचों अनादि हैं अत इनका कोई कारण नहीं है और इनमें से किसी एक की भी अनुपस्थिति में कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

स० प्र० हि० पृ० २२५-२२६)

प्रश्न—ईश्वर अपनी इच्छा के अनुसार कर्मफल कर्मानुसार फल देता है ?

उत्तर—ईश्वर फल देने में स्वतन्त्र होता तो कर्म किये बिना भी शुभ या अशुभ फल अपनी इच्छानुसार देता या किसी का क्षमा भी कर देता किन्तु ऐसा नहीं होता है। जिस जीव ने जैसा कर्म किया हो उसको उसी के अनुसार ईश्वर फल देता है। अर्थात् ईश्वर कर्मों के आधीन रह कर फल देता है।

(स० प्र० हिं० पृ० २२७)

प्रश्न—कल्प कल्पान्तर में ईश्वर भिन्न भिन्न प्रकार की सृष्टि बनाता है या एक समान ही ?

उत्तर—वर्तमान में जैसी सृष्टि है वैसी ही पहिले थी और भविष्य में भी वैसी ही बनायेगा। किसी प्रकार का भी उसमें भेद नहीं होता। कहा है कि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥
(ऋ० १०। १९०। ३)

अर्थ—परमेश्वर ने पूर्व कल्प में जैसे सूर्य, चन्द्र, विद्युत् पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग बनाये थे वैसे ही वर्तमान में बनाता है और भविष्य में भी बनायेगा।

(स० प्र० हिं० २३०)

प्रश्न—मनुष्य की सृष्टि पहिले हुई या पृथिवी आदि की ?

उत्तर—पृथिवी आदि की सृष्टि पहिले हुई है क्योंकि

उनके अनुसार छोटी बड़ी जाति में जीवों को उत्पन्न किया है इसलिए ईश्वर के ऊपर पक्षपात का दोष नहीं लग सकता।

प्रश्न—मनुष्यों की प्रथम सृष्टि किस स्थल में हुई?

उत्तर—त्रिविष्टप में अर्थात जिसको आजकल तिब्बत कहते हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में जाति एक थी या अनेक?

उत्तर—मनुष्य जाति एक रूप ही थी। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि भेद न थे। पीछे से 'विजानीह्यार्यान्ये च दस्यव' आर्य, दस्यु अनार्य ऐसे भेद हुए।

प्रश्न—वे मनुष्य यहाँ कैसे आये?

उत्तर—आर्य और अनार्यों में झगड़ा हो गया, परस्पर विरोध हो गया, अत आर्य लोग चारों ओर फैल गये और इस भूमि को सर्वथा श्रेष्ठ मानकर यहाँ आ बसे। तभी से यह आर्यावर्त कहा गया है।

(स० प्र० हिं० २३४-२३५)

प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति कितने समय में हुई?

उत्तर—एक अब्ज (अरब) छियानवे करोड़ कई लाख और अनेक हजार वर्षों में हुई है। वेदों के प्रकाशित होने में भी इतना ही समय लगा है।

प्रश्न—ईश्वर ने किस क्रम से पृथिवी आदि बनाये?

उत्तर—सबसे बारीक अंश परमाणु है। साठ परमाणुओं का एक अणु, दो अणुओं का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु रूप है। तीन द्वयणुकों का अग्नि, चार द्वयणुकों का जल, पाँच

और आकाश की भी गणना की गई है और तीनों को अनादि तथा अविनाशी बताया गया है। आकाश तो पंच महाभूतों में आ गया है किन्तु काल और दिशा जो वैशेषिक दर्शन में नौ-द्रव्यों में गिने हुए हैं उनको छव्वीस के साथ जोड़ने पर अट्ठाईस तत्त्व हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि सांख्य दर्शन में आकाश की गणना पंच महाभूतों में है और पंचमहाभूत पांच तन्मात्राओं से उत्पन्न हुए हैं अत विनाशी सिद्ध हुए किन्तु स्वामी जी ने प्रकृति की तरह आकाश का भी अनादि कहा है, क्या इन दोनों कथनों में परस्पर विरोध नहीं है? अस्तु कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि स्वामीजी की सृष्टि प्रक्रिया या तत्त्व प्रक्रिया एक दर्शन मूलक नहीं है। कोई वस्तु सांख्य दर्शन से, कोइ वेदान्त/से, कोई न्याय दर्शन से, कोई वैशेपिक दर्शन से, कोई जैन दर्शन से और कोई अन्य किसी दर्शन से, जो अपनी बुद्धि को न्याय सङ्गत मालूम हुई स्वामी जी ने स्वीकार की है। एक प्रकार से तो स्वामी जी ने ठीक ही किया है क्योंकि कहा है 'युक्तियुक्त प्रगृह्णीयात् बालादपि विचक्षण। अन्यत्तृणमिव त्याज्य मप्युक्त पद्मयोनिना" क्या ही अच्छा होता यदि सर्व प्रकार से इस पद्धति का अनुसरण किया जाता। सांख्य के प्रकृति पुरुष को जिस प्रकार स्वतंत्र और अनादि स्वीकार कर लिया गया है उसी प्रकार पुरुष के बद्ध और मुक्त दो प्रकार स्वीकार करके मुक्त पुरुष को ऐश्वर्ययुक्त होने से ईश्वर मानते हुए पुरुष के समान उसे अकर्त्ता मान लिया जाता तो श्रुतियों के अर्थ में परिवर्तन करने की आवश्यकता न पड़ती। स्वामी जी ने स्मृति और पुराणों का मोह छोड़ दिया है, किन्तु अपनी सृष्टि प्रक्रिया को प्राचीन बताने का मोह नहीं छोड़ सके और इसीलिए वेदों के अर्थ में परिवर्तन करके ऋचाओं के शब्दों के प्रति गहरा मोह जाहिर किया है। अपनी कृति पर

उत्तर—थोड़ा आकृति भेद हो सकता है। जैसे आफ्रिका और यूरोप के मनुष्यों की आकृति में भेद है वैसे ही सूर्यादिलोक में भी समझना चाहिए।

(स० प्र० हि पृ० २४१-२४२)

समालोचना

स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में वेदान्त, सांख्य और न्याय दर्शन का मिश्रण करके सृष्टि प्रक्रिया की कल्पना की है। वेदान्त की ब्रह्मपरक श्रुति से निराकार ईश्वर उद्धृत किया गया है। वेदान्त जिस ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानता है उसी को स्वामी जी निमित्त कारण बता कर न्यायदर्शन का आश्रय लेते हैं। ब्रह्म से अभिन्न माया का स्वतन्त्र प्रकृतिरूप बता कर सांख्य दर्शन में प्रवेश करते हैं। सांख्यदर्शन के प्रकृति और पुरुष दोनों स्वतन्त्र तत्वों को स्वामी जी ने वैसे के वैसे ही स्वतंत्र और अनादि अनन्त मान लिये हैं। किन्तु पुरुष तत्त्व में जीव और ईश्वर दोनों का समावेश कर लिया है। सांख्य के पच्चीस तत्त्वों में ईश्वर का नाम नहीं है। स्वामी जी ने पच्चीस तत्त्व तो पूरे पूरे सांख्यों के ही लिए हैं किंतु छब्बीसवाँ ईश्वर तत्त्व वेदान्त से लिया है और उसको पुरुष तत्त्व में मिला दिया है। सांख्य का पुरुष कर्ता नहीं है किन्तु भोक्ता है, जब कि स्वामी जी का ईश्वर भोक्ता नहीं किन्तु कर्ता है। इतनी विलक्षणता होते हुए भी स्वामी जी ने उसका पुरुष तत्त्व में समावेश कैसे कर डाला, समझ में नहीं आता। दूसरी तरफ ऐसा भी कहा है कि प्रकृति, पुरुष-जीव और ईश्वर ये तीनों परस्पर भिन्न हैं, इस हिसाब से स्वामी जी की सृष्टि में छब्बीस तत्त्व हैं ऐसा कहना अनुचित न होगा। इतना ही नहीं किन्तु साधारण कारण में दिशा, काल

और आकाश की भी गणना की गई है और तीनों को अनादि तथा अविनाशी बताया गया है। आकाश तो पच महाभूतों में आ गया है किन्तु काल और दिशा जो वैशेषिक दर्शन में नौ-द्रव्यों में गिने हुए हैं उनको छब्बीस के साथ जोड़ने पर अट्ठाईस तत्त्व हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि साख्य दर्शन में आकाश की गणना पच महाभूतों में है और पचमहाभूत पाच तन्मात्राओं से उत्पन्न हुए हैं अत विनाशी सिद्ध हुए किन्तु स्वामी जी ने प्रकृति की तरह आकाश का भी अनादि कहा है, क्या इन दोनों कथनों में परस्पर विरोध नहीं है? अस्तु कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि स्वामीजी की सृष्टि प्रक्रिया या तत्त्व प्रक्रिया एक दर्शन मूलक नहीं है। कोई वस्तु साख्य दर्शन से, कोई वेदान्तसे, कोई न्याय दर्शन से, कोई वैशेषिक दर्शन से, कोई जैन दर्शन से और कोई अन्य किसी दर्शन से, जो अपनी बुद्धि को न्याय सङ्गत मालम हुई स्वामी जी ने स्वीकार की है। एक प्रकार से तो स्वामी जी ने ठीक ही किया है क्योंकि कहा है 'युक्तियुक्त प्रगृह्णीयात् बालादपि विचक्षण । अन्यत्तृणमिव त्याज्य मप्युक्त पद्मयोनिना" क्या ही अच्छा होता यदि सर्व प्रकार से इस पद्धति का अनुसरण किया जाता। साख्य के प्रकृति पुरुष को जिस प्रकार स्वतत्र और अनादि स्वीकार कर लिया गया है उसी प्रकार पुरुष के बद्ध और मुक्त दो प्रकार स्वीकार करके मुक्त पुरुष को ऐश्वर्ययुक्त होने से ईश्वर मानते हुए पुरुष के समान उसे अकर्त्ता मान लिया जाता तो श्रुतियों के अर्थ में परिवर्तन करने की आवश्यकता न पड़ती। स्वामी जी ने स्मृति और पुराणों का मोह छोड दिया है, किन्तु अपनी सृष्टि प्रक्रिया को प्राचीन बताने का मोह नहीं छोड़ सके और इसीलिए वेदों के अर्थ में परिवर्तन करके ऋचाओं के शब्दों के प्रति गहरा मोह जाहिर किया है। अपनी कृति पर

वेदों की छाप लगाने के लिए शब्द मोह को न छोड़ सक कहाँ कहाँ अर्थ में परिवर्तन करना पड़ा है उसके थोड़ नमूने यहाँ दिखाये जाते हैं—

(१) इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद॥

(ऋग्० १०।१२६।७)

अर्थ—सायणभाष्य के अनुसार—गिरि, नदी, समुद्रादि रूप यह विशेष सृष्टि किससे बनी है यह कौन जानता है! अथवा इस सृष्टि को किसी ने धारण किया है या नहीं यह भी कौन जानता है? क्यों कि इस सृष्टि के अध्यक्ष परमात्मा परम उच्च आकाश में रहते हैं, उनको भी कौन जानता है? वह परमात्मा स्वयं सृष्टि को जानता है या नहीं? धारण करता है या नहीं? इसका भी किसे पता? सृष्टि की आदि में—आरम्भ में देवता या मनुष्य कोई उपस्थित न थे, तो उन्हें सृष्टि सम्बन्धी ज्ञान कहाँ से होता?

सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार अर्थ—

हे (अंग) मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है, जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है, उसको तू जान और दूसरे को सृष्टि कर्त्ता मत मान।

(स० प्र० हि० पृ० २१८)

आर्यसमाजी पण्डित जयशकर लिखित भाषानुसार अर्थ—

यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस मूल तत्त्व से प्रकट हुई है और जो इस जगत् को धारण कर रहा है और जो नहीं धारण करता जो इसका अध्यक्ष वह प्रभु परम पद में विद्यमान है। ये विद्वन्! वह सब तत्त्व जानता है, चाहे और कोई भले ही न जाने।

(२) पुरुष एवेद सर्वं यद्भूत यच्च भाव्य उतामृतत्वस्येशानो यदन्ने नातिरोहति।

(यजु॰ अ॰ ३१ म॰ २)

सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार अर्थ—

हे मनुष्यो ? जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीव का स्वामी जो पृथिव्यादि जड और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् को बनाने वाला है।

(स॰ प्र॰ हिं॰ पृ॰ २१८)

दयानन्द तिमिर भास्कर के अनुसार अर्थ—

(इद) यह (यत्) जो (भूत) अतीत ब्रह्म सकल्प जगत् है (च) और (यत्) जो (भाव्य) भविष्य सकल्प जगत् है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) बीज या अन्नपरिणाम वीय स (अतिरोहति) वृक्ष नर पशु आदि रूप से प्रकट होता है (सर्वं) वह सब (अमृतत्वस्य) मोक्ष का (ईशान) स्वामी (पुरुष) नारायण (एव) ही है।

(द॰ ति॰ भा॰ पृ॰ २५३)

(२) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ॥ २ ॥

(तै० उप०भृगुवल्ली अनु० १)

सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार अर्थ—

जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिसमें जीव और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है, उसके जानने की इच्छा करो।

(स० प्र० हिं० पृ० २१८)

दयानन्द तिमिर भास्कर के अनुसार अर्थ—

जिससे यह प्राणी उत्पन्न होते और उसी से जीते और अन्त में उसी में प्रवेश करते हैं उसे ही ब्रह्म जानो।

(ति० प्र० भा० पृ० २२१)

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ२३४ में "मनुष्या ऋषयश्च ये ततो मनुष्या अजायन्त"। यह उद्धरण यजुर्वेद के नाम से उद्धृत किया गया है। किन्तु दयानन्द तिमिरभास्करकार कहते हैं कि यह वाक्य यजुर्वेद में कहीं भी नहीं है। हाँ, शतपथ ब्राह्मण में 'ततो मनुष्या अजायन्त" वाक्य एक श्रुति के अन्तर्गत है। किन्तु इसे तो स्वामी जी प्रमाणरूप नहीं मानते हैं। क्योंकि वे शतपथ ब्राह्मण को एक पुराण रूप मानते हैं। पुराण का उद्धरण यजुर्वेद के नाम से देना उचित नहीं है। यह तो एक प्रकार की धोखे बाजी होगी, शतपथ ब्राह्मण की श्रुति से जवान जवान पुरुष, जवान जवान स्त्रियाँ, जवान-जवान गायें और जवान जवान बैल इत्यादि अर्थ नहीं निकलता है। वैसी हालत में जवान जवान

मनुष्यों का निराकार ईश्वर से प्रकट होना कहाँ तक ठीक है? यह कल्पना स्वामी जी ने अपने मन से की है या किसी श्रुति का भी आधार है ? 'ततो मनुष्या अजायन्त' इस सारी श्रुति से अद्वैत पक्ष और ईश्वर की साकारता सिद्ध होती है जो कि स्वामी जी के मन्तव्य से विरुद्ध है । इसीलिए उद्धरणरूप से सारी श्रुति न देकर केवल उपर्युक्त पद ही दिया है । युक्तिवादी स्वामी जी को श्रुति का मोह न छूट ने से श्रुति के पीछे दौडना पडा है । चाहे उस में वह अर्थ हो या न हो, प्रसिद्ध अर्थ की रक्षा होती हो चाहे बदलना पडा हो तो भी उसका उद्धरण दिये बिना न रह सके ।

निमित्तकारण के दो भेद मुख्य निमित्तकारण और साधारण निमित्त कारण। ये भेद किसी शास्त्र में नहीं देखे गये । केवल स्वामी जी ने ही ईश्वर को कारण कोटि में प्रविष्ट करने के लिए यह कल्पना की है ऐसा मालूम पडता है । इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो है ही नहीं क्योंकि निराकार ईश्वर किसी को दृष्टि गोचर नहीं होता। आगम प्रमाण विवादास्पद है । स्वय वेद की श्रुतियाँ ब्रह्म को उपादान कारण बताने वाली हैं । यद्यपि स्वामी जी ने उनके अर्थ में परिवर्तन करके निमित्त कारण रूप अर्थ करने की कोशिश की है किन्तु दयानन्द तिमिरभास्कर नामक पुस्तक के पृ० २६० से २६५ में पण्डित ज्वालाप्रसाद जी ने खूब जोर शोर से इसका प्रतिवाद किया है। अब रहा अनुमान प्रमाण, उसका उत्तर मीमासा दर्शन, बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन ने उत्तर पक्ष में विस्तार से दिया है, वह यथास्थान दिखाया जायगा। यहाँ तो संक्षेप में इतना ही बताना है कि कुम्भकार मिट्टी से घडा बनाता है इस दृष्टान्त में मिट्टी उपादानकारण है ,

नरह चकादि साधारण निमित्त कारण और कुम्भकार मुख्य निमित्त कारण है। यहाँ ईश्वर को निमित्त कारण बनने को कहाँ अवकाश है। कुम्भकार में ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न तीनों ही मौजूद हैं। कारण सामग्री में क्या न्यूनता रह गई है कि बीच में ईश्वर को डालने की आवश्यकता पड़े। कदाचित् यों कहा कि पर्वत, नदी, समुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि मनुष्य से नहीं बनाये जा सकते अतः इनके बनाने में ईश्वर मुख्य निमित्त है तो यह कथन भी ठीक नहीं है। सूर्य, चन्द्र, द्वीप, सागर, स्वर्ग, नरक आदि कई पदार्थ शाश्वत हैं। प्रकृति, जीव, आकाश आदि की तरह ये भी अनादि हैं। द्रव्यरूप से नित्य हैं और पर्याय्य रूप से अनित्य हैं। पर्यायों का परिवर्तन काल के निमित्त से होता है, रूपान्तर होने का प्रकृति का स्वभाव है। नदी, पर्वत आदि अनित्य हैं, ये वायु जल, विद्युत् भूकम्प आदि निमित्तों से बनते और बिगडते हैं। ये एक दिन में नहीं बनते बिगडते किन्तु इनके बनने बिगडने में हजारों लाखों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। यदि ये पर्वत ही आदि ईश्वर द्वारा बने हुए होते तो एक ही दिन में बन जाने चाहिएँ और बिगड जाने चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता। स्वामी जी से यह पूछना चाहिए कि रेल, मील, तार, टेलीफोन, फोनोग्राफ आदि अनेक प्रकार के यन्त्र ईश्वर के द्वारा बनाये हुए हैं या मनुष्यों की शोधखोज के परिणाम हैं? यदि ईश्वर के द्वारा बनाये हुए माने तो जब से यह सृष्टि है तभी से उपयुक्त यन्त्र बने हुए होते किन्तु ऐसा नहीं है। इन यन्त्रों का आविष्कार तो अमुक अमुक समय में अमुक अमुक विशेष व्यक्तियों के द्वारा हुआ है। भाफ और विद्युत् की क्या कम शक्ति है? इनकी सहायता से ड्राइवर कितना काम कर सकता है यह सब जानते हैं।

आपके ईश्वर को तो नियम प्रकृति, काल आदि के अधीन रह कर कार्य करना पडता है। कहिए, अधिक शक्तिशाली कौन रहा? पृथिवी पानी, वृक्ष, मनुष्य, तिर्यञ्च आदि सभी शरीररूप हैं और शरीर सब जीव से बने हुए हैं। जीव पूर्व कर्म की सहायता से परमाणु समूह से बने हुए स्कन्ध को ग्रहण करता है और उसे कर्मरूप या शरीररूप बनाता है। एक एक जीव क्रम क्रम से सारी दुनिया को बना सकता है तो निराकार ईश्वर को इस दुनियादारी की खट पट में पड़ने की क्या आवश्यकता है? इतना स्वामी जी भी स्वीकार करते हैं "कहीं कहीं जड के निमित्त से ही जड बन सकता है और बिगड सकता है"। पृथिवी में बीज गिरने से और जल का संयोग मिलने से अपने आप वृक्ष बन जाता है। गर्मी के संयोग से पानी से भाप बन कर आकाश में जाकर बादल बन कर अपने आप बरसने लगता है। स्वामी जी कहते हैं कि नियम पूर्वक बनना बिगड़ना ईश्वर और जीव के अधीन है किन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। नियम का अर्थ कायदा कानून नहीं किन्तु वस्तु स्वभाव है। वस्तु अपने स्वभाव की मर्यादा में रहे यही नियम है। वट के बीज में वटवृक्ष बनने का स्वभाव है और बबूल के बीज में बबूल बनने का। इस नियम के अनुसार ईश्वर के किंचित्मात्र प्रयत्न के बिना भी वट के बीज से वट और बबूल के बीज से बबूल ही बनेगा। जीव तो बीज में भी रहा हुआ है। अत जीव और पुद्गल-प्रकृति इन दोनों के संयोग से सारे संसार का व्यवहार, उत्पत्ति, प्रलय आदि चल सकते हैं। निराकार ईश्वर को बीच में डालना निरर्थक है।

सृष्टि बनाने के प्रयोजन

स्वामी जी ने सृष्टि के पाँच कारण बताये हैं, उनकी यथार्थ योग्यता का परामर्श करें—पहला प्रयोजन यह बताया कि प्रलय की अपेक्षा सृष्टि में सुख अधिक है दूसरा प्रयोजन यह है कि प्रलयकाल में पुरुषार्थ नहीं है और सृष्टि में पुरुषार्थ से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन दोनों प्रयोजनों में प्रलय की अनिष्टता और सृष्टि की इष्टता बताई गई है वह तो ठीक है। हम भी स्वीकार करते हैं कि सृष्टि में पुरुषार्थ करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। किन्तु प्रलय करने का कार्य भी स्वामी जी तो ईश्वर के मत्थे मढ़ते हैं। जिस ईश्वर ने प्राणियों को अधिक सुख देने के लिए पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष प्राप्त कराने के लिए सृष्टि रचना की है वही ईश्वर सृष्टि का संहार क्यों करता है? अधिक सुख भोगते हुए और मोक्ष प्राप्त करते हुए प्राणियों से ईश्वर ईर्षा तो नहीं करने लगा है? ईश्वर सदा काल सृष्टि बनी रहने दे और प्रलय न करे तो बेचारे मनुष्य अधिक सुख भोगते रहते और कोई कोई पुरुषार्थ करके मोक्ष भी प्राप्त कर लेते। इससे ईश्वर को क्या नुकसान था?

तीसरे प्रयोजन में बतलायागया था कि प्रलय के पूर्व के पुण्य पाप का फल भुगताने के लिये ईश्वर सृष्टि रचना करता है। यह कहना ठीक है किन्तु स्वामी जी को यह तो बताना चाहिए कि प्रलय के पूर्व जब प्राणी अपने पुण्य पाप का भोग कर रहे थे तब ईश्वर ने प्रलय करके उनके कर्म भोग को क्यों रोक दिया था? प्रलय में तो फल भोग नहीं हो सकता। सृष्टि के समय ईश्वर की जो इच्छा थी वह प्रलय के वक्त क्यों बदल गई?

नावनियों के मत से तो साकार ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि रूप भिन्न भिन्न स्वाग धारण करके भिन्न भिन्न कार्य करता है। किंतु आपका निराकार ईश्वर का रूप बदलता ही नहीं है तो उसकी इच्छा क्यों बदल गई इसका कारण बताओगे ? चौथा और पाचवाँ प्रयोजन यह बताया था कि ज्ञान और बल का उपयोग करना और सुख सामग्री प्रदान करके परोपकार करना। प्रयोजन दोनों ठीक हैं किन्तु प्रलय करने में तो दोनों प्रयोजन विपरीत हो जाते हैं अर्थात् प्रलय में ईश्वर का ज्ञान और बल का प्रयोग स्थगित हो जाता है, अत सृष्टि का एक भी प्रयोजन प्रलय में कायम नहीं रहता है। हाँ, यदि प्रलय न किया जाता तो थोडी देर के लिए आपके बताये हुए प्रयोजन मान लिये जाते, किन्तु ईश्वर को प्रलय कर्ता बता कर आपने सब प्रयोजन व्यर्थ कर दिये। वस्तुत सृष्टि काल में सभी जीव सुखी नहीं होते सुखी थोडे और दुखी अधिक देखे जाते हैं। देवता की अपेक्षा नारकी अधिक होते हैं। मनुष्यों की अपेक्षा पशु पक्षी आदि तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय पृथिव्यादि जीव और निगोद अधिक हैं और संसार में कष्ट सहन कर रहे हैं। उनके लिए उपकार हुआ है या अपकार ? सुख दु ख अपने अपने कर्मों के अनुसार होते हैं तो बीच में ईश्वर को ला डालने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा क्यों नहीं स्वीकार कर लेते कि ईश्वर सृष्टि भी नहीं करता है और प्रलय भी नहीं। जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार जन्म मरण करते रहते हैं।

बीज और वृक्ष का अनुक्रम

स्वामी जी ने वृक्ष पहले है या बीज पहले है ? यह प्रश्न पूछ कर स्वयं ही उत्तर दे दिया कि बीज पहले है। ऐसा ही प्रश्न

भगवती सूत्र में रोह अणगार ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा है कि—मुर्गी पहले है या अण्डा? महावीर ने उत्तर इस दृष्टि से प्रश्न किया कि हे रोह! मुर्गी किससे हुई? रोह ने कहा अण्डे से। पुन भगवान् ने पूछा कि अण्डा कहाँ से हुआ? उत्तर, हे भगवन् मुर्गी से। तब पूर्वापर का कहाँ सवाल रहा? मुर्गी भी पहले है और अण्डा भी पहले है अर्थात् दोनों का प्रवाह अनादि है। इसी प्रकार वृक्ष भी पहले है और बीज भी। वृक्ष या बिना बीज नहीं और बीज बिना वृक्ष न हो। दोनों का प्रवाह अनादि है। 'बीज ईश्वर ने बनाये और वृक्ष बीज से उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहने के बजाय वृक्ष ईश्वर ने बनाये और बीज वृक्ष से उत्पन्न हुए हैं ऐसा क्यों नहीं कह सकते? क्या वृक्ष बनाने में ईश्वर को अधिक कष्ट होता था? यदि बीज वृक्ष का कारण है तो वृक्ष भी बीज का कारण है। एक में क्या विनि गमना (एक पक्षपाती युक्ति) है? वस्तुत ऐसा कहना उचित है कि दोनों का प्रवाह अनादि है। ईश्वर नियम के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। अत वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष अपने आप होते हैं यह नियम स्वभाव सिद्ध है।

ईश्वर साकार है या निराकार ?

इसके उत्तर में ईश्वर को निराकार बताकर स्वामीजी ने दीर्घदर्शिता प्रदर्शित की है। साकार बताने पर ईश्वर की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, अवयव रहने का स्थान, अवतार धारण करना आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न परम्परा चलती इस सब प्रपच से बचने का स्वामीजी ने ठीक मार्ग निकाल लिया। इतना ही नहीं कि तु इसमें साकारवाद और मूर्तिपूजा, का जटिल प्रश्न भी साफ कर डाला है। साकारवाद या अव

ारवाद का समर्थन करने वाले पुराण या कई उपनिषदों को रमाण कोटि से बहिष्कृत करके निराकारवाद के शृङ्खलाबधन को स्वामीजी ने पहले से ही काट डाला है। तथापि निराकार ब्रह्म ईश्वर को उपादान कारण बतानेवाली वेदकी ऋचाओं को प्रमाण कोटि में स्वीकार करके स्वामीजी ने एक प्रकार का बधन कायम रक्खा है जिससे युक्तिबल से उपादान कारण का खण्डन करके उसके स्थान पर निमित्त कारण स्थापित करने में दयानन्द तिमिरभास्कर आदि ग्रन्थों का मुकाबला करना पडा है और कहीं कहीं पराजय भी सहन करना पडा है। अथवा कहीं कहीं अर्थ परिवर्तन भी करना पडा है। इसी पुस्तक में पहले सृष्टि के १- प्रकार, बताये गये हैं, उनमें से कई प्रकार तो स्वामी जी के माने हुए प्रमाणभूत शास्त्रों के ही हैं। उनमें के कई प्रकार तो साकारवाद का समर्थन करने वाले हैं। इन सब प्रक्रियाओं की तरफ स्वामी जी ने उपेक्षा दृष्टि रखकर के साकारवाद का उत्थापन करके निराकारवाद में निमित्त कारण की स्थापना करने का दु साहस किया है। वह साहस तभी सार्थक हो सकता था जब कि निराकरवाद को कर्तृत्वसे मुक्त रखते। निराकार के हाथ पैर या शरीर न होने से स्वामी जी के कथनानुसार प्रकृति को पकडने और उस जगदाकार बनाने का कार्य कैसे सभवित हो सकते हैं? यह बात समझ में नहीं आती। निराकार ईश्वर को अमुक प्रकार की इच्छा है अथवा नहीं है यह भाव जड परमाणु को कैसे हो सकता है जिससे कि वह उसकी इच्छानुसार वर्तन करे। जहा ज्ञान है वहा क्रिया नहीं है और जहा क्रिया है वहाँ ज्ञान नहीं है। ज्ञान और क्रिया के वैयधिकरण्य में निराकार ईश्वर और

जड परमाणुओं का मेल कैसे मिल सकता है ? यह बात बुद्धि में नहीं बैठती है। कुम्भकार ता बुद्धि से जानता है और हाथ पैर हिला कर अपने शरीर द्वारा मिट्टी से घड़ा बना लेता है। किंतु ईश्वर के संबंध में ऐसा नहीं है। अतः स्वामीजी को चाहिए था कि या तो ईश्वर को शरीरधारी मान कर उससे जगत् निर्माण का कार्य लेते या सकर्मक जीव और प्रकृति का जगत् निर्माण का कार्य सौंपकर निराकार ईश्वर को सहजानन्दी परमानन्दी रहने देते। सुज्ञेषु किं बहुना ?

ईश्वर की परतन्त्रता

स्वामी जी इतना ता स्पष्ट बताते हैं कि कर्मफल देने में ईश्वरस्वतन्त्र नहीं है किन्तु कर्माधीन है। मुस्लिम खुदा के समान ईश्वर अपनी इच्छाके अनुसार सुख दुःख नहीं दे सकता, जावों के कर्मो के अनुसार सुख दुःख देता है। इससे ईश्वर की पूर्ण स्वतन्त्रता उड जाती है। ईश्वर को प्रकृति, जीव दिशा काल और आकाश के अधीन रख कर उसका सर्वशक्तिमत्ता पर पहले से ही रोक लगादी गई है और यहां स्वतन्त्रता पर भी राक लगादी गइ तो कहिए ईश्वर का ऐश्वर्य सामर्थ्य कहा रहा ? इसकी अपेक्षा ईश्वर को अकर्ता ही रहने देते तो उसकी कमजोरी तो प्रकट न होती। इसका सामर्थ्य ता अचलवार्य में व्याप्त है। जो कर्म सारे जगत् को नचा रहे हैं उनका असर अचलवीर्य वाले ईश्वर पर लेशमात्र भी नहीं होता है यही ईश्वर का ऐश्वर्य सामर्थ्य है। गाड़ी को बैल खींचता है किन्तु उसके नीचे चलता हुआ कुत्ता ऐसा माने कि मुझपर ही गाड़ी का भार है ता यह निरी मूर्खता या मिथ्याभि-

न है। कमजोर ईश्वर से पापीजीव पाप करते हुए कैसे डर सकते हैं? वे तो समझते हैं कि हमारे कर्म सिवा ईश्वर हम पर अनुग्रह कर सकता है और न निग्रह। इससे न तो दुःख देने वाले दुष्कर्म से डर लगेगा और न सुख देनेवाले शुभ कर्म का तरफ झुकाव होगा। कर्ता न मानने से ईश्वर की तरफ पूज्य भाव न रहेंगे ऐसी शका करना निरर्थक है। कर्मो के अधान न रहने से ईश्वर परम समर्थ है और इसने हमें सन्मार्ग बताया है अत इसका हम पर परम उपकार है, ऐसा विचार करने से ईश्वर पर हमारा भक्ति और पूज्य भाव रहगे ही। देखिए-जैन, बौद्ध, साख्य आदि ईश्वर को कर्ता नहीं मानते हैं तोमी उनका ईश्वर के प्रति श्रद्धा भक्ति किंचित् भी कम नहीं है।

जवान जवान मनुष्य आदि की उत्पत्ति—

स्वामी जी कहते हैं कि सृष्टि की आदि में मनुष्य आदि प्राणी नौजवान ही पैदा हुए थे, वृद्ध और बालक नहीं हुए थे। एक तरफ तो स्वामी जी ने कहा है कि ईश्वर नियम विरुद्ध कुछ भी नहीं करता है और दूसरी तरफ कहा है कि नौजवान मनुष्य आदि पैदा किये। यह तो बताइये कि बालक, तरुण और बाद में वृद्ध होते हैं यह नियम है या एकदम नौ जवान उत्पन्न हो जाते हैं यह नियम है। अगर नौजवान उत्पन्न होने का ही नियम है तो वर्तमान में भी नौजवान क्यों नहीं उत्पन्न होते? दूसरी बात, माता पिता के शुक्र और शोणित से गर्भ उत्पन्न होता है और नौ दस मास गर्भ में रह कर बालक जन्म लेता है, यह नियम है या बिना माता पिता के जवान जवान मनुष्य आकाश से वर्षा के समान गिर पड़ते हैं, यह नियम है।

ऐसा नियम आजतक देखा सुना नहीं गया है। अगर नियम नहीं है तो ईश्वरने नौ जवान मनुष्य उत्पन्न कर नियमका भंग किया है या नहीं? इस प्रकार की अघटित कल्पना करने की अपेक्षा तो मनुष्य के वीर्य मे मनुष्यगर्भ और पशु के वीर्य से पशुगर्भ मानना ही युक्ति व बुद्धि संगत है। गर्भ से बालक रूपसे जन्म लेता है, बालक तरुण होता है और तरुण वृद्ध होता है यह क्रम-नियम अनादि काल से चला आ रहा है और चलता रहेगा। सर्वथा प्रलय कभी भी नहीं होता है। खण्ड प्रलय जब एक देश में होता है तब उस प्रदेश के प्राणी अन्य प्रदेश में चले जाते हैं। बीज नष्ट नहीं होता है। ईश्वर का प्रलय करने का कुछ प्रयोजन भी नहीं है। प्रलय नहीं है तो सृष्टि का आरम्भ भी नहीं है। अनादि कालसे मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथ्वी, जलादि चल आ रहे हैं। 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः' असत् का सत् नहीं होता और सत् का असत् नहीं होता, इस सिद्धान्त को तो स्वामी जी अच्छी तरह स्वीकार करते हैं। वैसी अवस्था में बीज का निरन्वय नाश हो जाने पर भी नियम विरुद्ध नौ जवान मनुष्यों की उत्पत्ति मानना कतई उचित नहीं है। प्रकृति जीव, काल, आकाश के समान सारे जगत् को अनादि मान लो, प्रत्यक्षादि प्रमाण के बिना नवीन कल्पना करना व्यर्थ है।

इत्यलम्।

पौराणिक सृष्टि

वैदिक सृष्टि की अपेक्षा पुराणों में बतलाई हुई सृष्टि बहुत विस्तृत हो गई है। भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न रीति से सृष्टि का वर्णन किया गया है। वैदिक सृष्टि में कवल सृष्टि का ही वर्णन है। किन्तु पौराणिक सृष्टिवाद में सृष्टि के साथ प्रलय का भी वर्णन है। पुराणों में कई पुराण रजोगुण प्रधान हैं, कई तमोगुण प्रधान हैं और कई सत्वगुण प्रधान हैं। रजोगुण प्रधान पुराणों ने ब्रह्मा की महिमा गाई है, तमोगुण प्रधान पुराणों ने महेश्वर शिव की महिमा बढ़ाई है और सत्वगुण प्रधान पुराणों ने विष्णु की महिमा प्रदर्शित की है। वस्तुत इन तीनों देवों का आविर्भाव एक ब्रह्मस्रोत स ही होता है। अठारह पुराणों के कर्त्ता एक ही व्यासजी हैं या अलग अलग व्यास हैं यह स्पष्ट नहीं कहा गया है किन्तु इनकी भाषा विषय और रचना-शैली देखते हुए भिन्न भिन्न रचयिता हों ऐसा अनुमान होता है। कदाचित् मूल एक ही रहा हो और पीछे से भिन्न भिन्न विद्वानों ने उनमें वृद्धि करके पुस्तक का आकार बढ़ा दिया हो, यह भी सम्भव हो सकता है। आर्यसमाजी तो पुराणों को प्रमाण कोटि में ही नहीं गिनते। कुछ भी हो फिर भी उनमें वर्णित सृष्टिवाद का परिचय पाठकों के समक्ष रखने से तुलनात्मक दृष्टि पूर्वक सृष्टितत्व की कई अंशों में समालोचना की जा सकती है और सत्य का निर्णय करने के लिए सरल मार्ग प्राप्त किया जा सकता है। इसी आशय को लेकर यो भिन्न-भिन्न पुराणों से सृष्टिवाद का यहाँ संग्रह किया जाता

ब्रह्म वैवर्त्तपुराण के अनुसार गोलोकवासी कृष्ण की सृष्टि—

दृष्ट्वा शून्यमयं विश्वं, गोलोकं च भयङ्करम् ।
निर्जन्तु निर्जलं घोरं, निर्वातं तमसावृतम् ॥
आलोच्य मनसा सर्वे, मेकएवासहायवान् ।
स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे, सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः ॥
(ब्र० वै० अ० २।१-२)

अर्थ—एकाकी और असहाय प्रभुने गोलोक और जगत् को जीव रहित, जल रहित, वायु रहित, प्रकाश रहित, अन्धकार से व्याप्त, घोर, भयंकर और शून्यरूप देखकर मन से आलोचना की कि सृष्टि की रचना करूँ। ऐसा विचार करके स्वतन्त्र प्रभुने अपनी इच्छा से सृष्टि रचना प्रारम्भ की।

आविर्बभूवु सर्गादौ, पुंसो दक्षिण पार्श्वतः ।
भवकारणरूपाश्च मूर्तिमन्तस्त्रयो गुणाः ॥ ४ ॥

अर्थ—सर्ग की आदि में प्रभु के दक्षिण पार्श्व से संसार के कारणभूत सत्व, रज और तम ये तीनों गुण साक्षात् मूर्तिमन्त रूप में प्रकट हुए। इनसे महान्, अहंकार और रूप रसादि पाँच तन्मात्राएं प्रकट हुई।

आविर्बभूव तत्पश्चात्, स्वयं नारायणः प्रभुः ।
श्यामो युवा पीतवासा, वनमाली चतुर्भुजः ॥
(ब्र० वै० अ० ३।६)

अर्थ—इसके बाद स्वयं नारायण प्रभु प्रकट हुए जो श्याम वर्ण युवावस्था से युक्त, पीतवस्त्र धारी, वनमाला युक्त और चतुर्भुज थे।

उस नारायण के वाम पार्श्व से गौर वर्ण, मृत्यु को जीतने वाला, पाँच मुख धारण करने वाला शिव प्रकट हुआ। नारायण और शिव दोनों आदि पुरुष-कृष्ण की स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् कृष्णरूप नारायण के नाभि कमल से वृद्धावस्था वाले, हाथ में कमण्डल धारण करने वाले ब्रह्मा प्रकट हुए। वह भी आदि पुरुष कृष्ण की स्तुति करने लगे। इसके बाद भगवान् की छाती में सब कर्मों का साक्षी धर्म प्रकट हुआ। वह भी भगवान् की स्तुति करने लगा।

सरस्वती आदि चार देवियाँ

इसके बाद प्रभु के मुख में वीणा और पुस्तक हाथ में धारण करती हुई सरस्वती प्रकट हुई। वह कृष्ण के समक्ष गाने नाचने लगी।

इसके बाद कृष्ण प्रभु के मन से महालक्ष्मी और बुद्धि से अस्त्र शस्त्र धारण करती हुई मूल प्रकृति प्रकट हुई। दोनों बहुत भक्ति पूर्वक कृष्ण की स्तुति करने लगीं। इसके बाद कृष्ण की जीभ से हाथ में जयमाला धारण करती हुई सावित्री देवी प्रकट हुई और स्तुति करने लगी।

कामदेव की उत्पत्ति

इसके बाद कृष्ण के मन से कामदेव उत्पन्न हुआ। वह मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण और उन्मदन नाम के पाँच बाण धारण किए हुआ था। उसके वाम पार्श्व से रतिनाम की स्त्री उत्पन्न हुई। कामदेव ने ब्रह्मा आदि देवों के ऊपर अपने पाँच बाणों का प्रयोग किया जिससे सब देव कामवश हो गये।

रवि का अनुपम रूप देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया। वार्युयुक्त वस्त्र को जलाने के लिए अग्निदेव प्रकट हुआ। भयंकर ज्वालाओं को बुझाने के लिए कृष्ण ने जल की रचना की। इससे वरुणदेव प्रकट हुआ। अग्निदेव के वाम भाग से स्वाहा नाम की उसकी पत्नी प्रकट हुई। और वरुण के वाम भाग में वरुणानी नाम की उसकी पत्नी प्रकट हुई।

इसके बाद कृष्ण के निःश्वास वायु से वायुदेव और प्राणादि पांच भेद प्रकट हुए। उसके वाम भाग से वायवी नाम की उसकी पत्नी प्रकट हुई।

विराट् विष्णु

कामदेव के बाण प्रयोग से जल में कृष्ण का वीर्य पात हो गया। उस वीर्य पात से विश्व का आधार रूप एक विराट् नामक बालक उत्पन्न हुआ। वह बालक विष्णु के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। कमल के पत्तों के समान वह विष्णु कुमार महासमुद्र में शयन करने लगा। उसके कान में मैल भर गया। उससे मधु और कैटभ नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे जब ब्रह्मा को मारने के लिये उद्यत हुए तब विष्णु ने उन दोनों को अपनी जंघा पर बिठा कर उनके मस्तक काट डाले। और उनकी मेद चर्बी से मेदिनी-पृथिवी बनती है जिस पर सब निवास करते हैं।

कल्पभेद के अनुसार पृथिवी की रचना भिन्न भिन्न प्रकार से होती है। जैसे युग चार होते हैं वैसे ही कल्प तीन होते हैं।

ब्राह्म वाराह पाद्मारच कल्पारच त्रिविधा मुने ! ।

(ब्र० वै० अ० २।१)

अर्थ—हे मुने ! ब्राह्म, वाराह और पाद्म ये तीन प्रकार के कल्प कहे गये हैं।

> ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा,स्रष्टा सृष्टिं चकार स।
> मधुकैटभयोश्चैव, मेदसा चाज्ञया प्रभो॥
> वाराहेता समुद्धृत्य, लुप्ता मग्ना रसातलात्।
> विष्णोर्वाराहरूपस्य, द्वाराचातिप्रयत्नत॥
> पाद्मे विष्णोर्नाभिपद्मे, सृष्टासृष्टिं विनिर्ममे।
> त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तां, नित्यलोकत्रयं विना॥
> (ब्र०वै०ख० ५। १३ १४-१५)

अर्थ—ब्राह्मकल्प में ब्रह्मा विष्णु की आज्ञा से मधु और कैटभ नामक दैत्यों की मेदा—चर्वी से मेदिनी बनाते हैं। वाराह कल्प में विष्णु वराह का रूप धारण करके रसातल में छिपी हुई पृथिवी को अत्यन्त प्रयत्न से निकाल कर पानी की सतह पर ऊपर ले आते हैं। पाद्म कल्प में ब्रह्मा विष्णु के नाभि कमल पर बैठ कर गोलोक, वैकुण्ठलोक और शिवलोक को छोड कर ब्रह्मलोक पर्यन्त त्रिलोकी की रचना करते हैं।

ब्राह्म कल्प चालू है। अर्थात् कृष्ण भगवान् पृथिवी का उद्धार करके शेष कार्य ब्रह्मा को सौंप कर के अनेक कल्पवृक्ष युक्त रत्न आदि की ज्योति से प्रज्वलित गोलोक में रास मन्डल म चले गये। वहाँ अपने वाम पार्श्व से उन्हों ने अत्यन्त रूप-वती राधा नामकी एक कन्या उत्पन्न की। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित बनी हुई राधा रास मण्डल में कृष्ण के आगे आगे दौडने लगी। कुछ समय पश्चात् वह कृष्ण के साथ आसन पर बैठ कर, मन्द हास्य करती हुई, कृष्ण के मुख कमल का देखने

गौतम पुलस्त्य ने मैत्रा वरुण, मनुने शतरूपा में आहुति देव हुति और प्रसूति ये तीन कन्याएँ और प्रियव्रत तथा उत्तान पाद ये दो पुत्र उत्पन्न किये। आहुति का रुचि के साथ, प्रसूति का दक्ष के साथ और देवहुति का कर्दम के साथ विवाह हुआ। कर्दम ने कपिल मुनि को उत्पन्न किया, दक्ष के वीर्य से प्रसूति में साठ कन्याएँ उत्पन्न हुई। इनमें से आठ कन्याओं का विवाह धर्म के साथ, ग्यारह कन्याओं का विवाह रुद्र के साथ, सता नाम की एक कन्या का विवाह शिव के साथ, तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप के साथ और सत्ताईस कन्याओं का विवाह चन्द्रमा के साथ हुआ। अदिति से इन्द्र, बारह आदित्य और उपेन्द्रादिक देवता उत्पन्न हुए। इन्द्र के जयन्त नामक पुत्र हुआ। सूर्य के शनैश्चर और यम ये दो पुत्र तथा कालिन्दी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। उपेन्द्र के वार्य से मंगल ग्रह उत्पन्न हुआ। दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ये दो पुत्र तथा सिंहिका नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। सिंहिका से राहु नाम का पुत्र हुआ। कद्रु से अनन्त, वासुकी, कालिय, धनञ्जय, कर्कोटक आदि नाग उत्पन्न हुए। लक्ष्मी के अंश से मनसादेवी उत्पन्न हुई जिसका विवाह जरत्कारु के साथ हुआ। विनता के अरुण और गरुड़ नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। गाय, बैल भैंस, पाड़े आदि सरमा की संतति हैं। दनु से दानव पैदा हुए। यह काश्यप का वंश बताया गया है। इसी प्रकार चन्द्रादिक का वंश भी बताया गया है किन्तु विस्तार के भय से यहाँ नहीं बताया है।

(ब्र० वै० ब्र० ख० अ० १ ४ २ ६ ७ ८)

गोलोकवासी कृष्ण का सृष्टिक्रम

१ सत्त्व, रज, तम-त्रिगुण
२ महत्तत्त्व
३ अहङ्कार
४ रूपादि तन्मात्रा
५ चतुर्भुज नारायण
६ पंचमुखी शिव
७ वृद्ध ब्रह्मा
८ धर्मराज
९ सरस्वती देवी
१० महालक्ष्मी देवी
११ मूल प्रकृति देवी
१२ सावित्री
१३ कामदेव
१४ रति देवी
१५ अग्नि
१६ वरुणदेव के साथ जल
१७ अग्निपत्नी—स्वाहा
१८ वरुण पत्नी वरुणानी
१९ वायु के प्राणादि पांचभेद
२० वायवी देवी वायुपत्नी
२१ विराट्नामक बालक विष्णु
२२ मधु और कैटभ दैत्य
२३ दैत्यके मेद से मेदिनी पृथिवी

इति सामान्य प्राकृतसृष्टि।

गोलोक में रासमण्डल की सृष्टि का क्रम

१ राधा देवी
२ असंख्य गोपिकाएँ
३ असंख्य गोप
४ गाय, बैल और बछड़े
५ हंस पक्षी
६ अश्व
७ सिंह
८ पांच रथ
९ यक्षगण-कुबेर
१० कुबेर की पत्नी
११ भूत, प्रेत, राक्षस आदि
१२ पार्षद गण
१३ आठ भैरव
१४ त्रिनेत्र शङ्कर
१५ डाकिनी, योगिनी, क्षेत्रपाल
१६ तीन करोड़ देवता

लक्ष्मी और चतुर्भुज दोनों वैकुण्ठ में चले गये। और राधा तथा द्विभुज कृष्ण गोलोक में रह गये। नारायण ने अपनी माया से अनेक पार्षद पैदा किए और लक्ष्मी ने अपने अंग से करोड़ों दासियाँ उत्पन्न कीं। दूसरी तरफ गोलोक वासी कृष्ण ने रोमकूप से असंख्य गोप और राधा ने अपनी रोम राजि से इतनी ही गोपियाँ उत्पन्न कीं। कृष्ण के शरीर से एक दुर्गादेवी प्रकट हुई, इसे विष्णु माया कहते हैं। और इसी को त्रिगुणात्मक मूल प्रकृति भी कहते हैं। यही संसार का बीज रूप है। इसके बैठने के लिए कृष्ण ने एक रत्न सिंहासन तय्यार रक्खा था, उस पर वह बैठ गई। इसी समय ब्रह्मा अपनी धर्म पत्नी के साथ नाभि कमल में से निकल कर वहाँ आकर स्तुति करने लगे। इसी समय कृष्ण ने अपने शरीर के दो भाग किए— वामार्ध भाग महादेव और दक्षिणार्द्ध भाग गोपिका पति।

दूसरी तरफ जल में फेंका हुआ अण्डा ब्रह्मा के जीवन काल पर्यन्त वैसे का वैसा पड़ा रहा और बाद में अपने आप फूट पड़ा। उससे सैंकड़ों सूर्यों की कान्ति से लज्जित करता हुआ एक शिशु बालक निकला। भूख से रुदन करता हुआ वह विराट नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके एक एक रोमकूप में एक एक ब्रह्माण्ड विद्यमान था। इसके बाद कृष्ण ने प्रकट होकर उस बालक को वरदान दिया कि "तुझे कभी भी भूख प्यास न सतायेगी असंख्य ब्रह्माओं के व्यतीत हो जाने पर भी तेरा नाश न होगा, तेरे नाभिकमल से एक ब्रह्मा उत्पन्न होगा जिसके ललाट से ग्यारह रुद्र उत्पन्न होंगे और वे सृष्टि तथा संहार करेंगे।" इतना कह कर कृष्ण स्वर्ग में गया और ब्रह्मा तथा शंकर को प्रेरणा करके वहाँ भेज दिए।

विराट ने अपने क्षुद्र अंश से अन्य युवक शरीर की रचना की। वह युवक विराट् पीत वस्त्र धारण किये हुए जल शय्या पर सोया रहा। उसके नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। वह एक लाख युग तक तो लक्ष्यहीन होकर उसी कमल में भ्रमते रहे किन्तु उसका अन्त न ले सके। तब चिन्तित होकरके कृष्ण के चरणों का ध्यान किया तो जल में सोये हुए पुरुष विष्णुरूप दिखाई दिये। ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की, उन्होंने सृष्टि का उपदेश दिया। उन्होंने उस उपदेश को ग्रहण करके सनकादिक मानस पुत्र उत्पन्न किए। इसके बाद ललाट से रुद्र प्रकट किया, उसने सृष्टि का संहार किया।

(ब्र० वै० प्रकृतिखंडे अ० ३)

गोलोकवासी कृष्ण की दूसरी सृष्टि का क्रम

१ पुरुष
२ स्त्री
३ जल गोलक
४ वायु उसकी पत्नी वामवी प्राणादि पाँच भेद, वरुण
५ वरुणानी वरुणपत्नी
६ सुवर्णमय अण्ड
७ लक्ष्मी और राधा
८ द्विभुज कृष्ण और चतुर्भुज नारायण
९ पार्षद और दासियाँ
१० असंख्य गोप और गोपियाँ
११ दुर्गादेवी मूलप्रकृति
१२ रत्न सिंहासन
१३ ब्रह्मा और सावित्री
१४ महादेव और गोपिकापति
१५ विराट् बालक
१६ युवक विराट्
१७ ब्रह्मा
१८ विष्णुरूप
१९ सनकादिक मानस पुत्र
२० रुद्र

प्रकार त्वचा से ढका हुआ रहता है उसी प्रकार प्रकृति महत्तत्व का आवृत्त कर लेती है। महत्तत्त्व तीन प्रकार का है-सात्त्विक, राजस और तामस। इनमें से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है--वैकारिक, तैजस और तामस, तामस अहंकार ही भूतादि के नाम से प्रसिद्ध है और वह महत्तत्त्व से आवृत्त है। उसके प्रभाव से महत्तत्त्व विकारी बनकर के शब्द तन्मात्रा को उत्पन्न करता है। शब्द तन्मात्रा से आकाश उत्पन्न होता है। तामस अहंकार शब्द तन्मात्र आकाश को घेर लेता है। इस प्रकार स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्श गुण युक्त वायु उत्पन्न होता है। और शब्द तन्मात्र आकाश से आवृत्त होता है। इस प्रकार यथापूर्व एक एक से आवृत्त होते हुए वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न होती है। ऊपर लिखे अनुसार भूततन्मात्र-सर्ग तामस अहंकार से बनता है।

वैकारिक सर्ग

सत्त्वोद्रिक्त सात्त्विक और वैकारिक अहंकार से एक साथ वैकारिक सर्ग प्रवृत्त होता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन ये तैजस इन्द्रियाँ कहलाती हैं और इनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक कहलाते हैं। इसकी सृष्टि सात्त्विक और राजस अहंकार से होती है।

अण्ड सृष्टि

पूर्वोक्त महत् आदि पदार्थ एक दूसरे के साथ मिलकर और ब्रह्माधिष्ठित होकर प्रकृति के अनुग्रह से पानी के बुद्बुदे के ... पानी में एक अण्ड उत्पन्न करते हैं। ब्रह्मा नाम के क्षेत्रज्ञ

उस अण्ड में प्रवेश करके भूतों के योग से अण्ड की वृद्धि करते हैं।

> स वै शरीरी प्रथम , स वै पुरुष उच्यते ।
> आदिकर्त्ता च भूताना, ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥
> (मा० पु० अ० ४२।६४)

अर्थ—वही प्रथम शरीरधारी हुआ, वही आदि पुरुष कहलाता है, भूतों का आदि कर्त्ता भी वही है कि जो ब्रह्मा के नाम से सर्व प्रथम वर्तमान थे।

उससे (ब्रह्मा) चराचर युक्त तीनों लोक व्याप्त हैं। मेरु पर्वत का मूल भी वही है। उस अण्ड के जर से सभी पर्वत बने हैं। उस अण्ड के गर्भ जल से सभी समुद्र बने हैं। सुर, असुर, मनुष्य आदि समस्त जगत् उस अण्ड में रहा हुआ है। द्वीप, सागर, पर्वत और ज्योतिपचक्र युक्त समस्त लोक उस अण्ड में अवस्थित है। वह अण्ड प्रकृति, महत्तत्त्व अहकार आदि सात आवरणों से आवृत्त है। अव्यक्त प्रकृति क्षेत्र है और ब्रह्माजी क्षेत्रज्ञ हैं। इति प्राकृत सर्ग।

सर्ग के नौ प्रकार—

अग्नि पुराण के बीसवें अध्याय म और मार्कण्डेय पुराण के ४४ वें अध्याय में सर्ग के नौ प्रकार बताये गये हैं। उनका सक्षेप से निदर्शन कराना यहाँ अप्रासगिक न होगा।

> प्रथमो महत सर्गो, विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु य ।
> त मात्राणां द्वितीयस्तु, भूत सर्गो हि स स्मृत ॥

वैकारिकस्तृतीयस्तु, सर्गं ऐन्द्रियक स्मृत ।
इत्येष प्राकृत सर्गं, सम्भूता बुद्धिपूर्वक ॥
(मा० पु० अ० ४४।३१।३२)

अर्थ—पहला महत् सर्ग, जिसमें महत्तत्व की उत्पत्ति होती है, दूसरा भूतसर्ग, जिसमें पाँच तन्मात्राएँ और पाँच भूतों की उत्पत्ति होती है। तीसरा वैकारिक सर्ग, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन, इस एकादश गण की उत्पत्ति होती है ये तीनों सर्ग, प्राकृत सर्ग कहलाते हैं। इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

मुख्यसर्गश्च चतुर्थ, मुख्या वै स्थावरा स्मृता ।
तिर्यक्स्रोतास्तु य प्रोक्त स्तैर्यग्यानस्तत स्मृत ॥
तथाध्व स्रोतसो षष्ठो, देव सर्गस्तु स स्मृत ।
ततोऽर्वाक स्रोतसां सर्गं, सप्तम स तु मानुष ॥
अष्टमोऽनुग्रह सर्ग, सात्विकस्तामसश्च य ।
पञ्चते वैकृता सर्गा, प्राकृताश्च त्रय स्मृता ॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव, कौमारो नवमस्तथा ।
ब्रह्मतो नव सर्गास्तु, जगतो मूलहेतव ॥
(मा० पु० अ ४४। ३३ से ३६)

अर्थ—चौथा मुख्य सर्ग, जिसमें स्थावर की उत्पत्ति होती है। पाँचवाँ तिर्यक स्रोत सर्ग जिसमें पशुपक्षी आदि तिर्यञ्चों का उत्पत्ति होता है। छठा ऊर्ध्वस्रोत सर्ग, जिसमें देवों की उत्पत्ति होती है। सातवाँ अवाक् स्रोतसर्ग, जिसमें मनुष्यगण की उत्पत्ति होती है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग जिसमें ऐसे महर्षियों की उत्पत्ति होती है जिनके अनुग्रह से दूसरों का कल्याण होता

है। चौथे से आठवें तक पाँच सर्ग वैकृत कहलाते हैं। नववाँ कौमार सर्ग है, जिसमें प्राकृत और वैकृत दोनों का मिश्रण होता है।

प्रकारान्तर से तीन सर्ग

> नित्यो नैमित्तिक सर्ग स्त्रिधापि कथितो जनै ।
> प्राकृतो दैनदिनीया दा तर प्रलयादनु ।
> जायन्ते यत्रानुदिन, नित्य सगो हि स स्मृत ॥

अर्थ—नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत इस तरह तीन प्रकार भी सर्ग कहा गया है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन, इनमें दिन तो सर्ग है और रात प्रलय है। यह प्रतिदिन होता है इसलिए नित्य सर्ग है। ब्राह्म का एक दिन—यह सृष्टि काल और ब्रह्मा की एक रात्रि-यह प्रलय काल है। इसे नैमित्तिक सर्ग कहते हैं। ब्रह्मा के सौ वर्ष पूरे हो जाने पर जो प्रलय होता है उसे प्राकृत प्रलय कहते हैं और ब्रह्मा के सौ वर्ष पूरे होने पर जो सर्ग होता है वह प्राकृत सर्ग है। इस सर्ग से महाकल्प का भी परिवर्तन होता है। पाद्म कल्प पूर्ण होकर वाराह कल्प, या वाराह कल्प पूर्ण होकर ब्राह्म कल्प का प्रारम्भ होता है। वर्तमान में वाराह कल्प चालू है अर्थात् ऊपर बताया हुआ प्राकृत सर्ग, वाराह कल्प का प्राकृत सर्ग समझना चाहिए।

स्थावररूप मुख्यसर्ग

सत्त्वगुण उद्रिक्त ब्रह्मा जी ने पाद्म कल्प के अन्त में निद्रा से जागृत होकर देखा तो उन्हें यह लोक सर्वथा शून्य दिखाई दिया। ये ब्रह्मा जी अकेले पानी में सोये हुए थे अत

भी कहलाते हैं। उन्होंने पानी के भीतर पृथिवी को देखा। उसे ऊपर लाने के लिये उन्होंने वाराह का रूप धारण किया और नीचे जाकर पृथिवी को ऊपर ले आये। पानी के ऊपर पृथिवी नाव की तरह इधर उधर हिलने लगी उसे सीधी करके उसके ऊपर पर्वतों की रचना कर दी। पूर्व सर्ग में संवर्त्तक अग्नि से जले हुए पर्वत पृथिवी पर चारों ओर बिखर गये थे और समुद्र में डूब गये थे वहाँ का पानी भी वायु से एकत्रित हो गया था, जहां तहां वे पर्वत संलग्न थे वहां-वहां पर वे अचल कर दिये गये। भूमि भाग को सात द्वीपों के अन्दर विभक्त कर दिया। ऊर्ध्व लोक में भूर्भुवादि चार लोक पूर्व के अनुसार बनाये, उसके बाद तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्ध तामिस्र ये पाँच अविद्याएँ उस महात्मा से प्रकट हुई अतः अप्रतिबोधयुक्त सृष्टि पाँच प्रकार से अवस्थित हुई। बाहर और भीतर अप्रकाशरूप पर्वत आदि की मुख्य संज्ञा है अतः इस सर्ग का नाम मुख्य सर्ग है।

तिर्यक्स्रोत आदि सर्ग

मुख्य सर्ग की रचना देखकर ब्रह्मा जी को सन्तोष नहीं हुआ अतः अन्य साधक सर्ग की इच्छा करते ही तिर्यक्स्रोतसर्ग की प्रवृत्ति आरम्भ हो गई—अज्ञान में ज्ञान मानने वाले, अहंकारी उत्पथगामी, अज्ञ, और तमोगुण प्रधान अट्ठाइस प्रकार के पशु-पक्षी आदि उत्पन्न हुए। इस सर्ग से भी ब्रह्मा जी खुश न हुए अतः तीसरा ऊर्ध्वस्रोत सर्ग प्रवृत्त हुआ—बाहर और भीतर आवरण रहित, सत्त्वगुण विशिष्ट, सुख और प्रेम प्रधान ऐसे देव उत्पन्न हुए। इस देव सर्ग से ब्रह्मा जी खुश तो हुए मगर ... अधिक साधन सर्ग उत्पन्न करने की इच्छा हुई। इच्छा

करते ही अर्वाक् स्रोत नाम का मनुष्य सर्ग आरम्भ हुआ। इसमें प्रकाश अधिक और तम थोडा है। रजोगुण की अधिकता होने से इसमें दुःख अधिक है और बार-बार कार्य प्रवृत्ति चलती रहती है। अन्दर और बाहर प्रकाशयुक्त यह साधक मनुष्य सर्ग है।

> पञ्चमोऽनुग्रह सर्गः, स चतुर्धा व्यवस्थितः।
> विपर्ययेण सिद्ध्या च, शान्त्या तुष्ट्या तथैव च॥
> निवृत्त वर्तमान च, तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः।
> भूतादिकानां भूतानां, षष्ठ सर्गः स उच्यते॥
>
> (मा०पु०अ० ४४। २८ २९)

अर्थ—पाचवाँ अनुग्रह सर्ग विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि के भेद से चार प्रकार का है। वह भूतादिक प्राणियों के भूत काल और वर्तमान काल के अर्थ को जानता है। जो परिग्रह-धारी, विभाग करने मे तत्पर, प्रेरणा में निपुण और कुत्सित स्वभाववाले होते हैं वे भूतादिक कहे जाते हैं। उनमें सत्त्वगुण और तमोगुण दोनों का अस्तित्व रहता है।

देवादि विशेष सृष्टि

सृष्टि करने की इच्छा होने पर प्रजापति में तमोगुण का उद्रेक हुआ और जघा में से असुरों की उत्पत्ति हुई। जब उस तमोगुण युक्त शरीर का त्याग किया तब उसमे रात्रि उत्पन्न हुई। सत्त्वगुण वाला शरीर धारण करके सृष्टि की इच्छा करते ही प्रजापति के मुखसे देवता उत्पन्न हुए। उक्त शरीर का जब त्याग किया तब सत्त्वगुणमय दिन उत्पन्न हुआ। इसके बाद सत्त्वगुण मात्रात्मक शरीर धारण करते ही प्रजापति को

भी कहलाते हैं। उन्होंने पानी के भीतर पृ
ऊपर लाने के लिये उन्होंने वाराह का रूप
नीचे जाकर पृथिवी को ऊपर ले आये। पानी
नाव की तरह इधर उधर हिलने लगी उसे
ऊपर पर्वतों की रचना कर दी। पर्व सर्ग में
जले हुए पर्वत पृथिवी पर चारों ओर बिखर ग
में डूब गय थे वहाँ का पानी भी वायु से
जहाँ-जहाँ वे पर्वत सलग्न थे वहीं-वहीं पर थ
भूमि भाग को सात द्वीपों के अन्दर विभक्त कर
लोक में भूर्भुवादि चार लोक पूर्व के अनुसार बन
तम, मोह, महामोह तामिस्र अन्ध तामिस्र ये पाँच
महात्मा से प्रकट हुई अत अप्रतिबाधयुक्त सृष्टि
अवस्थित हुई। बाहर और भीतर अप्रकाशरूप
मुख्य सज्ञा है अत इस सर्ग का नाम मुख्य सर्ग है।

तिर्यक्स्रोत आदि सर्ग

मुख्य सर्ग की रचना देखकर ब्रह्मा जी को स
हुआ अत अन्य साधक सर्ग की इच्छा करते ही तिर
की प्रवृत्ति आरम्भ हो गई—अज्ञान में ज्ञान मानने वा
उत्पथगामी, अज्ञ, और तमोगुण प्रधान अट्ठाइस प्रका
पक्षी आदि उत्पन्न हुए। इस सर्ग से भी ब्रह्मा जी सु
अत तीसरा ऊर्ध्वस्रोत सर्ग प्रवृत्त हुआ—बाहर और
आवरण रहित, सत्त्वगुण विशिष्ट, सुख और प्रेम प्र
देव उत्पन्न हुए। इस देव सर्ग से ब्रह्मा जी खुश तो हु
... भी अधिक साधन सर्ग उत्पन्न करने की इच्छा हुई

अन्योन्य हृच्छयाविष्टा, मैथुनायोपचक्रमु ।
तत प्रभृति कल्पेऽस्मिन्, मिथुनाना हि सम्भव ॥
मासि मास्यार्तव यत्तु न तदासीत्तु योषिताम् ।
तस्मात्तदा न सुषुवु, सेवितैरपि मैथुनै ॥
(मा० पु० अ० ४६।८ ६)

अर्थ—वे मैथुन प्रसन्न चित्त से परस्पर मैथुन कर्म करने में प्रवृत्त हुए तब से इस कल्प में मिथुन जोडे उत्पन्न होने आरम्भ हुए हैं। उस समय स्त्रियों को प्रतिमास ऋतुधर्म नहीं होता था अत मैथुन सेवन करने पर भी सतति का प्रसव नहीं होता था।

आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते, मिथुनान्येव ता सकृत् ।
(मा० पु० अ० ४६।६)

अर्थ—वे स्त्रियाँ केवल आयुष्य के अन्तिम भाग में एक पुत्र और एक पुत्री रूप युगल का प्रसव करती थीं। इन युगलों की सतति परम्परा से पृथिवी पर मनुष्य फैल गये जिससे पृथिवी भरपूर हो गई।

उस समय सरदी गरमी अधिक न थी अत युगल तालाब, नदी और समुद्र के तीर पर या पर्वतों के ऊपर रहते थे और घूमते थे।

तृप्ति स्वाभाविकीं प्राप्ता, विषयेषु महामते ।
न तासा प्रतिघातोऽस्ति, न द्वेषो नापि मत्सर ॥
पर्वतोदधि सेविन्यो, ह्यनिकेतास्तु सर्वश ।
तावै निष्कामचारिण्यो, नित्य मुदितमानसा ॥
(मा० पु० अ० ४६।१४ १५)

अर्थ—उनको विषयों में स्वाभाविक तृप्ति होती है। उनके लिए कोइ किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता। न उनमें द्वेष है और न मत्सर। पर्वत और समुद्र पर विचरण करने वाले वे मकान तो बनाते ही न थे। सदा निष्काम होकर वे प्रसन्न मन से रहते थे। उस समय मूल, फल, फूल ऋतु, वर्ष आदि कुछ भी न था। वह समय अत्यन्त सुखमय था। इच्छा मात्र से स्वाभाविक तृप्ति हो जाती थी। रसोल्लासवती नाम की सिद्धि उपस्थित होकर के उनकी सब अभिलाषाओं को पूरी कर देती थी। वे स्थिर यौवन थे। सक्ल्प के बिना ही उनके मिथुन प्रजा उत्पन्न हो जाती थी। युगल के जन्म और मृत्यु एक साथ होते थे।

> चत्वारि तु सहस्राणि, वर्षाणां मानुषाणि तु।
> आयु प्रमाणा जीवन्ति, न च क्लेशाद्विपत्तय ॥

(मा० पु० अ० ४६।२४)

अर्थ—उन युगलियों के आयुष्य का परिमाण मनुष्यों के चार हजार वर्षों का था। उसमें न कोई क्लेश उपस्थित होता था और न विपत्ति।

काल क्रम से इन ऋद्धियों का तो नाश हो गया और आकाश से रस टपकने लगा, जल और दूध की प्राप्ति हुई, और घर में कल्पवृक्षों की उत्पत्ति हुइ। इन कल्पवृक्षों से ही उनको समस्त भोग प्राप्त होने लगे। त्रेतायुग के आरम्भ में युगलियों की जीवन यात्रा का निर्वाह ऊपर लिखे अनुसार हो रहा था। धीरे धीरे काल का [illegible] में राग उत्पन्न हुआ [illegible]

मासि मास्यार्त्तवोत्पत्त्या, गर्भोत्पत्ति पुन पुन ।
रागोत्पत्त्या ततस्तासा, वृक्षास्ते गृहसस्थिता ॥
प्रयोशुरपरे चास-ऋतु शाखा महारहा ।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते, फलेष्वाभरणानि च ॥
तेष्वेव जायते तेषा, गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिक महावीर्य, पुटके पुटके मधु ॥
(मा० पु० अ० ४६।२६ ३०)

अर्थ—प्रतिमास ऋतुधर्म होने से वार वार गर्भोत्पत्ति होने लगी। युगलियों में ममता और राग बढने लगे अत घर में रहे हुए कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे। चार शाखावाले अन्य वृक्ष उत्पन्न हुए और उनके फलों म वस्त्र और आभरण उत्पन्न होने लगे। उन फलों के प्रत्येक पुट में सुन्दर गन्ध और वर्ण-युक्त मक्खी रहित वलदायक मधु उत्पन्न होने लगा। त्रेता युग के प्रारम्भ में इस मधु का पान करके मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करते थे। काल क्रम से मनुष्य मे अत्यन्त लोभ वृत्ति उत्पन्न हो गई। एक दूसरे के वृक्षों के फल चुराये जाने लगे। इस कृत्य से सब वृक्ष नष्ट हो गये। अनन्तर शीत उष्ण, क्षुधा-तृषा आदि दुःखद्वन्द्व उत्पन्न हुए। उनका निवारण करने के लिये ग्राम-नगर आदि की रचना हुई।

पुर च खेटक चैव, तद्वद् द्रोणीमुख द्विज ?
शाखा नगरक चापि, तथा खर्वटक द्रमी ॥
ग्राम सघोप विन्यास, तेषु चावसथान् पृथक् ।
(मा० पु० अ० ४६ । ४२ ४३)

अर्थ—नगर, खेटक (खेडा) द्रोणीमुख, शाखानगर खर्वटक, ग्राम, सघोप इत्यादि प्रकार की वस्तियों में रहने के

लिये अलग-अलग घर निवास स्थान बसाने की व्यवस्था हुई।

मरुभूमि, पर्वत गुफा इत्यादि स्थानों पर दुर्ग—किलों का निर्माण किया गया और वृक्ष, पर्वत तथा जल के दुर्ग दुर्गम्य स्थानों में वे रहने लगे।

सोत्सेध वप्रकार च, सर्वत परिखावृतम् ॥
योजनार्द्धार्द्ध विष्कम्भ मष्टभागायत पुरम्।
प्रागुदक् प्रवणं शस्त, शुद्ध वंश बहिर्गमम् ॥
तदर्द्धेन तथा खेट, तत्पादेन च खर्वटम्।
न्यून द्रोणी मुख तस्मा दष्ट भागेन चोच्यते ॥
प्राकार परिखाहीन, पुर खर्वटमुच्यते।
शाखा नगरकं चान्य मन्त्रिसाम न्तभुक्तिमत् ॥
तथा शूद्रजनप्राया, स्वसमृद्धकृषीवला।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये, वसतिर्ग्राम संज्ञिता ॥
अ यस्मा नगरादेर्या, कार्यमुद्दिश्य मानवे।
क्रियते वसति सा वै, विज्ञेया वसतिर्नरै ॥
दुष्टप्रायो विनाक्षेत्रै, परभूमिचरो बली।
ग्राम एव द्रमी सन्नो, राज वल्लभ संश्रय ॥
शकटारूढ भाण्डैश्च, गोपालै विपर्णं विना।
गोसमूहैस्तथाघोषो, यत्रेच्छाभूमिकेतन ॥
(मा० पु० अ० ४६। ४३ से ५०)

जल-वर्षा।

कल्पवृक्ष से फल प्राप्ति का समय व्यतीत होने पर भी इतनी सिद्धि रह गई कि उनकी इच्छा के अनुसार ... लगा। वर्षा का पानी निम्न ... में ... हो गया।

औषधियाँ ।

ततो भूमेश्च सयोगा—दोषध्यस्तास्तदाऽभवन् ।
अफालकृष्टाश्चानुप्ता, ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥
(मा० पु० अ० ४६ । ४६)

अर्थ—इसके बाद भूमि और जल के सयोग से मिट्टी का दोष दूर हो जाने से बिना हल से खेडे और बोये ही ग्राम और आरण्य जगली चौदह प्रकार के वृक्ष, गुल्म और औषधियाँ उत्पन्न हो गई । वे सब ऋतुओं में पुष्प और फल उत्पन्न करने लगे। कालान्तर में राग और लोभ बढने से वे एक दूसरे की वस्तुएं चुराने लगे जिससे पृथिवी ने औषधियों का ग्रास कर लिया अर्थात् औषधियाँ उत्पन्न होनी बद हो गई ।

खाद्य वस्तु का अभाव हो जाने से भूख से व्याकुल होकर के युगलि ये ब्रह्माजी की शरण मे गये। ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछडा बनाया और पृथिवी का दोहन किया तब समस्त धान्यों के बीज उत्पन्न हुए। उसी प्रकार ग्राम और वन के वृक्ष उत्पन्न हुए। पकने के बाद सूखनेवाली औषधियाँ भी उत्पन्न हो गई । इसके बाद ब्रह्माजी ने कर्मसे सिद्ध होनेवाली हस्तसिद्धि उत्पन्न की तर से कृष्टपच्या (जोतने और बोने से उत्पन्न होनेवाली) औषधियाँ पैदा हुई । इसी समय ब्रह्माजी ने वर्ण व्यवस्था आश्रम धर्म और कर्म व्यवस्था की योजना की। और ब्राह्मण आदि वर्णों का स्थान निश्चित किया ।

प्राजापत्य ब्राह्मणाना, स्मृत स्थान क्रियावताम्।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणा, सग्रामेष्वपलायिनाम् ॥

१३ देवसामान्य
१४ मनुष्य सामान्य
१५ भूतादिक अनुग्रह सर्ग
१६ असुर और रात्रि
१७ देवता और दिन
१८ पितर और सन्ध्या
१९ मनुष्य और ज्योत्स्ना
२० राक्षस
२१ यक्ष
२२ सर्प अहि
२३ भूत
२४ गन्धर्व
२५ बकरे, भेड
२६ गायें
२७ हाथी, घोड़े, गधे, खरगोश, मृग, ऊँट और खच्चर।
२८ औषधियाँ
२९ श्वापद, द्विखुर, वानर, पक्षी, जलचर, सरीसृप।

३० गायत्री, त्रिष्टुक्, त्रिवृत्, साम, रथन्तर, अग्निष्टोम।
३१ यजुर्वेद इत्यादि
३२ सामवेद इत्यादि
३३ अथर्ववेद
३४ मिथुन युगल सृष्टि
३५ रसोल्लासवती सिद्धि
३६ कल्पवृक्ष, मधु
३७ ग्राम, नगर, द्रोणीमुख, खेटक इत्यादि
३८ वर्षा
३९ औषधि वृक्ष
४० अनाज, गेहूँ, चाँवल आदि
४१ प्राजापत्य इत्यादि स्थान
४२ भृगुआदि ऋषि
४३ स्वायम्भुव मनु और शतरूपा
४४ उत्तानपाद आदि सन्तान परम्परा इति

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार प्रलय

मनुष्यों के एक वर्ष से देवताओं का एक अहोरात्र होता

पूछा। तब शिव ने कहा कि तुम्हारा नाम विष्णु है, सृष्टि के लिए तप करो। विष्णु ने देवताओं के बारह हजार वर्ष तक कठिन तपस्या की किन्तु उसका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। थकावट से विष्णु के अंगों से शिव शक्ति द्वारा पसीने के रूप में जल की विपुल धाराएँ निकला। इसी समय विष्णु ने चौबीस तत्त्व बनाये। इन २४ तत्त्वों को साथ लेकर के विष्णु सो गये। इस अर्से में सदाशिव ने अपनी माया से ब्रह्मा को बना कर कमल से प्रकट किया। थोड़े समय पश्चात् जब विष्णु जागे और ब्रह्मा को देखा तो परस्पर विवाद उत्पन्न हो गया, जिसका वर्णन शिव पुराण के विद्येश्वर संहिता के छट्टे अध्याय में नीचे लिखे अनुसार किया गया है—

युयुधातेऽमरौ वीरौ, हंसपक्षीन्द्रवाहनौ।
वैरच्या वैष्णवाश्चैव, मिथो युयुधिरे तदा॥
तावद्विमानगतयः, सर्वा वै देवजातयः।
दिदृक्षवः समाजग्मुः, समरं तं महाद्भुतम्॥
क्षिपन्तः पुष्पवर्षाणि, पश्यन्तः स्वैरमम्बरे।
सुपर्णवाहनस्तत्र, क्रुद्धो वै ब्रह्मवक्षसि॥
मुमोच बाणानसह्यानस्त्राणि विविधानि बहून्।
मुमोचाथ विधिः क्रुद्धो विष्णोरुरसि दुःसहान्॥
बाणाननलसंकाशानस्त्राणि बहुशस्तदा।
तदाश्चर्यमिति प्रोचुः, तयोः समरगोचरम्॥

ततो विष्णुः सुसंक्रुद्धः, श्वसन् व्यसनकर्शितः॥
माहेश्वरास्त्रं मतिमान्, सदधे ब्रह्मणोपरि।

का आयुष्य है। उसकी पर संज्ञा है। पचास वर्षों की परार्द्ध संज्ञा है। एक परार्द्ध से एक महाकल्प होता है। अर्थात् ब्रह्मा के पचास वर्ष में ब्राह्मनाम का महाकल्प व्यतीत हो गया है। इस समय वाराह नाम का दूसरा महाकल्प चलता है। उसके पूर्ण हो जाने पर चालू ब्रह्मा का जीवन पूर्ण हो जायगा। उसके बाद माहाकल्प आयगा उसमें नये ब्रह्माजी होंगे। एक ब्रह्मा के जीवनकाल में छत्तीस हजार बार नैमित्तिक सृष्टि प्रलय होते हैं। वर्तमान ब्रह्माजी का जो अन्तिम प्रलय होगा वह प्राकृत प्रलय कहलाता है। इसमें तीनों लोक जलाकार हो जायेंगे। अर्थात् महर्लोक भी नष्ट हो जायगा। जगत् प्रकृति में लीन हो जायगा और प्रकृति ब्रह्मा में लीन हो जायगी। यह प्राकृत प्रलय है।

(मा० पु० अ० ४३।२३ से ४४ तक)

शिवपुराण की शिवसृष्टि

प्रलयकाल में नामरूप रहित ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ न था। ब्रह्म ने अपनी इच्छा मात्र से पाँच मुखवाला, दस भुजा वाला, हाथ में त्रिशूल धारण किया हुआ एक शरीर धारण किया जो सदाशिव के नाम से प्रसिद्ध हुआ—यही ईश्वर है। इसने एक शक्ति बनाई, जिसको प्रकृति तथा माया भी कहते हैं। बाद में यह अम्बिका के नाम से प्रसिद्ध हुई। शक्ति की सहायता से शिव ने शिवलोक बनाया जिसे काशीपुरी भी कहते हैं। उसके आनन्द वन में शिवने शक्ति के स्वसव अंग में अमृत का सिंचन किया। जिससे एक सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ। उस ने शिव को नमस्कार करके अपना नाम तथा कर्म

७ विष्णु	८ ब्रह्मा विष्णु युद्ध
९ अग्नि स्तम्भ लिङ्ग	१० ओंकार शब्द ब्रह्म
११ अंड	१२ विराट् सचैतन्य
१३ प्रकृति—नारायणी	१४ महत्तत्त्व
१५ अहंकार	१६ आकाशादि महाभूत
१७ कमल	१८ सनकादि मुनि और ऋषि
१९ रुद्र	२० भृगु आदि सात ऋषि
२१ नारद, कर्दम, दक्ष आदि दस पुत्र	२२ उनकी सन्तानें

देवी भागवत की प्रकृति देवी की सृष्टि

प्रलयकाल के अन्त में विष्णु की नाभि से निकले हुए ब्रह्मा जी अपनी उत्पत्ति कहाँ से हुई उसका मूल ढूँढने के लिए एक हजार वर्ष तक घूमते रहे किन्तु पता न लगा। आकाश वाणी हुई कि 'तप करो' पद्म पर बैठ कर एक हजार वर्ष तप किया। पीछे आकाश वाणी हुई कि 'सर्जन करो'। किसमें से सर्जन करूं ? ब्रह्मा जी को कुछ सूझा नहीं। मधुकैटभ नाम के दो दैत्य मिले, उनके भय से कमल की नाल में घुसकर ब्रह्मा जी छिप गये। अन्दर चतुर्भुज विष्णु शेष शय्या पर सोये हुए दिखाई दिये। उनको स्तुति करके जगाया। वे ऊपर आये। मधुकैटभ के साथ पाँच हजार वर्ष पर्यन्त युद्ध किया। दैत्य हटे नहीं। विष्णु ने प्रसन्न होकर वरदान मांगने के लिए कहा। अभिमानी दैत्य ने कहा हम तो पूर्ण कामना वाले हैं तुम ही वरदान मांगो विष्णु ने कहा तुम्हारा मस्तक देदो। उन्होंने

अण्डरूप में परिणत हो गया। वह अण्ड विराट् रूप हो गया। बाद में ब्रह्माजी ने तप किया, तप से प्रसन्न होकर वे विष्णु जी ने वर मांगने के लिये कहा। ब्रह्मा जी ने कहा कि अण्डजन्य विराट् जड़ है अतः आप इसे चैतन्य युक्त करदो। तब विष्णु ने हजार मस्तक, हजार भुजाएं, हजार नेत्र और हजारों चरणों से युक्त होकर के भूमि को चारों ओर से स्पर्श करके इस अण्ड को व्याप्त कर लिया। उसमें चैतन्य आ गया। पाताल से लेकर सत्यलोक तक उसकी अवधि हुई। बाद में ब्रह्मा ने सनकादिक पुत्र उत्पन्न किए और इसके बाद ऋषि पैदा किए किन्तु दोनों विरक्त होकर आगे की सृष्टि बनाने से इन्कार करने लगे। इसके दुःख से ब्रह्मा जी रो पड़े। रुदन करते हुए ब्रह्मा जी के शरीर से ११ रुद्र उत्पन्न हुए। ब्रह्मा को सान्त्वना देकर वे कैलास में चले गये। पश्चात् ब्रह्मा जी ने भृगु आदि सात ऋषि बनाये। इसके बाद उत्संग से नारद, छाया से कर्दम, अंगुष्ठ से दक्ष इस प्रकार दस पुत्र उत्पन्न किये। बाद में इनकी सन्तानों और सन्तानों से पृथिवी भर गई।

(शि० पु० ज्ञानसंहिता अ० २ से ६ तक)

सृष्टिक्रम

१ ब्रह्मा—नारायण

२ पसीना—जलधारा

३ सत्वादि तीन गुण

४ पाचतन्मात्राए

५ पाँच ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन

६ हिरण्यगर्भ ब्रह्मा

सब की अपेक्षा इसकी शक्ति बढकर है। ब्रह्म आदि सब की यह माता है। तीनों देवों के साथ विमान में उतर कर ज्यों ही प्रकृति देवी के द्वार में प्रविष्ट हुए कि उन्हें स्त्रीरूप बना दिया। प्रकृति देवी को नमस्कार कर के सामने खडे रहे। उस देवी के पाद पद्म के एक नख में स्थावर जंगमात्मक निखिल ब्रह्माण्ड उनको दिखाई देने लगा। कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा, मधुकैटभ के पास शेष शय्या पर सोये हुए विष्णु, आदि सब वस्तु उस दर्पण में दिखाई देने लगी। स्त्री रूप बने हुए ब्रह्मा,,विष्णु महेश आदि बडे चक्कर म पड गये। यह अद्भुत लीला देखते देखते वहाँ सौ वर्ष व्यतीत हो गये। इसके बाद विष्णु ने देवी की स्तुति की,उनकी स्तुति पूरी होने पर शकर ने स्तुति की, स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने शकर को नवाक्षर मत्र दिया। उसका जाप शकर ने वहीं शुरू कर दिया। इसके बाद ब्रह्मा ने स्तुति की तब देवी ने कहा कि उस परम पुरुष से मेरा अभेदभाव है। मुझ में और उसम किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। जो मैं हूँ वही पुरुष है और जो पुरुष है वही मैं हूँ। केवल बुद्धिभ्रम से मनुष्य हम में भेद देखते हैं। इस प्रकार भेदाभेद का वर्णन करती हुई और सृष्टि की शिक्षा देती हुई प्रकृति देवी आत्म प्रशसा करती है। हे विधे! ससार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जो मुझ से सयुक्त न हो। मैं ही सर्वरूपा हूँ। प्रत्येक उत्पन्न कार्य में प्रत्येक पदार्थ में शक्ति रूप से मैं अवस्थान कर रही हूँ। अग्नि में उष्णता, जल मे शीतलता, सूर्य में ज्योति, चन्द्र में प्रकाश, ये सब मेरे प्रभाव को प्रकट करने वाले केन्द्र हैं। जिन पदार्थों को मैं छोड दूँ वे हिलने चलने में भी समर्थ नहीं रह सकते। मेरे प्रभाव से ही शकर दैत्यों का सहार करता है। मैं

कहा हम जल में नहीं मर सकते। जल से बाहर बाहर विष्णु ने अपनी जंघा फैला दी। उस पर बैठकर दैत्यों ने अपना सिर काटकर दे दिया। इसके बाद ब्रह्मा और विष्णु के पास रुद्र आ पहुँचे। तीनों मिलकर स्तुति करने लगे। इतने में आकाश वाणी हुई कि तुम तीनों सृष्टि स्थिति और लय के कार्य में लग जाओ। इतना कहती हुई एक देवी प्रकट हुई। तीनों ने देवी से कहा कि यहाँ तो जल के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है हम कहाँ बैठे और किस प्रकार अपना कार्य करें? देवी हँस पड़ी। इतने में आकाश से एक विमान उतरा। देवी ने कहा तुम तीनों जन इस विमान में बैठ जाओ मैं एक आश्चर्यकारी चीज बताऊँगी। देवी के साथ तीनों बैठ गये और विमान आकाश में उड़ गया। विमान उनको ऐसे स्थान पर ले गया जहाँ जल के बजाय विस्तीर्ण पृथिवी और बाग-बगीचे थे। विमान अभी और आगे चला स्वर्गलोक आया। वहाँ इन्द्र, कामधेनु, नन्दनवन वगैरह देखा। उससे आगे ब्रह्मलोक आया, चतुर्मुख सनातन ब्रह्मा को देखा। वहाँ से भी आगे चले तो शिवलोक (कैलास लोक) दिखाई दिया। वहाँ पंचमुखी महादेव को देखा। वहाँ से आगे विष्णुलोक वैकुण्ठ में लक्ष्मी जी युक्त सनातन विष्णु को देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए। वहाँ से आगे बढ़ते हुए महाद्वीप में पहुँचे। वन उपवन से सुशोभित उस द्वीप में एक पलंग पर बैठी हुई दिव्यांगनाएं दिखाई दीं। उनको चारों ओर से दस कन्याएं घेर कर बैठी हुई थीं। ब्रह्माने पूछा कि "यह स्त्री कौन है?" ज्ञान बल से जानकर विष्णु ने जवाब दिया कि यही सब का मूल कारणभूत प्रकृति देवी है। यही प्रकृति नित्य ब्रह्म और अनित्य माया रूप में रहनेवाली इच्छाशक्ति है। क्या तो देवता और क्या देवियाँ

में तुम्हें अर्पित करती हूँ उसे लेकर के तुम वैकुण्ठ पुरी बनाकर उसमें निवास करो। इसके बाद शकर के साथ बातचीत चली--हे शकर! इस जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिसमें तीन गुण विद्यमान न हों। केवल परमात्मा निर्गुण है किन्तु वह दृष्टिगोचर नहीं है। मैं परा प्रकृति हूँ। कभी सगुण और कभी निर्गुण बना करती हूँ। मैं निरन्तर कारण रूपिणी हूँ। कभी भा काय रूपिणी नहीं होती हूँ। सर्गकाल में सगुण बन जाती हूँ और प्रलयकाल में जब परमात्मा में लीन होती हूँ तब निर्गुण बन जाती हूँ। महत्तत्त्व अहकार और शब्दादि गुण समुदाय कार्य कारण रूप से रात दिन जगत् का व्यापार किया करते हैं। अपचीकृत तन्मात्रा से पचीकृत महाभूत उत्पन्न होता है। और उससे समस्त प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है। पच तन्मात्रा के सात्त्विक अश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, रज अश से पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पचभूतों के सम्मिलित सात्त्विक अश से मन उत्पन्न होता है। आदि पुरुष परमात्मा है। वह जैसे कार्य नहीं है वैसे कारण भी नहीं है। बस, अब तुम मेरा कार्य सिद्ध करने के लिए अपने स्थान पर चले जाओ।

ज्योंही वे विमान में बैठे और कुछ आगे गये कि तुरन्त ही पुरुष रूप में परिणत हो गय। थोडी देर में जहाँ से आये थे वहीं पहुँच गये। वहाँ जाकर ब्रह्मा ने महत्तत्त्व, त्रिगुण अहकार आदि क्रम से सृष्टि रचना की। उसमे कोई नवीनता नहीं है। केवल मेदिनी पृथ्वी मधुकैटभ दैत्य की मेद स बनाई गई। शेष वर्णन स्वायभुव मनु और शतरूपा तक का पूर्ववत् है।

(दे० भा० पु० स्कन्ध ३ अ० २ से ८ तक)

चाहूँ तो आज ही समस्त जल को शोषित कर के समस्त पवन को रोक सकती हूँ। मैं जो चाहूँ वह कर सकती हूँ। शायद तुम यों कहो कि यदि आप सवरूपा और नित्य हो तो जगत् भी नित्य सिद्ध होगा, उसको आपने उत्पन्न कैसे किया ? एसी आशका करना ठीक नहीं है, क्योंकि असत् पदार्थ की उत्पत्ति तीनों काल में कभी भी नहीं हो सकती। क्या कभी किसी ने वन्ध्या पुत्र और आकाश पुष्प की उत्पत्ति देखी है ? कभी नहीं। सत् की ही उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति और प्रलय का अर्थ आविर्भाव तिरोभाव मात्र है। जगत सत् और नित्य है किन्तु कभी उसका आविर्भाव होता है और कभी तिरोभाव होता है। प्रलयकाल में मुझ में ही जगत् का तिरोभाव होता है और सृष्टि काल में मुझ में से ही आविर्भाव होता है। सब पदार्थों में प्रथम अहङ्कार उत्पन्न होता है। इसके बाद महदादिरूप से वे सात प्रकार के होते हैं। हे ब्रह्मन् ! रजोगुणमयी यह सरस्वती देवी तुम्हें अर्पण करती हूँ यह तुम्हारी सहचरी होगी। इसको साथ लेकर तुम बिना विलम्ब सत्यलोक मे चले जाओ। महत्तत्त्व रूपी बीज से चतुर्विध जावों की सृष्टि करो। लिंग शरीर, जीव और कर्म समूह जो सम्मिलित हो गये हैं उनको पहले के समान पृथक् पृथक् करो। चराचर सकल जगत् का शब्दादिगुण द्वारा काल, कर्म और स्वभाव इन तीनों कारणों के साथ पूर्ववत् संयुक्त करो। सारांश यह है कि जिसका जो गुण हो तथा प्रारब्ध कर्म के फल भोग का जो समय प्राप्त हो तथा जिसका जो स्वाभाविक गुण हो, उसी काल में उस गुण और उस कर्म के अनुसार उसे फल अर्पण करो। ब्रह्मा के साथ इतनी बात करके विष्णु से कहा कि हे विष्णो ! सत्त्व गुणमयी महालक्ष्मी

साम्ब पुराण की सूर्य सृष्टि

सर्गकाले जगत्कृत्स्न—मादित्यात्सम्प्रसूयते ।
प्रलये च तमभ्येति, आदित्य दीप्ततेजसम् ॥
(साम्ब पु० अ० २ । १३)

अर्थ—सृष्टि काल में यह समस्त जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है और प्रलय काल में प्रदीप्त तेजयुक्त उसी सूर्य में लय हो जाता है ।

अनादो लोकनाथ स, विश्वमाली जगत्पति- ।
भिन्नत्वेऽवस्थितो देव-स्तपस्तेपे नराधिप ! ॥
तत स च सहस्रांशु-रव्यक्त पुरुष स्वयम् ।
कृत्वा द्वादशधात्मान-मदित्यामुदपद्यत ॥
(साम्ब पु० अ० ४ । ३-)

अर्थ—हे नराधिप ! आदि अन्त रहित लोकनाथ, जगत्पति सूर्य देवने भिन्न भिन्न रूप में रहकर तपस्या की और तत्पश्चात् अव्यक्त पुरुष रूप हजार रश्मिवाले उस सूर्य ने अपने बारह हिस्से करके अदिति (कश्यप की पत्नि) में जन्म ग्रहण किया।

सूर्य की बारह मूर्तियाँ

तस्य या प्रथमा मूर्ति-रादित्यस्ये्न्द्रसञ्ज्ञिता ।
स्थिता सा देवराज्ये, देवानामनुशासनी ॥
(साम्ब पु० अ० ४ । ८)

साराश–स्पष्टीकरण

इस सृष्टि का वर्णन प्राय आलकारिक है । परमात्मा और उसकी शक्ति दोनों का वास्तविक अभेद दिखाया गया है। औपाधिक भेद बताया गया है । सपूर्ण शक्ति को प्रकृतिदेवी का रूपक दिया हुआ है । साख्यों की प्रकृति और वेदान्तियों की माया इन दोनों का परमात्माकी शक्ति में समावेश कर दिया गया है । प्रकृतिदेवी की शिक्षा और प्रसाद प्राप्त किये बिना ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव अकिञ्चित्कर हैं । प्रकृति देवी क पास ये तीनों बालक क समान हैं । ब्रह्मा स्वय अपन मुखस कहता है कि जब मैं बालक होकर अपना अंगूठा चूस रहा था तब यह प्रकृति देवी माता मुझे झुलावनहारी थी। प्रारम्भ म ब्रह्मा, विष्णु दोनों चक्कर म पड जाते हैं—कहा बैठना और किस प्रकार सृष्टि रचना करनी चाहिए इसकी सूझ नहीं पड़ती है, तब एक देवी उनको विमान म बिठाकर प्रकृति देवी की शरण म ले जाती है । सनातन ब्रह्मा और सनातन विष्णु के ब्रह्मलोक में और वैकुण्ठ लोक में दर्शन करक नकली ब्रह्मा और नकली विष्णु आश्चर्य करते हैं । प्रकृति देवी क निवास स्थान मणिद्वीप की महिमा तो सब लोकों की अपेक्षा श्रेष्ठ बताई गई है । प्रकृति के तीन गुण रज, सत्त्व और तम की शक्तियों की सरस्वती, लक्ष्मी और अम्बादेवी रूप स कल्पना करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अर्पित की गई हैं । अन्य प्रकार से कहें तो रजो गुण का ब्रह्मा को, सतोगुण का विष्णु को और तमोगुण का महेश को रूपक दिया गया है । इस प्रकार यदि आलकारिक पद्धति को छोड दिया जाय तो प्रकृति और सत्वादि तीनों गुणों की ही सृष्टि रह जाती है ।

सुज्ञेषु किं बहुना ?

(११) वरुण नाम की ग्यारहवीं मूर्ति जल में प्रतिष्ठित होकर सब को जीवन दान करती है।

(१२) मित्र नाम की बारहवीं मूर्ति जन कल्याण के लिए चन्द्र भागा नदी के किनारे तप कर रही है।

(साम्बपु० अ० ४। ६ से २०तक)

विष्णु की अपेक्षा सूर्य के अधिक प्रभाव पर साम्ब की कथा—

एकबार नारद मुनि द्वारका नगरी में आये। सब ने उनका स्वागत किया किन्तु कृष्ण महाराज के पुत्र साम्बकुमार ने सत्कार नहीं किया। इतना ही नहीं किन्तु उनका अनादर किया। दो चार बार ऐसा वाक़या बना जिससे नारदमुनि गुस्से हो गये। कृष्णजी को भरमा दिया कि साम्बकुमार सुन्दरता है किन्तु इस पर तुम्हारी सोलह हजार रानियाँ मोहित हो रही हैं। यह सुनकर कृष्णजी को मन में शका हो गई किन्तु ऊपर से कह दिया कि ऐसा नहीं हो सकता। नारद ने कहा अच्छी बात है समय पर बताऊगा इतना कह कर चले गये।

कुछ काल बाद नारदजी पुन द्वारका में आये। उस समय कृष्णजी अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा करने के लिए रैवतक नामक बगीचे म गये हुए थे। स्त्रिया मदिरा के नशे में चकचूर बनी हुई थीं। वस्त्र आगे पीछे हो गये थे, निर्लज्ज बनी बैठी था। नारदजी वहाँ आपहुँचे। यह परिस्थिति देखकर अपनी बात को सिद्ध करने के लिए सुन्दर अवसर जानकर साम्बकुमार को जगाकर वहाँ ले आये। उसको देखकर नशे में भान भूली हुई

अर्थ—(१) उस सूर्य की प्रथम मूर्ति का नाम इन्द्र है। वह देवराज रूपसे देवताओं का अनुशासन कर रही है।

(२) सूर्य की दूसरी मूर्ति का नाम प्रजापति है। वह मूर्ति नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने में तत्पर हो रही है।

(३) सूर्य की तीसरी मूर्ति पर्जन्य नामसे प्रसिद्ध है। वह मेघ मडल में निवास करती हुई पानी बरसाती रहती है।

(४) सूर्य की चौथी मूर्ति का नाम पूषा है। वह अन्न में स्थित रहकर प्रजा को पुष्ट करती है।

(५) सूर्य की पाँचवीं मूर्ति त्वष्टा नाम से प्रसिद्ध है। वह वनस्पति और औषधियों में रह कर रोगादिकों का निवारण करती है।

(६) छठी मूर्ति का नाम अर्यमा है। वह वायु का सचार करने क लिये शरीर में रहकर जीवन निर्वाह करती है।

(७) सातवीं मूर्ति का नाम भग है। वह भूमि और शरीर में रहती है।

(८) आठवीं मूर्ति विवस्वान् नाम की है। वह अग्नि में रहकर अन्न पाचन करती है।

(९) नवमीं मूर्ति विष्णु नाम से प्रसिद्ध है। वह देवताओं का पालन और राक्षसो का सहार करने के लिए अनेक अव तार धारण करती है।

(१०) अशुमान् नाम की दसवीं मूर्ति वायु में प्रतिष्ठित होकर प्रजा को आह्लादित करती है।

अन्यन्येव अप्रत्यक्ष हैं किन्तु सूर्य प्रत्यक्ष देव है। कहा है कि-

शब्दमात्र श्रुतिमुखा, ब्रह्मविष्णु शिवादय ।
प्रत्यक्षोय परो देव , सूर्य स्तिमिर नाशन ॥
(सां० पु० अ० २ । ११)

अर्थ--ब्रह्मा विष्णु, महादेव आदि देव शब्दमात्र या श्रुतिप्रतिपाद्य हैं किन्तु अन्धकार का नाश करनेवाला सूर्य प्रत्यक्ष परम देव है। इति।

कूर्म पुराण की सृष्टि में ब्रह्मोत्पत्ति

अतीत प्रलय में अन्धकार पूर्ण जल ही जल था। उसमें नारायण प्रभु शेषनाग की शय्या पर सोये हुए थे। उनकी नाभि से सौ योजन विस्तृत एक महान् कमल प्रकट हुआ। बहुत काल व्यतीत होने पर घूमते घूमते ब्रह्माजी वहाँ आपहुँचे। और सोये हुए विष्णु को हाथ से जगाकर पूछने लगे कि इस एकार्णव में अकेले निर्भय होकर सोनेवाले तुम कौन हो ? विष्णु ने उत्तर दिया कि समस्त देवों को उत्पन्न करनेवाला सचराचर जगत् का स्वामी मैं विष्णु हूँ। यह सारा जगत् मुझमें विद्यमान है। मेरे मुख में प्रवेश करके यह देखा जा सकता है। भला यह तो बताओ कि तुम कौन हो और निर्भय होकर कहाँ भ्रमण कर रहे हो ? ब्रह्मा जी ने कहा कि मैं ब्रह्मा हूँ। सारा विश्व मुझ में वर्तमान है। उसको तुम मेरे शरीर में प्रवेश करके देख सकते हो। यह सुनकर विष्णु ने योग के द्वारा ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश किया, वहाँ चराचर विश्व को देखकर आश्चर्यान्वित होकर मुख के रास्ते पीछा बाहर निकल आया। ब्रह्मा को विष्णु जी ने

वे कामवासना से विह्वल हो गई । दूसरी तरफ नारद जी न कृष्ण को लाकर यह दृश्य दिखाया। इससे कृष्ण को मन में स्त्रियों और साम्ब के दुराचार के विषय में निश्चय हो गया और क्रोधित होकर दोनों को शाप दिया। स्त्रियों को शाप दिया कि तुम पतिव्रता धर्म से भ्रष्ट होकर डाकुओं के अधीन रहोगी और साम्ब को शाप दिया कि तू कोढी बन जायगा। साम्ब शीघ्र कोढी बन गया।

> ततः शापाभिभूतेन साम्बेनाराध्य भास्करम्।
> पुनः सम्प्राप्य तद्रूप, स्वनाम्नाऽर्को निवेशितः ॥
> (साम्ब पु० अ० ३। ११)

अर्थ—शाप से तिरस्कृत साम्बकुमार ने सूर्य का उपासना की जिससे कोढ मिट गई और पूर्व जैसा रूप प्राप्त हो गया। सूर्य के प्रभाव से प्रभावित होकर साम्ब ने अपने नाम से सूर्य की स्थापना की।

(साम्ब पु० अ० १)

कथा का साराश

ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर इन सब की अपेक्षा सूर्य बडा देव है। विष्णु आदि सब सूर्य की मूर्ति रूप हैं। विष्णु और उसके जनाने की जल क्रीड़ा, मदिरापान, घर का घर में व्यभिचार, स्त्रियों तथा पुत्र को शाप देना ये सब बातें ईश्वरत्व को हानि पहुँचानवाली हैं। नारद मुनि ने कृष्ण को भरमा दिया और कृष्ण ने असत्य बात को सत्य मान लिया यह कृष्ण की अल्पज्ञता सिद्ध करती हैं जो सर्वज्ञ होता है वह इस प्रकार नहीं ठगा जा सकता।

वराह पुराण की ओंकार सृष्टि

सृष्टि के आरभ में नारायणके सिवाय अन्य कोई नहीं था। नारायण को अनेक होने की इच्छा होने पर ओंकार शब्द उत्पन्न हुआ। उसके पाच भाग थे। अ, उ, मकार, नाद और बिंदु। इन पाचों भागों म क्रमश भूलोक, भुवर्लोक स्वर्लोक, जनलोक और तपलोक उत्पन्न हुए। इन लाकों का वसति के विना शून्य रूप देखकर सोलह स्वर और ३५ व्यजन उत्पन्न किए। सृष्टि की वृद्धि कैसे हो ? इसका विचार करते हुए नारायण की दाहनी आँख मे तेज निकला, उसका सूर्य बन गया। बाँई आँख से तेज निकला वह चन्द्रमा बन गया। नारायण के प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। इसके बाद नारायण के मुख से ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, उरु प्रदेश से वैश्य, और पैरसे शूद्र उत्पन्न हुए। इन चारों वर्णो से भूलोक को आबाद कर दिया। यक्ष और राक्षस उत्पन्न करके भुवर्लोक बसाया। देवताओं को उत्पन्न करके स्वर्लोक को अलकृत किया। सनकादिक ऋषियों से महर्लोक, वैराज सृष्टि मे जन लोक, तपस्वियों से तपलोक और तेजोमय सृष्टि मे सत्य लोकको समृद्ध किया। अन्त मे कल्प की अखीरी मे इन लोकों का सहार करके नारायण निद्रावश होकर सो गये। रात्रि व्यतीत [illegible] जागृत होकर वेद तथा वेदमाता गायत्री को [illegible] निद्रावश मोह क कारण स्मृति नहीं होती [illegible] धारण करके अतल जल में प्रवेश किया [illegible] उनको देखकर उनके अनसार

कहा कि तुम भी मेरे अन्दर प्रवेश कर के जगत् को देख लो। ब्रह्मा ने कहा अच्छा। बाद में विष्णु के मुख के जरिये शरीर में प्रवेश करके ब्रह्मा जी बहुत समय तक निरीक्षण करते रहे किन्तु कहीं भी अन्त न मिला।

दूसरी तरफ विष्णु ने बाहर निकलने के द्वार बंद कर दिये। ब्रह्मा जी ने बाहर निकलने की बहुत कोशिश की मगर सब व्यर्थ हुई। निकलने का रास्ता न मिला। इतने में नाभि की तरफ नजर गई वहाँ कमल नाल में होकर बाहर निकलने का एक मार्ग मिल गया। उस रास्ते बाहर निकले तो एक बड़े कमल के अन्दर अपने को पाया। बाहर आकर विष्णु से कहा कि अहो विष्णो ! तुमे यह अभिमान है कि मेरे समान कोई नहीं है और मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता। यह अभिमान तुम छोड़ दो। 'बहुरत्ना वसुन्धरा' यह पृथिवी अनेक रत्नों से भरपूर है। सेर के ऊपर सवासेर होता ही है। विष्णु ने कहा माफ करिये, मैंने तुमको दुःखी करने के आशय से द्वार बन्द नहीं किया था किन्तु केवल क्रीड़ा के लिए द्वार बन्द किये थे। तुम मेरे नाभि कमल से बाहर निकले हो अतः मेरे पुत्र हुवे। इसीलिए ब्रह्मा जी का नाम पद्म योनि भी है।

(कूर्म पु० पूर्वार्द्ध अ० ८। ६ से ३६ तक)

साराश यह हुआ कि दोनों सृष्टि कर्त्ताओं का सर्वज्ञत्व इससे उड़ जाता है। अगर ज्ञान से पहले ही जान सकते तो अन्दर घुसने की क्या आवश्यकता थी। "मैं बड़ा और तुम छोटे" ऐसी रस्साकशी की भी क्या जरूरत ?

शुरुआत सूर्य की गर्मी बढने से होती है। पहले सूय की किरणें जल को शोष लेती हैं, वृक्ष और तृण सब सूख जाते हैं। दिव्य सौ वर्ष तक पानी का अभाव होन से प्राणियों का नाश हो जाता है। पर्वत चूर्ण होकर बिखर जाते है। एक सूर्य क बजाय बारह सूर्य चौदह भुवनों को जला डालते हैं। पृथिवी और आकाश तवे की तरह तपने लगते हैं। उन सूर्यों को किरणों से रुद्र निकलकर पाताल लोक तक पहुँचता है। वहाँ नाग, गन्धर्व, दवता, राक्षस, अवशिष्ट सम्पूर्ण ऋषिगण का नाश करता है। रुद्र रूपधारी जनार्दन अपने मुख स महा वायु फूंकते हुए तीनों लोकों में सौ वर्ष तक भ्रमण करते रहे और रुई के समान सर्व वस्तु को उडा देते हैं। बाद में वह महावायु सूर्य मण्डल में प्रवेश करके महा मेघ उत्पन्न करता है। रथचक्र के समान धारा से वर्षा वर्षाते हुए ध्रुव लोक तक तीनों लोकों को पानी म डुबा देता है। इसक बाद रुद्र वायु रूप से मेघों को बिखेर डालता है। इसके बाद जन लोक से लेकर ब्रह्म लोक तक जो कुछ रहा हुआ था उसका सहार करता है। इसके बाद रुद्र छलाग मारकर बारह आदित्यों को निगल जाता है। और एक मुक्का मारकर ब्रह्माण्ड को चूर-चूर कर डालता है। पृथिवी का भी ब्रह्माण्ड के साथ चूर-चूर हो जाता है। रुद्र अपनी योग शक्ति द्वारा निराधार जल को धारण कर लेता है। ब्रह्माण्ड के बाहर और भीतर का जल एकाकार हो जाता है। बाद में पूर्वग्रस्त तेज आदित्यों को उगलकर उनके द्वारा जल को शोष कर के नष्ट कर डालता है। इस प्रकार तेज, वायु और आकाश इन सब का सार खींच कर सब की सत्ता नष्ट कर देता है। तत्पश्चात् रुद्र ब्रह्मा के शरीर में और

ब्रह्माने मुखसे ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न किये। यह ब्रह्मा का प्रति सर्ग है।

देव, दानव और दैत्य, कश्यप ने पैदा किये अत कश्यप का प्रतिसर्ग है।

यज्ञ तन्त्रादि अंगिरस का प्रतिसर्ग है।

विष्णु के नेत्र से सूर्य, मन से चन्द्रमा, श्रोत्र से वायु, मुख से अग्नि उत्पन्न हुई। यह विष्णु का प्रतिसर्ग है।

चार प्रकार के भूतग्राम रुद्र से उत्पन्न हुए। यह रुद्र का प्रतिसर्ग है।

(का० पु० अ० २७)

आकालिक सृष्टि

प्रलय काल समाप्त होते ही कूर्म रूप धारी विष्णु ने पर्वत सहित पृथिवी को अपनी पीठ पर धारण करके जल के बाहर ला रखी। ब्रह्मा विष्णु ने दक्ष आदि को कहा कि तुम तप करके सृष्टि बनाओ। मनु जी से कहा कि जो बीज लाये हो वे जमीन में बो दो। वैसाही किया पृथिवी वनस्पति से शस्य श्यामला होगई।

(का० पु० अ० ३१)

कालिका पुराण के अनुसार प्रलय

(प्राकृत प्रलय)

प्रकृति के सिवाय अन्य कुछ भी न रहना, अखिल जगत् का प्रकृति में लय हो जाना प्राकृत प्रलय है। इसकी

करूंगा। हे मनो ! यज्ञ योग्य लकड़े की एक मजबूत नाव लेना। जब जलप्रलय हो तब सात ऋषियों और वनस्पति के बीजों के साथ उस पर चढ़ जाना। उस समय एक सींग तुम को दिखाई देगा उस के साथ नैया को बांध। में बढ़े हुए जल को सुखाता हुआ इधर उधर भ्रमण करूंगा। जब जमीन सूख जावे तब नाव से उतर कर के नये सर से सृष्टि रचना कर के ख्याति प्राप्त करना"। इतना कह कर मनु और मत्स्य अपने अपने स्थान चले गये। थोड़ी देर बाद वराह रूप धारी विष्णु और शरभ रूप धारी रुद्र के बीच घोर संग्राम आरंभ हुआ। पादाघात के कठिन प्रहार से समुद्र का पानी उछल कर लोक में फैल गया। बहुत से पर्वत चूर चूर हो गये उसी वक्त मूसलधार वृष्टि हुई। इस प्रकार अकाल प्रलय की भयंकर परिस्थिति देखकर मनुजी सात ऋषि और वनस्पति के बीजों के साथ नाव पर चढ़ गये और नाव को सींग के साथ मजबूत बांध दी। एक हजार वर्ष तक नाव पानी पर चक्कर काटती रही। जब जल प्रकृतिस्थ हुआ तब नाव को हिमाचल के पचास हजार योजन ऊँचे शिखर के साथ तब तक बांध रखा जब तक पानी पूर्णतया सूख न गया।

(का० पु० अ० ३३।६४)

दैनंदिन प्रलय

ब्रह्मा का दिन पूर्ण होने पर ब्रह्मा को सोने की इच्छा हुई। तब वह विष्णु के नाभि कमल में प्रवेश कर आराम से सो गया। दूसरी तरफ रुद्र ने पूर्ववत् सृष्टि का संहार किया। शेष नाग पृथिवी को छोड़कर विष्णु के पास चल दिया। पृथिवी क्षणमात्र

ब्रह्मा विष्णु के शरीर में प्रवेश करते हैं। विष्णु अपने भौतिक शरीर को समेटकर ब्रह्म में लीन होजाता है। सब एक मात्र ब्रह्म अवशिष्ट रहता है। उस समय दिन, रा आकाश पृथिवी कुछ भी नहीं रहता है। इति प्राकृत प्रलय।

(का० पु० अ० २४ । ३८ से ६० तक)

आकालिक प्रलय

एकदा कपिल मुनि मनु के पास गये और स्वाभीष्ट की याचना की। मनुजी ने उनका बहुत अपमान किया अपमान से कुपित होकर कपिल मुनि ने मनुजी को शाप दि कि तुम जिसपर प्रभुत्व भोग रहे हो उसको उत्पन्न करनेवाला ही उसका जल प्रलय से नाश करेगा। इतना कह कर कपि जी अन्यत्र चले गये। मनुजी ने बदरिकाश्रम में जाक अत्यन्त कठिन तप किया तप से प्रसन्न होकर विष्णु मछली के रूप धारण कर के मनु के पास गये। और अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की मनुजी ने उस को एक बड़े घड़े में बंद कर के रखदी। वह मछली थोड़े दिनों में इतनी बड़ी होगई कि समुद्र के सिवाय उस के लिए दूसरा स्थान रहने लायक नहीं रह गया। यह देख कर मनुजी को बहुत आश्चर्य हुआ। विचार कर के निश्चय किया कि यह स्वयं ही ईश्वर है। परमेश्वर के सिवाय अन्य में ऐसी ताक़त नहीं हो सकती। मनुजी ने उसकी स्तुति की और कपिल के शाप की हकीकत कह सुनाई। मत्स्य ने कहा कि प्रलय तो अवश्य होगा मगर मैं तुम को बचाने का बंदोबस्त करूंगा। मैं जैसा कहूंगा वैसा तुम को करना होगा। देखो सुना जब जल प्रलय होगा तब मत्स्यरूप से मैं तुम्हारी

भूरादिलोक सहित मण्डमण्डमुदपादयत् ।
आत्मनोऽव्यतिरिक्त तत्र मरूपक्रियात्मकम् ॥
(आ० पु० अ० १।७३)

अर्थ—उस ईश्वर ने भूर् आदि लोक युक्त अण्ड ब्रह्माड को जा कि हिरण्यगभ का शरीर रूप होकर सूक्ष्म पचभूतों मे कार्यरूप म स्थित है, उत्पन्न किया। यद्यपि उसकी सत्ता आत्मा स भिन्न नहीं है तो भी नाम रूप और क्रिया रूप से जो अव्यक्त था उसको व्यक्त किया। इसके बाद ईश्वर ने विचार किया कि यह विराट शरीर चेतन रहित है अत लम्बे अर्से तक टिक नहीं सकेगा। जिस प्रकार कि बिना स्वामीवाला घर शीघ्र ही अस्तव्यस्त हो जाता है। इसलिए इसे चेतन युक्त बनाना चाहिए। ऐसा विचार करके विराट् शरीर म अपश्चीकृत भूतों के राजस अश स कर्मेन्द्रियाँ और सात्विक अश से ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न की। उनमे मुख के छिद्र में शब्द व्यवहार सम्पादक वाणी उत्पन्न हुई और उसका अधिष्ठाता रूप वैदिक कर्म सम्पादक अग्निदेव प्रकट हुआ। नासिका के छिद्र से घ्राण इन्द्रिय और उससे अधिष्ठाता वायुदेव प्रकट हुआ। नेत्र के छिद्र से चक्षुइन्द्रिय और उसमे अधिष्ठाता सूर्य उत्पन्न हुआ। कान के छिद्र से श्रोत्रेन्द्रिय और उस मे दिशाएँ प्रगट हुई। देह के सूक्ष्म छिद्रों स त्वगिन्द्रिय और उससे रोम और केश प्रगट हुए। स्पर्शनेन्द्रिय सहकृत लोम और केश से ओषधि आदि स्थावर उत्पन्न हुए और उसका अधिष्ठाता स्थावरोपाधिक वायुदेव प्रकट हुआ। अन्तर आकाश स पच-छिद्रवाला मास कमलरूप हृदय उत्पन्न हुआ, उसम मन और

में नाच चली गई। ब्रह्माण्ड के खण्डों के साथ पृथिवी टकरा कर नष्ट न हो जाय इसलिए विष्णु ने कच्छप का रूप धारण कर के ब्रह्माण्ड व ब्रह्मा को पैर के नीचे दबा कर पृथिवी को पीठ पर रोक लिया। तत्पश्चात् निश्चिन्त होकर रात्रि की समाप्ति पर्यन्त विष्णु सो गये।

(का० पु० अ० २८)

आत्मपुराण के अनुसार आत्मसृष्टि (वेदान्त)

अत समायाप्यात्माय, निर्माय इव लक्ष्यते।
स तमस्को यथा भानु दिवसे निस्तमा इव॥
एव स्थिरतरा देव, पूर्व संस्कार संस्कृत।
वासनानां समुद्बोधात्पर्यालोचयदीश्वर॥

(आ० पु० अ० १।७०-७१)

अर्थ—प्रलय काल में यह आत्मा (ईश्वर) मायासहित होता हुआ भी माया रहित माना जाता है। जिस प्रकार रात्रि में अन्धकार युक्त भानु दिन में अन्धकार रहित हो जाता है इसी प्रकार माया वियुक्त भी इस ईश्वर पूर्व संस्कार से संस्कृत होने से वासनाओं की जागृति होने पर पर्यालोचना करता है।

आलोचन—प्रकार

आकाश आदि समस्त जगत अस्पष्ट रूपसे मुझमें रहा हुआ है उस को स्पष्ट कर के मैं सजन करूं, अर्थात् नामरूप रहित जो अव्याकृत जगत् कारणोपाधि में वर्तमान है उसको नाम रूप युक्त बनाऊं।

प्रार्थना पर ईश्वर ने देवों की तृप्ति के लिये गाय का शरीर बनाया किन्तु उसमें अन्नादि न दिखने से तृप्ति नहीं हुई। अश्व बनाया किन्तु उसमें हाथ आदि न होने से संतोष न हुआ। इस प्रकार अनेक प्रकार के शरीर बनाये गये किन्तु देवों को प्रमोद न हुआ। तब मनुष्य का शरीर बनाया गया, उसे देखकर देवता खुश हो गये। ईश्वर ने आज्ञा दी कि अब भेद भाव छोड़कर अपने अपने स्थान में निवास कर लो। देवताओं ने आज्ञानुसार आचरण किया।

(आ० पु० अ० १।१०१ से ११४)

अन्न सृष्टि

ईश्वर ने अपने पुत्रों की तृप्ति के लिए जल प्रधान पंच महाभूतों से अन्न उत्पन्न किया। वह भी प्रत्येक योनि के साथ भेद से अनेक प्रकार का बनाया गया। जैसे कि मनुष्यों के लिए व्रीहि यवादिक स्थावर अन्न और सिंहादिकों के लिये जंगम अन्न मृगादिक बनाये। देवता अपान वायु के बिना अन्न भक्षण न कर सके तब प्राण वायु रूप से ईश्वर ने उसमें प्रवेश किया और अन्न खिला दिया।

(आ० पु० अ० १।११७ से १२०)

आत्मप्रवेश

वाक् से लेकर प्राण तक के सभी देवताओं को स्थान तो मिल गया फिर भी चैतन्य के बिना वे कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं, ऐसा विचार करके ईश्वर ने मस्तक के मध्य भाग से होकर अपने पुत्रों के शरीरों में प्रवेश कर लिया।

मन से चन्द्रदेव प्रकट हुआ। नाभि छिद्र से प्राण अपानादि वायु प्रकट हुए। उपस्थ छिद्र से उपस्थेन्द्रिय उत्पन्न हुई जो कि अंडज और जरायुज शरीर का कारणभूत मानी गई है। वीर्य से प्रजापति देव प्रकट हुआ। इस प्रकार छिद्रों की रचना करके विराट् शरीर के हाथ और पैर बनाये गये और उनमें हाथ का अधिष्ठाता इन्द्र और पैर का अधिष्ठाता उपेन्द्र विष्णु प्रकट हुए।

(आ० पु० अ० १।६३)

विराट् शरीर में देवों की अतृप्ति

अपरिमित विराट शरीर में देवताओं को आश्रय तो मिल गया किन्तु वह शरीर सप्त धातुमय और विण्मूत्रमल संश्रय" (आ० पु० अ० १।६७) मल मूत्र का आश्रय होने से तथा उसमें खुराक न मिलने से भूख और प्यास की पीड़ा से व्याकुल होकर देवों ने ईश्वर से अर्ज की कि—

> 'नैतस्माद्व्यतिरिक्तं भो अन्नं पानं च दृश्यते।
> ततोऽन्यं भगवन् देहं सृजास्मभ्यं हिताय वै॥
> यत्र स्थिता वयं स्याम ह्यन्नपानस्य भागिनः॥

(आ० पु० अ० १।१००)

अर्थ—हे भगवन्! इस शरीर से भिन्न अन्न पान तो कहीं दिखाई नहीं देता है इसलिए हम भूख प्यास से पीडित हो रहे हैं। हमारे हित के लिये कोई भिन्न शरीर बनाइये कि जिसमें रहकर हम अन्न पान के भोक्ता हो सकें। इस

अर्थ—ईश्वर जिनको नरक में ले जाना चाहता है उनसे केवल पाप कर्म करवाता है, जिनको स्वर्ग में ले जाना चाहता है उनसे केवल पुण्य कर्म कराता है और जिनको मनुष्य योनि में ले जाना चाहता है उनसे पुण्य तथा पाप-उभयरूप कर्म करवाता है।

> राजेवाय फलं दद्यात्, कर्मणो साध्वासाधुनो ।
> इच्छानुसारतस्तेषां, कारयत्येव कर्मणी ॥
> विषमस्तेन नैवाय, सर्वभूताधिपो महान् ॥
>
> (आ० पु० अ० ४ । २३६)

अर्थ—ईश्वर जीवों की इच्छानुसार शुभाशुभ कर्म कराता है और राजा के समान भले बुरे कर्मों का फल देता है। इस लिए सबभूतों का अधिपति यह ईश्वर अन्यायी नहीं है।

> जननी जनको वापि, सुखदुःखे यथैव हि ।
> ददाति तद्वद्भगवान् , भूतानां निर्घृणो न हि ॥
>
> (आ० पु० अ० ४ । २३७)

अर्थ—जिस प्रकार माता पिता पुत्र को सुख देते हैं तो अच्छे के लिए और दुःख—ताडनादि देते हैं तो भी अच्छे के लिए ही उसी प्रकार ईश्वर भूतों प्राणियों को स्वर्ग या नरक में पहुँचाता है वह श्रेय के लिए ही होता है अतः ईश्वर निर्दय नहीं है।

सर्वमेतज्जगच्चक्र । नामरूपक्रियात्मकम् ।

निरजन ईश्वर को भी बाह्यार्थ का भोग

यदा बाह्यार्थ भोगार्थं कर्माद्त्ते निरजन ।
अनादिमायया तस्मिन्-काले द्वेधा प्रजायत ॥

(आ० पु० अ० १।१७८)

अर्थ—ईश्वर निरञ्जन होता हुआ भी बाह्य पदार्थों क भोग के लिये कम ग्रहण करता है। अनादि काल से लगी हुई माया के योग स ही वह ऐसा करता ह। उस माया के कारण ही वह उस समय स्त्री और पुरुष रूप अपने दो भाग करता है (जो स्वायंभुव मनु और शतरूपा क नाम से प्रसिद्ध हैं।)

शुभाशुभ कर्म कराने वाला ईश्वर

कारयत्येव एवैतान् जन्तून्नाना शरीरगान् ।
भृत्यानिष्टानिव सदा, कर्मणी साध्वसाधुनी ॥

(आ० पु० अ० ४ । २२३)

अर्थ—नाना प्रकार के शरीर धारी जीवों को ईश्वर इष्ट अनिष्ट कर्म कराता है। जिस प्रकार कि सेठ नौकर से भले बुरे कार्य कराता है।

यान्नयं न क नतु, यमिच्छति महेश्वर ।
एतान् कारयति स्वामी, पाप कम व केवलम् ॥
स्वर्गने। हि यानिच्छेत् , कारयेत् पुण्यमेव तान् ।
मनुष्य भाति नयन् स, कारयेत्पुण्य पातके ॥

(आ० पु अ० ४ । २२४ २२५)

पदार्थों का रूप उनके नाममात्र से जाना जा सकता है अर्थात् नाम से अतिरिक्त वस्तु का कुछ भी रूप नहीं है अतः पूर्वोक्त नाम, रूप और क्रिया परस्पर भिन्न नहीं हैं किन्तु एक रूप हैं।

नामादि नैव भिन्नं स्यात्, कारणात्स्वात्मनस्तथा।
कार्यत्वेन यथा सर्पो, रज्जोर्भिन्नो न विद्यते॥
(आ० पु० अ० ४ । ११८)

अर्थ—जिस प्रकार नामादि कार्य परस्पर भिन्न भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार अपने कारण रूप आत्मा से भी भिन्न नहीं हैं। जो कार्य जिस उपादान से उत्पन्न होता है वह उस उपादान से भिन्न नहीं होता है। जैसे कि रज्जु में सर्प भिन्न नहीं दीखता।

इदं सर्वं जगच्छक्र ! ब्रह्मपूर्णमभूत्पुरा।
मेघादिकं यथाकाशं मेघाद्युत्पत्तितः पुरा॥
(आ० पु० अ० ४ । ११६)

अर्थ—हे शक्र ! यह नाम रूपात्मक जगत् सृष्टि के पूर्व ब्रह्म रूप था जिस प्रकार कि मेघादिक उत्पन्न होने के पहले आकाश रूप ही थे। आकाश से भिन्न न दिखाई देते थे।

नामरूपात्मकं विश्वं, ब्रह्ममात्रं व्यवस्थितम्।
अवगम्यात्र विद्वांसो, माया ते कल्पयन्ति हि॥
(आ० पु० अ० ४ । १२१)

अर्थ—सृष्टि के पूर्व नामरूपात्मक जगत् कारणरूप ब्रह्म में ही अवस्थित था ऐसा जानकर विद्वान् कारणता का निर्वाह करने के लिए उसमें माया की कल्पना करते हैं। माया के बिना केवल ब्रह्म में कारणता नहीं हो सकती। इसीलिए विद्वान् कारणता के निर्वाह के लिए माया की कल्पना करते हैं ऐसा

जगत और ब्रह्म की अभिन्नता

विश्वमित्यादि नामास्य रूप स्याद्भूतभौतिकम्।
सृष्टिस्थितिलयास्तस्य, क्रिया प्रोक्ता मनीषिभि ॥

(आ० पु० अ० ४। ११)

अर्थ—हे राम ! यह सारा जगत् नाम, रूप और क्रियात्मक है। विश्व, लोक दुनिया, संसार इत्यादि जगत् के नाम, नाम जगत् हैं। पचभूत तथा उनके विकारो का समूह रूप जगत् है और सग, पालन और विनाश ये जगत् की क्रियाए हैं। इस प्रकार नाम, रूप और क्रिया के सिवाय जगत् कोइ भिन्न वस्तु नहीं है। जैसे घट आदि नाम, वर्तुल पृथुबुध्नोदरादिक रूप और जलाहरणादिक क्रिया ये तीनो मिलकर के घट हैं इसी प्रकार पट आदि सब वस्तुओं में समझ लेना चाहिए। वस्तुत नाम, रूप और क्रिया ये तीनों अलग अलग वस्तु नहीं हैं किंतु एक रूप हैं, यही बात बताते हैं—

अवस्थाया विशेष स्या-द्वस्तुनोऽत्र क्रिया यत ।
तस्मात्त रूपतो भिन्ना, क्रिया नामात्र विद्यते ॥
नाम मात्रेण रूप स्या द्विचारे नास्ति तद्यत ॥
तस्माद्वामात्मक कार्यं नाम्नो नान्यद्धि वस्तु सद।
एकमेतत्त्रय सव नामरूप क्रियात्मकम् ॥

(आ० पु० अ० ४। ११६ ११७)

अर्थ—यह वस्तु नवीन है और यह प्राचीन है इत्यादि व्यवहार क समान क्रिया भी वस्तु की अवस्था विशेष का ही नाम है इसलिए वस्तु के स्वरूप से क्रिया भिन्न नहीं है। घटादि

क्रिश्चियन-सृष्टि

क्रिश्चियन—सृष्टि

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा। और पृथिवी सूनी और अस्तव्यस्त पड़ी थी, और गहरे जल के ऊपर अन्धियारा था, और परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर ऊपर मण्डलाता था। तब परमेश्वर ने कहा उजियाला हो, सो उजियाला हो गया। और परमेश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है और परमेश्वर ने उजियाले और अन्धियारे को अलग अलग किया। और परमेश्वर ने उजियाले को दिन कहा और अन्धियारे को रात कहा, और साझ हुई, फिर भोर हुआ, सो एक दिन हो गया"॥

(बा० हि० अ० १)

दूसरे दिन की कार्यवाही

"फिर परमेश्वर ने कहा जल के बीच ऐसा एक अन्तर हो कि जल दो भाग हो जाय। सो परमेश्वर ने एक अन्तर करके उस के नीचे के जल और उसके ऊपर के जल को अलग-अलग किया, और वैसा ही हो गया। और परमेश्वर ने उस अन्तर को आकाश कहा, और साझ हुई, फिर भोर हुआ, सो दूसरा दिन हो गया"॥

(बा० हि० अ० १)

कहा गया है। क्योंकि ब्रह्म मन, वचन का विषय तो है नहीं। सर्प और रज्जु जैसे भिन्न नहीं हैं वैसे ही माया और ब्रह्म भी भिन्न नहीं हैं।

स्पष्टीकरण

आत्मपुराण की टीका शंकराचार्य ने की है। शंकराचार्य की दृष्टि वेदान्तमयी है वेदान्त दृष्टि से जगत् कल्पनामय है। "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर" रज्जु में जैसे सर्प की भ्रान्ति है वैसे ही ब्रह्म में जगत् की भ्रान्ति है। जब कि माया की ही स्वतन्त्र सत्ता नहीं है तो माया से कल्पित की हुई जगत् की सत्ता कैसे हो सकती है। जहाँ सत्ता ही नहीं है वहाँ उसके कर्त्ता का प्रश्न ही नहीं किया जा सकता। यद्यपि मूल में ग्रन्थकार ने खण्ड शब्द का प्रयोग करके अन्य सृष्टि की तरह इस भी अण्ड सृष्टि बताई है किन्तु टीकाकार शंकराचार्य ने खण्ड शब्द का अर्थ ब्रह्माण्ड किया है। ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत और जगत् यह कल्पनामात्र। इस हिसाब से सृष्टि भी कल्पनामात्र है।

इति पौराणिक सृष्टि

अलग अलग करें, और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। र साम हुई, फिर भार हुआ, सो चौथा दिन हो गया" ॥

(बा० हिं अ० १)

पाचवें दिन की कार्यवाही

"फिर परमेश्वर ने कहा जल जीते प्रणियों स वहुत ही भर जाय, और पत्ती पृथिवी के ऊपर आकाश क अन्तर में उड़ें। और परमेश्वर ने यह कह के उन को आशिष दी कि फूलो फलो, और समुद्र के जल म भर जाओ, और पत्ती पृथिवी पर बढ़ें। और साम हुई, फिर भोर हुआ सो पाचवा दिन हो गया" ॥

(बा० हिं० अ० १)

छट्ठे दिन की कार्यवाही

"फिर परमेश्वर ने कहा पृथिवी से एक एक जाति के जीते प्राणी उत्पन्न हा, अर्थात घरेलू पशु और रेंगने हारे जन्तु और पृथिवी के बनै न पशु जाति जाति क अनुसार और वैसा ही हो गया। फिर परमेश्वर ने कहा हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाए, और वे समुद्र का मछलियों और आकाश के पत्तियो और घरेले पशुओं और सारा पृथिवी पर और सब रेंगने हारे जन्तुओं पर जो पृथिवी पर रेंगते हैं अधिकार रक्खें। फिर परमेश्वर ने उनमे कहा सुनो जितन बीज न ले छोटे छोटे पेड सारी पृथिवी के ऊपर हैं, और जितन वृत्तों में बीज वाले फल होते हैं, सो सब मैंने तुम को दिये हैं, व तम्हारे भोजन के लिये हैं। और जितने पृथिवी के पशु और आकाश के पत्ती और पृथिवी पर रेंगने

तीसरे दिन की कार्यवाही

"फिर परमेश्वर ने कहा आकाश के नीचे का जल स्थान में इकट्ठा हो, और सूखी भूमि दिखाई दे, और वैसा हो गया। और परमेश्वर ने सूखी भूमि को पृथिवी, और जो जल इकट्ठा हुआ उस को उसने समुद्र कहा, परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। फिर परमेश्वर ने कहा पृथिवी से हरी घास और बीज वाले छोटे छोटे पेड़ और फलदाई वृक्ष जो अपनी अपनी जाति के अनुसार फलें और जिन के बीज पृथिवी पर उन्हीं में हों उगें, और वैसा ही हो गया। और सांझ हुई, फिर भोर हुआ, सो तीसरा दिन हो गया' ॥

(बा० हिं० अ० १)

चौथे दिन की कार्यवाही

"फिर परमेश्वर ने कहा दिन और रात अलग अलग करने के लिये आकाश के अन्तर में ज्योतियाँ हों, और वे चिन्हों और नियत समयों और दिनों और बरसों के कारण हों। और वे ज्योतियां आकाश के अन्तर में पृथिवी पर प्रकाश देन हारी भी ठहरें और वैसा ही हो गया। सो परमेश्वर ने दो बड़ी ज्योतियां बनाई, उन में से बड़ी ज्योति को दिन पर प्रभुता करने के लिये, और छोटी ज्योति रात पर प्रभुता करने के लिये, और तारागण को भी बनाया। और परमेश्वर ने उन को आकाश के अन्तर में इसलिये रक्खा कि वे पृथिवी पर प्रकाश दें। और दिन और रात पर प्रभुता करें, और उजियाले और अन्धियारे

काम करे, और उसकी रक्षा करे, तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को यह आज्ञा दी कि वारी के सब वृक्षों का फल तू बिना खटके खा सकता है। पर भले बुरे के ज्ञान का जो वृक्ष है उनका फल तू न खाना, क्योंकि जिस दिन तू उसका फल खायगा उसी दिन तू अवश्य मर जायगा॥ और यहोवा परमेश्वर भूमि में से सब जाति के बनैले पशुओं और आकाश के सब भांति के पक्षियों को रचकर आदम के पास ले आया सो आदम ने सब जाति के घरैले पशुओं और आकाश के पक्षियों और सब जाति के बनैले पशुओं के नाम रक्खे पर आदम के लिये ऐसा कोई सहायक न मिला जो उस से मेल खाए। तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को भारी नींद में डाल दिया, और जब वह सो गया तब उस ने उसकी एक पसुली निकाल कर उसकी सन्ती मास भर दिया। और यहोवा परमेश्वर ने उस पसुली को जो उसने आदम में से निकाली थी, स्त्री बना दिया और उसको आदम के पास ले आये। और आदम ने कहा अब यह मेरी हड्डियों में की हड्डी, और मेरे मास में का मास है, सो इसका नाम नारी होगा क्योंकि यह नर में से निकाली गई'।

(बा० उ० अ० २)

मनुष्य का पापी होना और ईश्वर का शाप

"यहोवा परमेश्वर ने जितने बनैले पशु बनाये थे सब में से सर्प धूर्त्त था, और उस ने स्त्री से कहा क्या सच है कि परमेश्वर ने कहा कि तुम इस बारी के किसी वृक्ष का फल न खाना। स्त्री ने सर्प से कहा इस बारी के वृक्षों के फल हम खा सकते हैं। पर जो वृक्ष बारी के बीच में है उसके फल के विषय में परमेश्वर ने कहा कि तुम उस को न खाना, न उस को छूना

हारे जन्तु हैं, जिन में जीवन का प्राण है, उन सब के खाने के लिये मैंने सब हरे हरे छोटे पेड दिये हैं और वैसा ही हो गया। और परमेश्वर ने जो कुछ बनाया था सब को देखा, तो क्या देखा कि वह बहुत ही अच्छा है, और साझ हुई, फिर भोर हुआ, सो फिर छठवा दिन हो गया ॥

(बा० हिं० अ १)

यों आकाश और पृथिवी और उन की सारी सेना का बनाना निपट गया। और परमेश्वर ने सातवें दिन अपना काम जो वह करता था, निपटा दिया, सो सातवें दिन उसने अपने किये हुए सारे काम से विश्राम किया। और परमेश्वर ने सातवें दिन को आशिष दी, और पवित्र ठहराया, क्योंकि उस में उसने सृष्टि के अपने सारे काम से विश्राम किया" ॥

(बा० हिं० अ० २)

मनुष्योत्पत्ति

"और यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रचा, और उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया, और आदम जीता प्राणी हुआ। और यहोवा परमेश्वर ने पूरब और एदन देश में एक वाडी लगाई, और वहां आदम को जिसे उसने रचा था रख दिया। और यहोवा परमेश्वर ने भूमि से सब भांति के वृक्ष जो देखने में मनोहर और जिनके फल खाने में अच्छे हैं उगाए, और जीवन के वृक्ष को वाडी के बीच में और भले बुरे के ज्ञान के वृक्ष को भी लगाया। और उस वारी के सींचने के लिए एक महानद एदन से निकलता था और वहां से आगे बहकर चार धार हो गया। जब यहोवा परमेश्वर ने आदम को लेकर एदन की बारी में रख दिया कि वह उस में

कि बीच में बैर उपजाऊंगा, वह तेरे सिर को कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को कुचल डालेगा। फिर स्त्री से उसने कहा मैं तेरी पीड़ा और तेरे गर्भवती होने के दुःख को बहुत बढ़ाऊँगा, तू पीड़ित होकर बालक जनेगी, और तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा। और आदम से उसने कहा तूने जो अपनी स्त्री की सुनी और जिस वृक्ष के फल के विषयमें मैंने तुझे आज्ञा दी थी कि तू उसे न खाना उसको तूने खाया है इस लिये भूमि तेरे कारण स्रापित है, तू उसकी उपज जीवन भर दुःख के साथ खाया करेगा। और वह तेरे लिये कांटे और ऊंटकटारे उगायेगी और तू खेत की उपज खाएगा। और अपने माथे के पसीनागारे की रोटी तू खाया करेगा, और अन्त में मिट्टी में मिल जाएगा, क्योंकि तू उसी में से निकाला गया, तू मिट्टी तो है और मिट्टी ही में फिर मिल जाएगा। और आदम ने अपनी स्त्री का नाम हव्वा रक्खा क्योंकि जितने मनुष्य जीते हैं उन सब की आदि माता वही हुई। और यहोवा परमेश्वर ने आदम और उसकी स्त्री के लिये चमड़े के अंगरखे बनाकर उनको पहना दिये" ॥ (बा० हि० अ० ३)

ईश्वर को भय

'फिर यहोवा परमेश्वर ने मनुष्य भले बुरे का ज्ञान पाकर हम में से एक के समान हो गया है सो अब ऐसा न हो कि वह हाथ बढ़ा कर जीवन के वृक्ष का फल भी तोड़ के खाए, और सदा जीता रहे। सो यहोवा परमेश्वर ने उसको अदन की वारी में से निकाल दिया कि वह इस भूमि पर खेती करे जिसमें से वह बनाया गया था। आदम को तो उसने बरबस निकाल दिया और जीवन के वृक्ष के मार्ग का पहरा देने के लिये अदन की

भी, नहीं तो मर जाओगे। तब सर्प ने स्त्री से कहा तुम निश्चय न मरोगे। वरन् परमेश्वर आप जानता है कि जिस दिन तुम उस का फल खाओ उसी दिन तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी और तुम भले बुरे का ज्ञान पाकर परमेश्वर के तुल्य हो जाओगे। सो जब स्त्री का जान पड़ा कि उस वृक्ष का फल खाने में अच्छा और देखने में मन भाऊ और बुद्धि देने के लिये चाहने योग्य भी है तब उसने उसमें से तोड़ कर खाया और अपने पति को दिया, और उसने भी खाया। तब उन दोनों की आँखें खुल गईं और उनको जान पड़ा कि हम नंगे हैं सो उन्हों ने अञ्जीर के पत्ते जोड़ जोड़ कर लंगोट बना लिये। पीछे यहोवा परमेश्वर जो साँझ के समय बारी में फिरता था उस का शब्द उनको सुन पड़ा और आदम और उसकी स्त्री बारी के वृक्षों के बीच यहोवा परमेश्वर से छिप गये तब यहोवा परमेश्वर ने पुकार कर आदम से पूछा तू कहाँ है उसने कहा मैं तेरा शब्द बारी में सुनकर डर गया, क्योंकि मैं नंगा था इसलिए छिप गया। उसने कहा किसने तुझे चिताया कि तू नंगा है, जिस वृक्ष का फल खाने का मैंने तुझे बर्जा था क्या तूने उसका फल खाया है आदम ने कहा जिस स्त्री को तूने मेरे संग रहने को दिया उसी ने उस वृक्ष का फल मुझे दिया सो मैंने खाया। तब यहोवा परमेश्वर ने स्त्री से कहा तूने यह क्या किया है स्त्री ने कहा सर्प ने मुझे बहका दिया सो मैंने खाया। तब यहोवा परमेश्वर ने सर्प से कहा तूने जो यह किया है इसलिए तू सब घरैले पशुओं और सब बनैले पशुओं से अधिक स्रापित है, तू पेट के बल चला करेगा और जीवन भर मिट्टी चाटता रहेगा। और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में और तेरे वंश और इसके वंश

बहुत भर गई थी, और ईश्वर की दृष्टि में बिगड़ भी गई थी, अतएव ईश्वर को प्रलय करदेने की आवश्यकता दिखाई दी।

(या॰ हिं॰ अ॰ ५)

"क्रिश्चियन—स्वर्ग"

एक सिंहासन स्वर्ग में धरा है और उस सिंहासन पर कोई बैठा है। और जो उस पर बैठा है वह यशब और मानिक सा दिख पड़ता है और उस सिंहासन के चारों ओर मरकत सा एक मेघ धनुष दिखाई देता है। और उस सिंहासन के चारों ओर चौबीस सिंहासन हैं और इन चौबीस सिंहासनों पर चौबीस प्राचीन उजला वस्त्र पहिने हुए बैठे हैं और उनके सिरों पर सोने के मुकुट हैं। और उस सिंहासन में से बिजलियां और गर्जन निकलते हैं और सिंहासन के सामने आग के सात दीपक जल रहे हैं ये परमेश्वर के सात आत्मा हैं। और उस सिंहासन के सामने मानो बिल्लोर के समान काच का सा समुद्र है और सिंहासन के बीच और सिंहासन के सामने चार प्राणी हैं जिनके आगे पीछे आखें ही आखें हैं। पहिला प्राणी सिंह के समान और दूसरा प्राणी बछड़े के समान, तीसरे प्राणी का मुंह मनुष्य का सा है और चौथा प्राणी उड़ते हुए उकाब के समान है। और चारों प्राणियों के छः छः पंख हैं और चारों ओर और भीतर आखें ही आखें हैं और वे रात दिन बिना विश्राम लिये यह कहते रहते हैं पवित्र पवित्र पवित्र प्रभु परमेश्वर सर्वशक्तिमान् जो था और जो है और जो आने वाला है और जब जब वे प्राणी उसकी जो सिंहासन पर बैठा है जो युगानुयुग जीवित है महिमा और आदर और धन्यवाद करेंगे। तब तब चौबीसों प्राचीन

सिंहासन पर बैठन वाले के सामने गिर पडेंगे और उस युगानुयुग जीवित है प्रणाम करेंगे और अपने सिंहासन के सामने यह कहते हुए डाल देंगे कि, हे हमारे और परमेश्वर तू ही महिमा और आदर और सामर्थ्य के है क्यों कि तू ही ने सारी वस्तुएं सिरजीं और वे तेरी इच्छा से थीं और सिरजी गई ॥ और मैंने उस सिंहासन और चारों प्राणियों और उन प्राचीनों के बीच में माना किया हुआ मेम्ना खड़ा देखा, उसके सात सींग और सात आंखें ये परमेश्वर के सातों आत्मा हैं जो सारी पृथिवी पर भेजे गए हैं। उसने आकर उसके दाहिने हाथ से जो सिंहासन पर बैठा था वह पुस्तक लेली और जब उसने पुस्तक लेली तो वे चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन उस मेम्ने के सामने गिर पड़े और हर एक के हाथ में वीणा और धूप से भरे हुए सोने के कटोरे थे ये तो पवित्र लोगों की प्रार्थनाएं हैं। और वे नया गीत गाने लगे कि तू इस पुस्तक को लेने और उसकी छापें खोलने के योग्य है क्योंकि तू ने वध होकर अपने लोहू से हर एक कुल और भाषा और लोग और जाति में से परमेश्वर के लिये लोगों को मोल लिया और हमारे परमेश्वर के लिये एक राज्य और याजक बनाया और वे पृथिवी पर राज्य करते हैं। और जब मैंने देखा तो उस सिंहासन और उन प्राणियों और उन प्राचीनों के चारों ओर बहुत से स्वर्गदूतों का शब्द सुना जिनकी गिनती लाखों और करोड़ों की थी। और वे ऊंचे शब्द से कहते थे वध किया हुआ मेम्ना ही सामर्थ और धन और ज्ञान और शक्ति और आदर और महिमा और धन्यवाद के योग्य है। फिर मैंने स्वर्ग में और पृथिवी पर और पृथिवी के नीचे समुद्र की सब सिरजी हुई वस्तुओं को

तब कुछ जो उनमें हैं यह कहते सुना कि जो सिहासन बैठा है उसका और मेम्ने का धन्यवाद और आदर और मा और पराक्रम युगानुयुग रहे। और चारों प्राणियों ने मीन कही और प्राचीनों ने गिरकर प्रणाम किया ॥

(हिं० बा० यूहन्ना का प्रकाशित वाक्य अ० ५ १)

"नेकी बदी का इन्साफ"

जब मनुष्य का पुत्र अपनी महिमा में आएगा और सब वर्गदूत उसके साथ होंगे तो वह अपनी महिमा के सिहासन पर ठेगा। और सब जातिया उस के सामने इकट्ठी की जायँगी और जैसा रखवाला भेडों को बकरियों से अलग कर देता है सा ही वह उन्हें एक दूसरे से अलग करेगा। और वह भेडों को अपनी दाहिनी ओर और बकरियों को बाई ओर खडी करेगा। तब राजा अपनी दाहिनी ओर वालों से कहेगा हे मेरे पेता के धन्य लोगो आओ उस राज्य के अधिकारी हो जाओ जो जगत् के आदि से तुम्हारे लिये तैयार किया हुआ है। क्यों कि मैं भूखा था और तुमने मुझे खाने को दिया मैं पियासा था और तुमने मुझे पिलाया मैं परदेशी था और तुमने मुझे अपने घर में उतारा। मैं नंगा था और तुमने मुझे कपडे पहिनाये, बीमार था और तुमने मेरी खबर ली, मैं जेल खाने में था और तुम मेरे पास आये। तब धर्मी उसको उत्तर देंगे कि हे प्रभु हमने कब तुझे भूखा देखा और खिलाया पियासा देखा और पिलाया। हमने कब तुझे पर देशी देखा और अपने घर में उतारा या नङ्गा देखा और कपडे पहिनाए हमने कब तुझे बीमार या जेल खाने मे देखा और तेरे पास आए। तब राजा उन्हें

अर्थात् मैं तुमको भरमाऊँगा और क्षय रोगी और ज्वरसे पीडित करूँगा और इनके कारण तुम्हारी आखे धुन्धली और तुमारा मन अति उदास होगा और तुम्हारा बोज बोना व्यर्थ होगा क्योंकि तुम्हारे शत्रु उसकी उपज खालेंगे। फिर मैं तुम्हारे विरुद्ध हूँगा और तुम अपने शत्रुओं से हारोगे और तुम्हारे वैरी तुम्हारे ऊपर अधिकार जतायेंगे वरन जब कोई तुम को खदेडता न हो तब भी तुम भागोगे। और यदि तुम इन बातों पर भी मेरी न सुनो तो मैं तुम्हारे पापा के कारण तुम्हें सात गुनी ताडना और भी दूगा। और मैं तुम्हारे बीच वनैले पशु भेजूगा जो तुमको निरवश करेंगे मैं तुम पर तलवार चलाऊँगा जिससे वाचा तोडने का पलटा लिया जायगा और जब तुम अपने नगरों में इक्ट्ठे होगे तब मैं तुम्हारे बीच मरी फैलाऊगा और तुम अपने शत्रुओं के वश में पड़ जाओगे।

फिर यदि तुम इस पर भी मेरी न सुनो वरन मेरे विरुद्ध चलते ही रहो, तो मैं जल कर तुम्हारे विरुद्ध चलूगा और तुम्हारे पापो के कारण मैं आपही तुमको सातगुनी ताड़ना दूगा। और तुम को अपने बेटों और बेटियों का मास खाना पड़ेगा। और मैं तुम्हारे पूजा के ऊचे स्थानों को ढादूगा और और तुम्हारी सूय की प्रतिमाएं तोड डालूँगा और तुम्हारी लोथों को तुम्हारी तोड़ी हुई मूरतों पर फेंक दूगा और मेरा जी तुम से घिनला जायगा। और मैं तुम्हारे नगरों को उजाड़ दूगा और तुम्हारे पवित्र स्थानों को सूना कर दूगा और तुम्हारा सुख दायक सुगन्ध ग्रहण न करूँगा। और मैं आपही तुम्हारा देश सूना कर दूँगा और तुम्हारे शत्रु जो उसमें बस जाय सो उसके कारण चकित होंगे। और मैं तुमको जाति जाति के बीच

तितर बितर करूंगा और तुम्हारे पीछे तलवार खींचकर चलाऊंगा और तुम्हारा देश सूना होगा और तुम्हारे नगर उजाड हो जायेंगे।

(हि० बा० लैव्य व्यवस्था अ० २६)

"यहोवा ने मूसा से कहा फिरौन के पास जाकर कह, यहोवा तुझ से यों कहता है कि मेरी प्रजा के लोगों को जाने दे, कि वे मेरी उपासना करें। और यदि तू उन्हें न जाने दे तो सुन मैं मेंढक भेजकर तेरे सारे देश को हानि पहुँचाता हूँ। और नील नदी मेंढकों से भर जायेगी और वे तेरे भवन और शयन की कोठरीमें और तेरे बिछौने पर और तेरे कर्मचारियों के घरों में और तेरी प्रजापर चढ जायेंगे। मेंढकों ने मिश्र-देश पर चढकर उसको छा लिया मैं तुझ पर और तेरे चारियोंपर और तेरी प्रजापर और तेरे घरों में झुंडके झुंड डांस भेजूंगा। दूसरे दिन यहोवा ने ऐसा ही किया और मिश्र के तो सब पशु मर गये पर इस्राएलियों का एक भी पशु न मरा।

(हिं० बा० निर्गमन अ० ८)

जो कोई यहोवा को छोडकर किसी देवता के लिये बलिकरे वह सत्यानाश किया जाये।

(हिं० बा० निर्गमन अ० २२)

"अब मुझे मत रोक मैं उन्हें भडके कोप से भस्म करदूँ और तुझ से एक बडी जाति उपजाऊं। तब मूसा अपने परमेश्वर यहोवा को यह कहके मनाने लगा कि हे यहोवा! तेरा कोप अपनी प्रजापर क्यों भडका है, जिसे तू बडे सामर्थ्य

और बलवन्त हाथ के द्वारा मिस्र देश से निकाल लाया है। - तू अपने भड़के हुए कोप से फिर और अपनी प्रजा की ऐसी हानि से पछता तब यहोवा अपनी प्रजा की यह हानि करने से पछताया जो उसने करने को कही थी।

(हिं० बा० निर्गमन अ० ३२)

ईश्वर (यहोवा) की आत्म प्रशंसा

"मैंने अब हाथ बढ़ाकर तुझे और तेरी प्रजा को मरी से मारा होता तो तू पृथिवी पर से सत्यानाश हो गया होता। पर सचमुच मैंने इसी कारण तुझे बनाये रखा है कि तुझे अपना सामर्थ्य दिखाऊँ और अपना नाम सारी पृथिवी पर प्रसिद्ध करूँ"।

(हिं० बा० निर्गमन अ० ६)

"मैं हा ने उसके और उसके कर्म्मचारियों के मन को इस लिए कठोर कर दिया कि वे चिन्ह उन के बीच दिखाऊं। और तुम लोग अपने बेटों पोतों से इस का वर्णन करो कि यहोवा ने मिस्रियों को कैसे ठट्ठा में उड़ाया और अपने क्या क्या चिन्ह उन के बीच प्रगट किए जिस से तुम यह जान लोगे कि मैं यहोवा हूँ"।

(हिं० बा० निर्गमन अ० १०)

ईश्वर की असर्वज्ञता

'और जब तुम अपने देश में किसी सताने हारे बैरी से ल ने को निकलो तब तुरहियों को सांस बांधकर फूंकना तब

तुम्हारे परमेश्वर यहोवा को तुम्हारा स्मरण आयेगा और तुम अपने शत्रुओं से बचाये जाओगे। मैं तो तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ।

(हिं० बा० गिनती अ० १०)

यहोवा शाऊल को इस्रायेल का राजा कर के पछताया।

(हिं० बा० शमूएल नाम पहिली पुस्तक अ० १५)

यहोवा के लिए पशु पक्षियों का बलिदान

"यहोवा ने मिलाप वाले तम्बू में से मूसा को बुलाकर उस से कहा इस्राएलियों से कह कि तुम में से यदि कोई मनुष्य यहोवा के लिए पशु का चढावा चढाए तो उसका बलि पशु गाय, बैलों वा भेड़ बकरियों (इन) में से एक का हो॥

और यदि वह यहोवा के लिए पक्षियों में का होम बलि चढाए तो पिडुकों वा कबूतरों का चढावा चढाए। याजक उसको वेदी के समीप ले जाकर उसका गला मरोड कर सिर को धड से अलग करे और वेदी पर ले जाय और उसका सारा लोहू उस वेदी की अलग पर गिराया जाय।

(हिं० बा० लैव्य व्यवस्था अ० १)

क्रिश्चियन फिरस्ते (यमदूत)

फिर मैंने देखा कि मेम्ने ने उन सात छापों में से एक को खोला और उन चारों प्राणियों में से एक का गर्ज का सा शब्द सुना कि आ। और मैंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोडा है और उसका सवार धनुष लिये हुए है और उसे मुकुट दिया

गया और वह जय करता हुआ और और भी जय करने को निकला ॥

और जब उसने दूसरी छाप खोली तो मैंने दूसरे प्राणी को यह कहते सुना कि आ। फिर एक और घोड़ा निकला जो लाल रंग का था उसके सवार को यह अधिकार दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठाले कि लोग एक दूसरे को वध करें और उस को एक बड़ी तलवार दी गई ॥

और जब उसने तीसरी छाप खोली तो मैंने तीसरे प्राणी को यह कहते सुना कि आ। और मैंने दृष्टि की और देखा एक काला घोड़ा है और उसके सवार के हाथ में एक तराजू है। और मैंने उन चारों प्राणियों के बीच में से एक शब्द यह कहते सुना कि दीनार का सेर भर गेहूं और दीनार का तीन सेर जव और तेल और दाख रस की हानि न करना ॥

और जब उसने चौथी छाप खोली तो मैंने चौथे प्राणी का शब्द यह कहते सुना कि आ। और मैंने दृष्टि की और देखा एक पीला सा घोड़ा है और उसके सवार का नाम मृत्यु है और अधोलोक उसके साथ हो लेता है और उन्हें पृथिवी की एक चौथाई पर यह अधिकार दिया गया कि तलवार और अकाल और मरी और पृथिवी के वन पशुओं के द्वारा लोगों को मार डालें ॥

मिश्चियन प्रलय

और जब उसने छठवीं छाप खोली तो मैंने देखा कि एक बड़ा भूई डोल हुआ और सूरज कम्मल की नाई काला और पूरा चाँद लोहू सा हो गया। और आकाश के तारे पृथिवी पर गिर और यहां आवी से हिल कर अंजीर के पेड़ में से कच्चे फल झड़ते हैं। और आकाश ऐसा सरक गया जैसा पत्र लपेटने

सरक जाता है और हरएक पहाड और टापू अपनी २ जगह टल गया, और पृथिवी के राजा और प्रधान और सरदार और धनवान और सामर्थी लोग और हरएक दास और हरएक स्वतन्त्र पहाडों की खोहों में और चटानों में जा छिपे और पहाडों और चटानों से कहनलगे कि हम पर गिर पडो और हमें उसके मुंह से जो सिंहासन पर बैठा है और मेम्ने के क्रोध से छिपालो। क्योंकि उनके क्रोध का बडा दिन आ पहुँचा अब कौन ठहर सकता है ॥ इसके पीछे मैंने पृथिवी के चारों कोनों पर चार स्वर्ग दूत खड़े देखे वे पृथिवी की चारों वायुओं को थामे हुए थे, कि पृथिवी या समुद्र या किसी पेड पर हवा न चले। फिर मैंने एक और स्वर्ग दूत को जीवित परमेश्वर की छाप लिए हुए पूरव से ऊपर की ओर आते देखा ये वे हैं जो उस बडे क्लेश में से निकल कर आए हैं इन्होंने अपने २ वस्त्र मेम्ने के लोहू में धोकर उजले किए हैं। इसी कारण ये परमेश्वर के सिंहासन के सामने हैं मेम्ना जो सिंहासनके बीच में है उनकी रखवाली करेगा। और जब उसने सातवीं छाप खोली तो स्वर्ग में आध घडी तक मौन छा गया। और वे सातों स्वर्ग दूत जिनके पास सात तुरहियां थीं फूंकने को तैयार हुए ॥

पहिले स्वर्ग दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाल गये और पृथिवी की एक तिहाई जल गई और सब हरी घास जल गई ॥

और दूसरे स्वर्ग दूतने तुरही फूंकी और आग से जलता हुआ एक बडा पहाड सा समुद्र में डाला गया और समुद्र की एक

तिहाइ लोहू होगइ और समुद्र में की सिरजी हुई वस्तुओं की एक तिहाइ जो सजीव थी मरगई और जहाजों की एक तिहाई नाश हो गइ ॥

और तीसरे स्वर्ग दूतने तुरही फू की और एक बडा तारा जो मशाल की नाईं जलता था स्वग से टूटा और नदियों की एक तिहाइ पर और पानी के सोतों पर आ पड़ा। और उस तारे का नाम नागदौना कहलाता है और एक तिहाई पानी नागदौना सा कड़वा हो गया और बहुतेर मनुष्य उस पानी के कडवे हो जाने से मरगये ॥

और चौथ स्वग दूत ने तुरही फू की और सूरज की एक तिहाई और चाँद की एक तिहाइ और तारों की एक तिहाइ मारी गइ यहा तक कि उन का एक तिहाई अंधेरी हो गई और दिन की एक तिहाई में उजाला न रहा वैसे ही रात में भी ॥

और मैंन देखा तो आकाश के बीच में एक उकाब को उड़ते और ऊचे शब्द स यह कहते सुना कि उन तीन स्वग दूतों की तुरही के शब्दों के कारण जिनका फू कना अभो बाकी है पृथिवी के रहने वालों पर हाय हाय हाय ॥

और पाचवें स्वर्ग दूत ने तुरही फू का और मैंन स्वग से पृथ्वी पर एक तारा गिरता हुआ देखा और उसे अथाह कुड की कुंजी दी गइ। और उसने अथाह कुड को खोला और कुड म से बडी भट्‌टी का सा धूआ उठा और कुड के धूए मे सूरज और आकाश अंधेरे होगए। और उस धूए में स पृथिवी पर टिड्डीया निकलीं उन्हें पृथिवी के बिच्छूओं की सी शक्ति दी गई। और उनसे गया कि न पृथिवी की घास को न किसी हरियाली को न

किसी पेड़ को हानि पहुँचाओ केवल उन मनुष्यों को जिनके माथे पर परमेश्वर की छाप नहीं। और उन्हें मार डालने का ता नहीं पर पाच महीने तक लोगों को पीड़ा देने का अधिकार दिया गया और उनकी पीडा ऐसी थी जैसे बिच्छू के डंक मारने से मनुष्य को होती है। उन दिनों में मनुष्य मृत्यु को ढूंढेंगे और न पाएंगे और मरने की लालसा करेंगे और मृत्यु उनसे भागेगी। और उनके टीड्डियों के आकार लड़ाई के लिये तैयार किये हुये घोड़ों के से थे और उनके सिरों पर मानों सोनक मुकुट थे और उनके मुंह मनुष्यों के से थे और उनके बाल स्त्रियों के से और दांत सिंहों के से थे। और वे लोहे की सी झिलम पहिने थे और उनके परों का शब्द ऐसा था जैसा रथों और बहुत से घोड़ों का जो लड़ाई में दौड़ते हों। और उनकी पूंछ बिच्छुओं की सी थीं और उन में डंक थे और उन्हें पांच महीने तक मनुष्यों को दुख पहुचाने की जो सामर्थ थी वह उनकी पूंछों में थी। अथाह कुंड का दूत उन पर राजा था उसका नाम इब्रानी में अबद्दोन और यूनानी में अपुल्लयोन है॥

पहिली विपत बीत चुकी देखो अब इसके पीछे दो विपतें होने वाली हैं॥

और छठवें स्वर्ग दूत ने तुरही फूंकी और जो सोने की वेदी परमेश्वर के सामने है उसके सींगों में से मैंने ऐसा शब्द सुना। जो छठवें स्वर्ग दूत से जिसके पास तुरही थी कोई कह रहा है उन चार स्वर्ग दूतों को जो बड़ी नदी फिरात के पास बंधे हुए हैं खोल दे। और वे चारों दूत खोल दिए गए जो उस घड़ी और दिन और महीने और बरस के लिये मनुष्यों की एक तिहाई के मार डालने को तैयार किए गए थे। और फौजों

क सवारों की गिनती बीस करोड़ थी मैंने उनकी गिनती सुनी। और मुझे इस दर्शन में घोड़े और उनके ऐसे सवार दिखाई दिए जिनकी झिलमें आग और धूम्र कान्त और गन्ध का सी थीं। और उन घोड़ों के सिर सिंहों के सिरों के से थे और उनके मुँह से आग और धूआं और गंधक निकलती थीं। इन तीनों मरियों अर्थात् आग और धूआं और गन्धक में जो उनके मुँह से निकलती थीं मनुष्यों की एक तिहाई मार डाली गई। पर सातवें स्वर्ग दूत के शब्द देने के दिनों में जब वह तुरही फूकने पर होगा तो परमेश्वर का गुप्त मनोरथ उस सुसमाचार के अनुसार जो उसने अपने दास नबियों को दिया पूरा होगा।

फिर मैंने मन्दिर में किसी को ऊँचे शब्द से उन सातों स्वर्ग दूतों से यह कहते सुना कि जाओ परमेश्वर के कोप के सातों कटोरों को पृथिवी पर उंडेल दो॥

सो पहिले ने जाकर अपना कटोरा पृथिवी पर उंडेल दिया और उन मनुष्यों के जिन पर पशु की छाप थी और जो उसकी मूरत की पूजा करते थे एक प्रकार का बुरा और दुखदाई फोड़ा निकला॥

और दूसरे ने अपना कटोरा समुद्र पर उंडेल दिया और वह मरे हुए का सा लोहू बन गया और समुद्र में का हरएक जीवधारी मर गया॥

और तीसरे ने अपना कटोरा नदियों और पानी के सोतों पर उंडेल दिया और वे लोहू बन गये। और मैंने पानी के यह कहते सुना कि हे पवित्र जो है और जो था

तू न्यायी है और तूने यह न्याय किया। क्योंकि उन्होंने पवित्र लोगों और नबियों का लोहू बहाया था और तूने उन्हें लोहू पिलाया क्योंकि वे इसी योग्य हैं। फिर मैंने वेदी से यह शब्द सुना कि हां हे सर्वशक्तिमान् प्रभु परमेश्वर तेरे फैसले सच्चे और ठीक हैं ॥

और चौथे ने अपना कटोरा सूरज पर उंडेल दिया और उसे मनुष्यों को आग से झुलसा देने का अधिकार दिया गया। और मनुष्य बड़ी तपन से झुलस गए और परमेश्वर के नाम की जिसे इन विपतों पर अधिकार है निन्दा की और उसकी महिमा करने के लिये मन न फिराया ॥

और पांचवें ने अपना कटोरा उस पशु के सिंहासन पर उंडेल दिया और उसके राज्य पर अन्धेरा छा गया और लोग पीड़ा के मारे अपनी अपनी जीभ चबाने लगे। और अपनी पीडाओं और फोड़ों के कारण स्वर्ग के परमेश्वर की निन्दा की और अपने अपने कामों से मन न फिराया ॥

और छठवें ने अपना कटोरा बड़ी नदी फिरात पर उंडेल दिया और उसका पानी सूख गया

और सातवें ने अपना कटोरा हवा पर उंडेल दिया और मंदिर के सिंहासन से यह ऊँचा शब्द हुआ कि हो चुका। फिर बिजलियां और शब्द और गर्जना हुए और एक ऐसा बड़ा भूईं डोल आया कि जब से मनुष्य की उत्पत्ति पृथिवी पर हुई तब से ऐसा बड़ा भूईं डोल न हुआ था। और उस बड़े नगर के तीन टुकड़े हो गए और जाति जाति के नगर गिर पड़े और बड़ी बाबिल

का स्मरण परमेश्वर के यहा हुआ कि वह अपने क्रोध की जल जलाहट की मदिरा उसे पिलाए। और हर एक टापू अपनी जगह से टल गया और पहाड़ों का पता न लगा। और आकाश मे मनुष्यों पर मन मन भर के बड़े ओले गिरे और इसलिये कि यह विपत बहुत ही भारी थी लोगों ने ओलों की विपत के कारण परमेश्वर की निन्दा की॥

(हिं० बा० युहन्ना के प्रकाशित वाक्य अ० १, ७, ८, ६, १०, १६)

"नूतन सृष्टि निर्माण"

फिर मैंने नए आकाश और नई पृथिवी को देखा क्योंकि पहिला आकाश और पहिली पृथिवी जाती रही थी और समुद्र भी न रहा। फिर मैंने पवित्र नगर नई यरूशलेम को स्वर्ग से परमेश्वर के पास से उतरते देखा और वह उस दुल्हिन के समान थी जो अपने पति के लिए सिगार किए हो। परमेश्वर की महिमा उसमें थी और उसकी ज्योति बहुत ही बहु मोल पत्थर अर्थात् बिल्लौर सरीखे यशब की नाईं स्वच्छ थी नगर ऐसे चोखे सोने का था जो स्वच्छ काँच के समान हो। और उसके फाटक दिन को कभी बंद न होंगे न वहाँ रात होगी और नदी के इस पार और उस पार जीवन का पेड़ था, उसमें बारह प्रकार के फल लगते थे और फिर स्राप न होगा और परमेश्वर और मेम्ने का सिंहासन उस नगर में होगा और.. और फिर रात न होगी और उन्हें दीपक और उजाले का प्रयोजन न होगा क्योंकि प्रभु परमेश्वर उन्हें उजाला देगा और वे युगानुयुग राज्य करेंगे॥

(हिं० बा० युहन्ना के प्रकाशित वाक्य अ० २१ २२)

नई सृष्टि पर ईश्वर की कृपा

परमेश्वर का डेरा मनुष्यों के बीच में है, वह उनके साथ डेरा करेगा और वे उसके लोग होंगे और परमेश्वर आप उनके साथ रहेगा और उनका परमेश्वर होगा। और वह उनकी आँखों से सब आँसू पोंछ डालेगा और इसके पीछे मृत्यु न रहेगी और न शोक न विलाप न पीड़ा रहेगी, पहिली बातें जाती रहा।

(हिं० बा० यूहन्ना के प्रकाशित वाक्य अ० २१)

मुस्लिम-सृष्टि

वही है जिसने तुम्हारे लिए धरती की चीजें पैदा की फिर आकाश की तरफ ध्यान दिया तो सात आकाश हमवार (समधरातल) बना दिए और वह हर चीज से जानकार है।

(हिं० कु० पा० १ सूरे बक़र आ० २६)

उसी के किए से प्रात पौ फटती है और उसीने आराम के लिए रात और हिसाब के लिए सूरज और चन्द्रमा बनाये हैं। यह प्रबल बुद्धिमान के करतब हैं। और वही है जिसने तुम लोगों के लिए तारागण बनाये ताकि जगल और नदी के अंधेरों में उनसे हिदायत पाओ।

(हिं० कु० पा० ७ सूरे अनयाम आ० ६७ ६८)

तुम्हारा पालन कर्त्ता अल्लाह है जिसने छ दिन में ज़मीन और आसमान को पैदा किया फिर तख्त पर जा विराजा, वही

रात को दिन का पर्दा बनाता है, रात दिन के पीछे चली आती है और उसीने सूर्य चन्द्रमा और तारों को पैदा किया।

(हिं० कु० पा० ८ सूरे आराफ आ ५४)

और वही है जो अपनी दया के आगे खुश खबरी देने का हवा में भेजा करता है यहां तक कि वह पानी के भरे बादल उठालाती हैं तो हम किसी मुर्दा बस्ती की तरफ उस बादल को हांक देते हैं फिर बादल से पानी बरसाते हैं इसी तरह हम (कयामत के दिन) मुर्दों को निकाल खड़ा करेंगे।

(हिं० कु० पा० ८ सूरे आराफ आ० ५७)

तुम्हारा पालन कर्त्ता वही अल्लाह है जिसने छः दिन में आसमान और जमीन को बनाया फिर अर्श पर जा विराजा। हर एक काम का प्रबन्ध कर रहा है वही अव्वल मरतबा सृष्टि को पैदा करता है फिर उसको दुबारा जिन्दा करेगा। जिसने सूर्य को चमकीला बनाया और चाद को रोशन और उसकी मंजिलें ठहराई ताकि तुम लोग वर्षों की गिनती और हिसाब मालूम कर लिया करो। यह सब खुदाने मसलहत (विचार) से बनाया है।

(हिं० कु० पा० ११ सूरे यूनिस आ० ३४ ५)

अल्लाह वही है जिसने आसमान और जमीन को पैदा किया और आसमान से पानी बरसाया। फिर पानी के जरिये फल निकाले कि वह तुम लोगों की रोजी है और किश्तियों को तुम्हारे अधिकार में किया ताकि उसके हुक्म से नदी में चलें नदियों को भी। और सूरज और चन्द्रमा को जो चक्कर

खाते हैं एक दस्तूर पर तुम्हारे काम में लगाया और रात दिन को तुम्हारे अधिकार में कर दिया खुदा के अहसान को गिनना चाहो तो पूरा पूरा गिन न सकोगे। मनुष्य बड़ा अन्याई और बड़ा कृतघ्न (नाशुक्र) है।

(हिं० कु० पा० १३ सूरे इब्राहीम आ० ३२-३३ ३४)

"अल्लाह वह है जिसने आसमानों को बिना किसी सहारे के ऊँचा बना खड़ा किया (जैसा कि) तुम देख रहे हो फिर तख्त पर जा बिराजा और चन्द्रमा सूर्य को काम में लगाया कि हर एक नियत समय तक चला जा रहा है वही सब संसार का प्रबन्ध कर्ता है और वह है जिसने जमीन को फैलाया और उसमें पहाड़ और नदी बना दीं और उसमें हर तरह के फलों की दो दो किस्में पैदा कीं आसमान से पानी बरसाया फिर अपने अन्दाजे से नाले बह निकले।

(हिं० कु० पा० १३ सूरे राद आ० २ ३-१७)

"क्या जो लोग इन्कार करनेवाले हैं उन्होंने नहीं देखा कि आसमान और जमीन दोनों का एक पिंडा सा था। सो हमने (उसको तोड़कर) जमीन और आसमान को अलग अगल किया और पानी से जानदार चीजें बनाई तो क्या इस पर भी लोग ईमान नहीं लाते। और हमही ने जमीन में पहाड़ रक्खे ताकि लोगों को लेकर झुक न पड़े और हम ही ने चौड़े चौड़े रास्ते बनाये ताकि लोग राह पावें। और हमही ने आसमान को बचाव की छत बनाया और वे आसमानी निशानियों को ध्यान में नहीं लाते। और (हे पैगम्बर) हमने तुमसे पहिले

किसी आदमी को अमर नहीं किया पस अगर तुम मर जाओगे तो क्या यह लोग हमेशा रहेंगे ?

(हिं० कु० पा० १७ सूरे अम्बिया आ० ३० से ३४)

"यह हिकमत वाली किताब की आयतें हैं। उसीने आसमानों को जिन को तुम देखते हो बगैर खम्भों के खड़ा किया है और जमीन में पहाड़ों को डाल दिया कि तुम्हें लेकर जमीन झुक न पड़े और उसमें हर किस्म के जानदार फैला दिये और आसमान से पानी बरसाया फिर जमीन में हर तरह के उम्दह जोड़े पैदा किए। यह खुदा की पैदायश है पस तुम मुझे दिखाओ कि खुदा के सिवाय जो पूजित तुम लोगों ने बना रक्खे हैं उन्होंने क्या पैदा किया ? यह जालिम खुली गुमराही में हैं।

(हिं० कु० पा० २१ सूरे लुकमान आ० २ १-११)

"और जो अल्लाह है जो हवायें चलाता है फिर हवायें बादल को उभारती हैं। फिर बादल का मुर्दा शहर की तरफ हाँका। फिर हमने मह के जरिये से जमीन का उसके मरे पीछे जिन्दह किया है। इसी तरह मुर्दों का उठाना है। ...

जिसने हमको अपनी कृपा से ठहरने के घर में उतारा। यहां हमको कोई दुःख न पहुँचायेगा और न यहाँ हमको थकान आवेगी।

(हिं० कु० पा० २२ सूरे फ़ातिर आ० ६ ३५)

"इसके बाद दो दिन में उस (धुँयें से) सात आसमान बनाये।

(हिं० कु० पा० २४ सूरे हमीम सिजदा आ० १२)

फिरिश्तों को आज्ञा दी कि आदम के आगे झुको तो झुक गये मगर वह इबलीस झुकनेवालों में न हुआ। पूछा कि तुमको किस चीज ने माथा नवाने से रोका-बोला मैं आदम से अच्छा हूँ मुझको तूने आगसे पैदा किया और उसको मिट्टी से पैदा किया। (हि० कु० पा० ८ सूरे आराफ आ० १०। ११। १२)

(हमने आदम से कहा कि) हे आदम तुम और तुम्हारी स्त्री बैकुण्ठ में रहो और जहाँ से चाहो खाओ मगर इस दरख्त के पास न फटकना नहीं तो तुम पापी होगे। फिर शैतान ने मियां बीबी दोनों को बहकाया ताकि उनकी याद करने की चीजें जो उनसे छिपी थीं उन्हें खोल दिखावें और कहने लगा तुम्हारे पालन कर्ता ने जो इस दरख्त (के फल खाने) से तुम को मना किया है तो इसका कारण यही है कि कहीं ऐसा न हो कि तुम दोनों फिरिश्ते बन जाओ या दोनों अमर बन जाओ और उसने कसम खाई कि मैं तुम्हारा भलाई चाहने वाला हूँ। गरज धोखे से उनको (सुहबत प्रसंग के लिए) मायल कर लिया तो ज्योंही उन्होंने दरख्त चखा तो दोनों के पर्दे करने की चीजें उनको दिखाई देने लगी, और अपने ऊपर पत्ते ढाँकने लगे उनके पालनकर्ता ने उनको पुकारा। क्या हमने तुमको इस वृक्ष की मनाई नहीं की थी और तुमसे नहीं कह दिया था कि शैतान तुम्हारा खुला दुश्मन है। तुम (बैकुण्ठ से) नीचे उतर जाओ तुममें एक का एक दुश्मन है। और तुमको एक खास वक्त तक जमीन पर रहना होगा। हे आदम के बेटो? हमने तुम्हारे लिये पोशाक उतारी है जो तुम्हारे परदे की चीजों को छिपाये।

(हि० कु० पा० ८ सूरे आराफ आ० १९।२०।२१।२२।२४।२६)

ऐसे तमाम लोगों के लिये नरक का वादा है। उसके सात दरवाजे हैं हर दरवाजे के लिये नरक वासियों की टोलिया अलग अलग होंगी।

(हि० कु० पा० १४ सूरे हजर आ० ४३ ४४)

मुस्लिम प्रलय

और (हे पैगम्बर तुमसे पहाड़ों की बाबत पूछते हैं कि कयामत के दिन इनका क्या हाल होगा) तो कहो कि मेरा पालनकर्त्ता इनको उड़ा देगा। और जमीन को मैदान हम वार कर छोड़ेगा। जिसमें तू न तो कहीं मोड़ देखेगा और न कहीं ऊँचा नीचा।

(हिं० कु० पा० १६ सूरे ताहा आ० १०५ १०६-१०७)

"जब कि आसमान फट जाये। और जब सितारे झड़ पड़ें। और जब नदियाँ बह चलें। और जब कब्रें उखाड़ दीजायें।

(हिं० कु० पा० ३० सूरे इन्फितार आ० १ २ ३-४)

जिस वक्त सूरज लपेट लिया जाय। और जिसवक्त तारे झड़ पड़ें। और जिस वक्त पहाड़ चलने लगें। और जिस वक्त दरिया पाट दिये जावें। और जिस वक्त कर्मों का लेखा खोला जायगा। और जिस वक्त आसमान की खाल खींची जायगी।

(हिं कु० पा ३० सूरे तक्वीर आ० १ २ ३ ६ १० ११)

"जब कि जमीन बदल कर दूसरी तरह की जमीन करदी जायेगी और आसमान और (सब) लोग एक खुदा जबरदस्त के सामने निकल खड़े होंगे।

(हिं कु० पा० १३ सूरे इब्राहीम आ० ४८)

जैसे छिपे हुए मोती और ऊँचे बिछौने। हमने हूरों की एक खास सृष्टि बनाई है। फिर इनको क्वारी बनाया है प्यारी प्यारी समान अवस्थावाली तारों के टूटने के समय की कसम है। और समझो तो यह बड़ी कसम है।

(हिं कु पा० २७ सुरे वाकिया आ० ४ ५ ८ ६ १५ १६ १७ १८ १६ २०—२१ २२-२३-३५ ३६ ३७ ७५-७६)

यह उनके कर्म का पूरा बदला है। (यानी रहने को) बाग और (खाने को) अगूर और नौजवान स्त्रियाँ हम उम्र। और छलकते हुए प्याले। जब कि जिब्रील और फिरिश्ते पाति की पाति खड़े होंगे।

(हि० कु० पा० ३० सुरे नबा आ० २६ ३२ ३३ ३४ ३८)

मुस्लिम-नरक

वैकुण्ठ वासी लोग नरक वासियों को पुकारेंगे कि हमारे पालन कर्त्ता ने जो हमसे प्रतिज्ञा की थी हमने तो सच्चा पाया तो क्या जो तुम्हारे पालनकर्त्ता ने वादा किया था तुमने भी सच्चा पाया। वह कहेगा 'हा' इतने में पुकारनेवाला पुकार उठेगा कि जालिमों पर खुदा की लानत वैकुण्ठ और नरक के बीचम एक आड होगी यानी आराफ उसके सिरे पर कुछ लोग हैं जो हर एक को उनकी शक्लों से पहिचानते हैं। वैकुण्ठ वासियों को पुकार कर सलामालेक करेंगे। जब उनकी नजर नरक वासियों की तरफ जा पड़ी तो दुआ मागने लगे।

(हिं० कु० पा० ८ सूरे आराफ आ० ४४ ४६ ४७)

उस दिन तुम सामने लाये जाओगे और तुम्हारी बात छुपी न रहेगी। सो जिसकी किताब उसके दाहिने हाथ में दी जावेगी वह कहेगा लो मरा कर्म लेखा पढो। और वह शख्श जिसको उसकी किताब बायें हाथ में दी जावेगी वह कहेगा अफसोस मुझको मेरा यह कर्म लेखा न मिला होता।

(हि० कु० पा० २६ सूरे हाका आ० १६-१७-१८-१६-२५)

"कयामत के दिन सारी जमीन उसकी मुट्ठी म होगी और सब आसमान लपटे हुये उसके दाहिने हाथ मे होंगे और सूर (नरसिंहा) फूका जायगा तो जो आसमानों में और जमीनों में है बेहोश होयगे मगर जिसको खुदा चाहे (बेहोश न होगा) फिर दुबारा सूर (नरसिंहा) फूका जायगा। फिर वे खड़े हो जायँगे और देखने लगेंगे। और जमीन अपने पालन कर्ता के नूर से चमक उठेगी और किताबें रखदी जायगी और उनमें पैगम्बर गवाह हाजिर किये जायगे और उनमें इन्साफ के साथ फैसला कर दिया जायगा। और उन पर जुलम न होगा।

(हि० कु० पा० २४ सूरे जुमुर आ० ६७-६८-६६)

मुस्लिम कर्म सिद्धान्त

जो अभागे हैं वह नरक में होंगे वहा उनको चिल्लाना और दहाडना होगा। जब तक आकाश व जमीन है। और जो लोग भाग्यवान हैं वह बैकुण्ठ में होंगे जब तक आस्मान और जमीन है।

(हि० कु० पा० १२ सूरे हूद आ० १०६ १०७ १०८)

कयामत के दिन इन्साफ

'और जब सूर (नरसिंहा) फूका जायगा तो एकदम से कब्रों से (निकल निकल) अपने पालन कर्ता की तरफ चल खड़े होंगे।

(हि० कु० पा० २३ सूरे यासीन आ० ११)

"फिर इसके बाद तुमको मरना है। फिर क़यामत के दिन तुम उठा खड़े किये जाओगे। और हमने तुम्हारे ऊपर सात राह (आसमान) बनाये और पैदा करने में हम अनाड़ी न थे।

(हि० कु० पा० १८ सूरे मोम्नून आ० १२-१६-१७)

"जिस दिन कब्रों से दौड़ते निकलेंगे जैसे किसी निशानों पर दौड़ते हैं। जिल्लत के मारे निगाह नीची किये होयँगे य वह दिन है जिसका उनसे वादा है।

(हि० कु० पा० २१ सूरे मारिज आ० ४३-४४)

"अल्लाह पहली दफा पैदा करता है फिर उसको दुहरावेगा फिर उसकी तरफ फिर जाओगे। जिस दिन कयामत उठेगी अपराधी निराश हाकर रह जावेंगे। फिर जो लोग इमान लाये और उन्होंने सुकर्म किये वह बाग (बैकुण्ठ) में होंगे उनकी आवभगत हो रही होगी।

(हि० कु० पा० २१ सूरे रूम आ० ११-१२-१५)

"और आसमान फट जायगा और वह उस दिन सुस्त हो जायगा और फिरश्ते किनारों पर होयंग और उस दिन तुम्हारे पालनकर्ता के तख्त का आठ फ़िरिश्ते अपने ऊपर उठाये होंगे।

उस दिन तुम सामने लाये जाओगे और तुम्हारी बात छुपी न रहेगी। सो जिसकी किताब उसके दाहिने हाथ में दी जावेगी वह कहेगा लो मेरा कर्म लेखा पढो। और वह शख्श जिसको उसकी किताब बायें हाथ में दी जावेगी वह कहेगा अफसोस मुझको मेरा यह कर्म लेखा न मिला होता।

(हि० कु० पा० २६ सूरे हाका आ० १६–१७–१८–१६–२५)

"कयामत के दिन सारी जमीन उसकी मुट्ठी में होगी और सब आसमान लपटे हुये उसके दाहिने हाथ में होंगे और सूर (नरसिंहा) फूका जायगा तो जो आस्मानों में और जमीनों में है बेहोश होयगें मगर जिसको खुदा चाहे (बेहोश न होगा) फिर दुबारा सूर (नरसिंहा) फूका जायगा। फिर वे खड़े हो जायँगे और देखने लगेंगे। और जमीन अपने पालन कर्ता के नूर से चमक उठेगी और किताबें रखदी जायगी और उनमें पैगम्बर गवाह हाजिर किये जायंगे और उनमें इन्साफ के साथ फैसला कर दिया जायगा। और उन पर जुलम न होगा।

(हि० कु० पा० २४ सूरे जुमुर आ० ६७–६८–६६)

मुस्लिम कर्म सिद्धान्त

जो अभागे हैं वह नरक में होंगे वहां उनको चिल्लाना और दहाड़ना होगा। जब तक आकाश व जमीन है। और जो लोग भाग्यवान हैं वह बैकुण्ठ में होंगे जब तक आसमान और जमीन है।

(हि० कु० पा० १२ सूरे हूद आ० १०६ १०७ १०८)

खुदाकी मक्कारी—

"और यहूदने (ईसा से) मकर किया और अल्लाह ने मकर किया आर अल्लाह मक्कारों म अच्छा मक्कार है।

(हिं कु० पा० ३ सूरे आलइमरान आ० ११)

"काफिर मकर करते थे और अल्लाह भी फरेब करता था। और अल्लाह सब मक्कारों में अच्छा मक्कार है।

(हिं० कु० पा० ९ सूरे अनफाल आ० १०)

मुसलमानों तुम को क्या होगया है कि जब तुम से कहा जाता है कि जहाद के लिये निकलो तो तुम जमीन पर ढेर हुए जाते हो अगर तुम न निकलाग तो खुदा तुमको बड़ी दु खदाई मार देगा और तुम्हारे बदले लोग लाकर मौजूद करेगा।

(हि० कु० पा० १० सूरे तोबा आ० ३८ ३९)

"जब कि खुदाने तुमको थोड़े काफिर दिखलाये, और अगर उन्हें तुम को बहुतकर दिखाता तो तुम जरूर हिम्मत हार देते मगर खुदाने बचाया और जब तुम एक दूसरे से लड़मरे काफिरों को तुम मुसलमानों की आँखों में थोड़ा कर दिखलाया ताकि खुदा को जो कुछ करना म जूर था पूरा कर दिखाये।

(हिं० कु० पा० १० सूरे अनफाल आ० ४४ ४५)

"अपने आस पास के काफिरों लडो और चाहिये कि वह तुम से सख्ती मालूम करे।

(हिं० कु० पा० ११ सूरे तोबा आ० १२३)

"बेशक खुदा उन लोगों को प्यार करता है जो उसकी राह में कतार बाँध कर लडते हैं।

(हिं० कु० पा० २८ सूरे सफ आ० ४)

'तो जब (लड़ाई में) काफिरों से तुम्हारी मुठ भेड़ हो तो गर्दनें काटो यहाँतक कि जब खूब अच्छी तरह उनका जोर तोड लो तो मुश्कें कसलो। फिर पीछे यातो भलाई रखकर छोड दो या बदला लेकर यहाँतक कि (दुश्मन) लड़ाई के हथियार रखदे। ऐसा ही हुक्म है। और खुदा चाहता तो उनसे बदला लेलेता लेकिन यह इस लिये हुआ कि तुम में से एक को एक से आजमाये, और जो लोग खुदा की राह में मारे गये उन के कामों को खुदा अकारथ नही होंने देगा।

(हि० कु० पा० २६ सूरे मुहम्मद आ० ४)

खुदा का द्वेषभाव

जो मनुष्य अल्लाह् का दुश्मन हो और उस के फिरिश्तों का और उसके रसूलों का और जिब्रील का और मीकाईल (फिरिश्ते) का अल्लाह भी ऐसे विधर्मियों (काफिरों) का दुश्मन है।

(हिं० कु० पा० २ सूरे बक़र आ० ९८)

अल्लाह् अन्याइयों को शिक्षा नहीं देता।

(हि० कु० पा० २ सूरे बक़र आ० २५८)

अल्लाह काफिरों को उपदेश नहीं दिया करता।

(हिं० कु० पा० २ सूरे बक़र आ० २१४)

अल्लाह अन्याइयों को हिदायत नहीं दिया करता।

(हिं० कु० पा० ३ सूरे आलइमरान आ० ८२)

मुसलमानों को चाहिये कि मुसलमानों को छोड़ कर काफिरों को अपना मित्र न बनावें और जो वैसा करेगा तो उससे अल्लाह से कोई सरोकार नहीं।

(हिं० कु० पा० ३ सूरे आलइमरान आ० २८)

और यह मजूर था कि अल्लाह मुसलमानों का शुद्ध करदे और काफिरों का जोर तोड़ दे।

(हिं० कु० पा० ३ सूरे आलइमरान आ० १४१)

खुदाने उन लोगों के ऐसे खयालात इसलिए कर दिये हैं कि उनके दिलों में दुख रहे और अल्लाह ही जिलाता और मारता है।

(हिं कु० पा० ४ सूरे आलइमरान आ० १२६)

खुदा काफिरों को मुसलमानों पर हरगिज जीत न देगा। काफिर खुदा को धोखा देते हैं हालाकि खुदा उन्हीं को धोखा देरहा है।

(हिं० कु० पा० ५ सूरे निसा आ० १४१ १४२

किसी ईमानवाले का जायज नहीं कि ईमानवाले को मार डाले मगर भूलसे और जो ईमानवालेका भूलसे मारडाले तो एक ईमानवाला गुलाम छोड़ दे, और कत्ल हुए के वारिसों को खून

की कीमत दे और जो मुसलमान को जानबूझ कर मारडाले तो उसकी सजा नरक है जिसमें वह हमेशा रहेगा और उसपर खुदा का कोप होगा।

(हि० कु० पा० ५ सूरे निसा आ० ९२ ९३)

हमने उनमें दुश्मनी और ईर्षा कयामत के दिन तक के लिए लगादी।

(हिं० कु० पा० ६ सूरे मायदा आ० १४)

जो लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर स लड़ते और फिसाद की गरज से मुल्क में दौड़े दौड़े फिरते हैं उनकी सजा तो यही है कि मारडाले जायँ या उन को सूली दी जावे या उनके हाथ पाँव उल्टे काट दिये जाय या उनको देश निकाला दिया जाय।

(हिं० कु० पा० ६ सूरे मायदा आ० ३३)

जिसको खुदा सीधी राह दिखाना चाहता है उसक दिलको इस्लाम के लिए खोल देता है और जिस शख्स को भटकाना चाहता है उसके दिल को तगकर देता है।

(हिं० कु० पा० ८ सूरे अनयाम आ० १२६)

अल्लाह नापाक को पास से अलग करे और नापाक को एक दूसरे के ऊपर रखकर उन सब का ढेर लगाय फिर उस ढेर को नरक में झोंक दे।

(हिं० कु० पा० ९ सूरे अनफाल आ० ३८)

जिनको खुदा राह दिखाये वही राह पाते हैं और जिनको वह गुम राह करे वही लोग घाटे में हैं। हमने बहुतेरे जिन्न

"(हे पैग़म्बर) तू कह कि खुदा मुल्क का मालिक है, जिसको चाहे राज्य दे और जिस से चाहे छीन ले और तू जिसको चाहे इज्जत दे और जिसे चाहे बर्बादी है खैर तेरे ही हाथ में है। निस्सन्देह तू हरचीज पर सर्वशक्ति मान है। तूही रात को दिन में शामिल करदे और तू दिन को रात में शामिल करदे और तू बेजान से जानदार और जानदार से बेजान करदे और जिसको चाहे बे हिसाब रोजी दे।

(हि० कु० पा ३ सूरे आलइमरान आ० २५ २६)

"अल्लाह जिस को चाहता है बे हिसाब रोजी देता है।

(हिं० कु० पा० ३ सूरे आलइमरान आ० ३६)

"और वह चाहे तुम को मेट दे और दूसरों को ला बसाये और अल्लाह ऐसा करने पर शक्ति शाली है।

(हिं० कु० पा० ५ सूरे निसा० आ० १३३)

"(हे पैगम्बर) इन लोगों को सीधामार्ग पर लाना तुम्हारे आधीन नहीं बल्कि अल्लाह जिस को चाहता है सीधे मार्ग पर लाता है।

(हि० कु० पा० ३ सूरे बकर आ० २७२)

"जो कुछ आसमानों में और जो कुछ जमीन में है अल्लाह ही का है फिर जिसको चाहे बरूसे और जिसको चाहे सजा दे, अल्लाह हर चीज पर शक्ति रखता है।

(हिं० कु० पा० ३ सूरे बकर आ० २८४)

'और आसमान व जमीन का अख्तियार अल्लाह ही को

है और अल्लाह हर चीज पर शक्ति रखता है।

(हिं० कु० पा० ४ सूरे आलइमरान आ० १८६)

"और कोई शख्स बे हुक्म खुदा मर नहीं सकता।

(हिं० कु० पा० ४ सूरे आलइमरान आ १४५)

"हे पैगम्बर तुम्हारा पालनकर्त्ता चाहता तो जितने आदमी जमीन की सतह में हैं सब के सब ईमान ले आते। और किसी शख्स के अधिकार में नहीं है कि बिना हुक्म खुदा के ईमान ले आवे।

(हिं० कु० पा० ११ सूरे यूनिस आ० ९९ १००)

"और हम ही जिलाते और हम ही मारते हैं और हम ही उनके धन दौलत के वारिस होंगे।

(हिं० कु० पा १४ सूरे हजर आ० २३)

"हम को जब किसी गाँव का मार डालना मन्जूर होता है हम उसके खुश हाल लोगों को आज्ञा देते हैं। फिर वह उसमें बे हुक्मी करते हैं। फिर हम उस बस्ती को मार कर तबाह कर देते हैं। और नूह के बाद हमने कितनी बस्तियों को मार डाला।

(हिं० कु० पा १५ सूरे बनी इसराइल आ० १६ १७

"और जो शख्स तौबा करे और ईमान लाये और नेक काम करे फिर सच्ची राह पर (कायम) रहे तो हम उसके क्षमा करने वाले हैं।'

(हिं० कु० पा १६ सूरे ताहा आ० ८२)

का मुख्य ईश्वर ब्रह्मा, शिव पुराण का मुख्य ईश्वर शिव और देवीभागवत म सृष्टिकर्त्री प्रकृतिदेवी मुख्य मानी गई है। साम्ब पुराण में सृष्टिकर्त्ता सूर्य, कालिका पुराण में ब्रह्म और आत्मपुराण में आत्मा ही ईश्वर सृष्टि कर्त्ता रूप से दर्शाया गया है। इन में भी कहीं-कहीं तो आदि पुरुष रूप में ब्रह्म दर्शाया गया है और ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, प्रकृतिदेवी आदि उसी क आविष्कार या अवतार हैं, जरा गहरा विचार करने से ऐसा मालूम पड़ता है। वस्तुत अवतार वाद का विकास करने के लिए ही पुराणा की रचना की गई है ऐसा कहें तो भी असत्य न होगा। इन अवतारों की कुरान मे बताये हुए खुदा के फिरस्तों के साथ और बाइबल मे बताये हुए यहोवा को सात आत्मा के साथ तुलना करे तो लगभग तीनों का समन्वय एक समान हो जाता है। जैनशास्त्र में बताये हुए देवों और इन्द्रों के साथ भी इन अवतारों की एकवाक्यता हो सकती है। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण म गोलोकवासी कृष्ण के मुख से वीणा पुस्तक धारिणी सरस्वती, मन स महालक्ष्मी, बुद्धि स अस्त्र शस्त्र धारिणी मूल प्रकृति आदि प्रकट होने की बात लिखी है उसे जैन शास्त्र में प्रदर्शित देवता की वैक्रिय शक्ति का प्रभाव मान लें तो सब बातें ठीक घटित हो जाती हैं। जैन शास्त्र में तो कृष्ण महाराज को वैक्रिय शक्तियुक्त माना गया है। वैक्रियशक्ति से हजारों, लाखों या करोड़ों गोपियाँ बनानी हों तो बना सकते हैं। मुखसे सरस्वती और मन से महालक्ष्मी देवी प्रकट करनी हो तो की जा सकती हैं, विषय क्रीड़ा करनी हो तो वह भी की जा सकती है और रासलीला भी रची जा सकती है। यह सब प्रक्रिया देवकोटि की है, ईश्वर कोटि की नहीं। विषय क्रीड़ा

करने वाले और रासलीला रचने वाले को भी ईश्वर कोटि में गिनना उसके भक्तों की अंधश्रद्धा के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। खुदा और यहोवा को ब्रह्म के समान निरञ्जन निराकार जगद्व्यापक मानकर सर्वसामर्थ्यवान् मानें वहाँ तक तो वे ईश्वर कोटि में रह सकते हैं—किन्तु जब उन्हें सृष्टिकार्य में प्रवृत्त करते हैं—एक वर्ग के उद्धारक और दूसरे के घातक, भक्तों के रागी और प्रतिपक्षियों के द्वेषी, युद्ध की प्रेरणा करने वाले या उपदेश करनेवाले, भक्तों की वृत्ति म संकुचितता पैदा करनेवाले या पशुबलि चाहनेवाले मानते हैं तब खुदा या यहोवा ईश्वर कोटि में नहीं रह सकते किन्तु स्पष्टतया वे देवों में भी उच्च कोटि के देव न रहकर हल्की जात क देवों की कोटि मे आजाते हैं। 'देवाण मनसाए' इस जैनागम प्रतिपादित वाक्यानुसार देव मन में जो धारते हैं वह कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं अर्थात् मन मे इच्छा हुई कि शीघ्र ही वह कार्य हो जाता है। इस हिसाब स बाईबल और कुरान म जो यह कथन है कि ६ दिन तक दृष्टि बनाई और सातवें दिन आराम किया वह जैन दृष्टि से अनुचित नहीं है। इतनाही नहीं किन्तु जैन दृष्टि से छ दिन तो क्या, छ घण्टे या छ मिनिट या छ सेकण्ड में भी देव सृष्टि बना सकते हैं यह देवता की शक्ति है। अत खुदा यहोवा या इनके फिरस्तों का देव कोटि में गिनें तब ऊपर की बात ठीक घटित हो जाती है। उन्हें ईश्वर कोटि में गिनकर उनक द्वारा युद्ध का उपदेश कराकर रागद्वेष का कार्य कराना, निरा विचार शून्यता या अज्ञता के सिवाय अन्य क्या हो सकता है? सुज्ञेषु कि बहुना?

दरज्जाना ह अमशास्पन्दो, रोशन यहेशत, फरतु आस्मान, खोरशेद, माहतार, सेतारा, पवन, हवा, पाणी, जमीन, झाड पान, गोसपन्द धातु अने माणसो ने पेदा कर्या छे ॥

त० खो० अ० दोआनाम् सेतायशन

तेणे अशोलोकोना फरोहरो पेदा कीधा, जेओ आस्मान, पाणी, झाडपान, पांच जातना गोस्पन्दो तथा गर्भस्थान ना अन्दर बचाओनी जालवणी करे छेः जेओनी मदद थी खोरशेद, चन्द्र तथा सेताराओ पोताना राह ऊपर चाले छे।

त० खो० अ० फरवरदीन रोजनी सेतायश

ईश्वर की आज्ञा से चन्द्र बढ़ता है और घटता है

माहताब दादार अहुरमज्दना हुकम थी पन्दर दहाड़ा वधे छे अने पन्दर दहाड़ा घटे छे।

त० खो० अ० माहबोख्तार नीआएश

तमाम न्यामतो नो बखसनार अहुरमज्द छे एवो हूँ एकरार करू छु।

त० खो० अ० नामे अवधहे मजद

जमयादयज्द धरती ऊपर मवक्कल छे, अने ते धरती ऊपर दादार अहुर मजदे बावीस सो चमालीस २२४४ पहाडो पैदा कीधा।

त० खो० अ० जम्याद यश्त

नूरमन्द, खोरेहमद सर्वज्ञ, साहेबो नो साहेब, पादशाहो ना पादशाह, कुल खलकतनो पेदाकरनार, रोजी रजक आपनार,

शक्तिवान्, अनन्त बचेस आपनार रहेमवाला, डहापण वाला, पाक पेदाकरनार, ग्दार अहुरमजदनी हुँ सतायश करू छु ।

त० खो० अ० खोरशेद नीआयश

अहुनवर तनने बचावे छे, वामदादने हुँ नमस्कार करू छु, दुष्ट अहेरेमनने, एशमदेव ने तथा तमाम बुरीशक्तिओ न तोडवा ने माटे अहुरमजद ने हुँ नमाज अर्पण करू छु ।

त० खो० अ० होशबाम

जो मजद ! मारी मददेआव ? हु एकज खुदाने माननारो छु, एकज खुदाने माननारो जरथोस्ती धर्म पालनारो छु ।

त० खो० अ० नमसे अर्वघहे कउ

अहुरमजद नो पेदा कीधेलो वहेरामयजद मीनो यजदोमा सौथी फतेहमन्द छे अन कोई बी सकटनी वखते तेनी मदद चाहे छे, तेनु सकट ते टालेछे, अने तेने फतेह आपवा माटे ते जुदे जुदे वखते जुदा जुदा, रूपमा आवे छे ।

१-सुरानुमा पवनना रूपमा उडतो
२—गोधाना रूपमा
३—घोड़ाना रूपमा
४—ऊटना रूप मा
५—सुवरना रूप मा
६—भरजुवान माणसनारूपना
७—वारघनदपची ना रूपमा
८—मेंढाना रूप मा
९—बकरा ना रूप मा
१०—पहेलवान ना रूप मा

त० खो० अ बहेराम यश्त

ओना दु ख ने टालनार छे ? त्यारे अहुरमजदे जमाव आप्यो के मारा अने अमशास्पन्दो ना नामो घणाज हिम्मत आपनार, फतेहमन्द, वेरी ने मारनार, तन्दरोस्ती आपनार, अने पापीओ ना दुखोने टालनार छे।

त० खो० अ० होरमजद यस्त

अशीषवन्ध नारी फरेश्तो छे, ते दोलत, खजाना अने सुख ऊपर मवक्कल छे एने अहुर मजदनी दीकरी, अमशास्पन्दोनी बेहेन, असपन्दार मद अमशास्पन्द (नारी फरेश्ता) नी दीकरी अने महेर यजद, शरोश यजद, अने रश्नुयजदनी बेहेन अनभली माजदयस्नी दीन नी बेहेन कहीछे।

त० खो० अ० अशीश वघ यस्त

भला वृद्धि करनार, महेरबान दादारनो हु सेपास गुजारी करू छु, के जेणे तु शहेरेवर न पेदा कीधो, जे गेती नी दुनिया मा धातुओ ऊपर मवक्कल छे। शहेरेवरनी मारफते सोना तथा रूपानो, तेमज जमीन खेडवाने तथा दुश्मनने मारवाने माटे ना हथियारो ने माटे वपराता लोह खण्ड नो वधारो थाय छे।

त० खो० अ० शहेरेवर रोजनी सेतायश

आगला वखत मा हु जेवी काई होऊ, हवे पछीना जमाना मा हु जेवी काई थाऊ, इरान ने लगतो होऊ, के बीजा कशाने लगतो होऊ तेमा तु गुवाद मारी यारीए पहोच।

त० खो० अ० गुवादरोजनी सेतायश

कायम जमाना सुधी ते सेतायश करवा लायक छे, तेने थी खोरेद राशनी तथा आशानीनु मूल छे। तेने थी, बे किनार

जमानो छे, ते पेदायश नो पेन्र करनार, रक्षण परवार, दुख मी बचावनार अशो तेमज दरवन्द ने पवित्र करणार, तेओने हमेश सुधी खुशाल राखनार, तेओनी करणे प्रमाणी तेओने बदलो आपनार छे तारी आशा तथा मरजीने लीधे आसमान जमीन अने हरेक पेदायश शणगार पामेली छे।

त० खो० अ० दश्प महेरोजनी सेतायश

आ दुनिया मा व्यवस्थाने माटे, तु सरोश ने सौ थी खुब-सूरत, सौ थी घणा बलवालो, तथा दरुज ने मारनार पैदा कर्यो छे। तारा प्रताप जोर तथा खोरेहने लीधे इनसान ना तन तथा रवाननी पासबानी थाय छे।

त० खो० अ० सरोश रोजनी सेतायश

अशो शरोष बनद मुकद्देश नरनारीओनो बचाव करे छे। ते ऐशम याने गुस्सा ना देव ने मारी हटाडे छे।

त० खो० अ० शरोष बस्त बडीनी नीरग

ईरान नो पक्षपात अने श्राप

ईरानी नहीं सेवा बर पादशाहो हमेशा हारेला तथा मार खाधेला थई ने हेठे पड जो।

त० खो० अ० नामे-खाधर

वे खोरेहनी बरकत थी अहुरमजदे पुष्कल नूरमन्द आबादी करनारी पेदायशो बनावी अने जेने लीधे रस्ताखेजने वखते गुजारेला पाछा सजीवन थशे। जींदगी अने अमरपणु आवशे

अने दुनिया तररो ताजगी वाली थशे। ते वखते दुनिया नं हानि पहोंचाड़वान माटे दरून पोतानी कोशेष मा निष्फल थशे।

स० खो० अ० जम्याद यश्त

अशो जरथोश्ते होरमजद ने पूछ्यु के मने तु जणाव के रवान ने शाथी छुटकारो मलीशके ?

होरमजदे जवाब आप्यो के पहेलु वहेशत मा नवातु मेलववु माटे हु होरमजद तथा अमशास्पन्दों ना हस्ती अने बहेश्त तथा दोजख तथा कयामत तथा तन पसीन तथा चिन्वदपुल अथवा हिसावविषे तथा अहेरेमन, देवो तथा दोजखनो मार खाधेल दरवन्दोनी नीस्ती थावे वेगुमान रहेवु अने बीजु रास्तराह अख्त्यार करवो, त्रीजु शुक्रगुजारी करवी, चोथु मनशनी थी शुरुआत करवी, पाचमु ए जे पोताने लायक नहीं होय व कोई बी शख्सना सम्बन्ध मा करवु नहीं।

स० खो० अ० बनाम यजद

अहुरमजद नो डर राखी ने काम कर जो, नेक अने रास्ती नी राहना काम करवानु चालु राखजो, जेथी तमारू रवान मुक्ति पामे।

स० खो० अ० बनामे यजद

सब भला विचारो, भला सखुनो तथा भला कामो सारी बुद्धि थी कराय छे अने ते आपण न वहेशत तरफ लई जाय छे, सर्व भुडा विचारो, तथा भुडा सखुनो तथा भुडा कामो

सद्बुद्धि थी करातां नथी, अने ते आपण ने दोजख तरफ लई जाय छे।

त० मो० श० दोया थीस हुमत

अने जे कोई मुसाफरीए जाय छे तेणे पोतानु खावानु लई जवु जोइये, तेज प्रमाणे मघलाओए गेती नी दुनिया मा थी मीनोई दुनियाने माटे नो आरास्ता कीधेलो हदीओ लइ जवा जोइए के जेथी रवान हलाक थाय नहीं।

त० मो० श० दनामे मजद

समालोचना (पारसी सृष्टि)

हिन्दुओं के अवतार, मुस्लिम खुदा के फरिश्ता, क्रिश्चियन यहोवा के सभासद, और पारसी अहुरमजद के अमशास्पन्द लगभग एक कक्षा में रहनेवाले अथवा एक स्कूल के विद्यार्थियों के समान सदृशता धारण करने वाले हैं। जैनो के इन्द्र के लोकपालों के साथ इनकी समानता की जावे तो कितने ही अंशों में हो सकती है। सृष्टि के सम्बन्ध में चारों की कार्यप्रणाली में बहुत अन्तर है। अवतार तो स्वयं अपने आप गृहस्वामी की भांति सृष्टि का कार्य करते हैं। खुदा और यहोवा कितने ही स्थलों में स्वयं कार्य करते हैं और कितने ही स्थलों में फिरश्ताओं के द्वारा आज्ञामात्र में कार्य करवाते हैं। जब कि अहुरमजद ने खुद पृथ्वी जलादि को आज्ञा कहीं भी नहीं की है किन्तु अमशास्पन्दों को उत्पन्न किया और अमुक अमुक कार्यों का अधिकार उन्हें सौंप दिया, उसके अनुसार अमशास्पन्द ही सृष्टि कार्य के अधिष्ठाता बने हैं। कुरान और बाइबल में जिस

प्रकार खुदा और यहोवा ने बारम्बार मनुष्य समाज क सम्पर्क में आकर अपनी शक्ति का परिचय कराने में आत्मप्रशंसा एक को बचाने की दूसरे को मारने की, शत्रु मित्रभाव फैलाने की, बलि लेने की लड़ाई का मार्ग बतलाने की लौकिक बातें जैसी की हैं वैसी अहूरमजद के द्वारा अपने मुख से कहीं पर कही गइ सुनने में नहीं आती है। किन्तु अहुरमजद के भक्तों ने भक्तिवश स्तुति करते हुए अहुरमजद की महिमा का गान किया है तथा अपने को और ससार को उत्पन्न करने का वर्णन किया है। मानवीय स्वार्थ वृत्ति को तृप्त करने क लिए अमशास्पन्दों के सिवा चन्द्र, सूर्य, नदी, अग्नि आदि की स्तुति करते हुए किसी क पास से सोना चादी तो किसी के पास स लड़ने के हथियार किसी के पास से सहूलियत, दीर्घायु सुराइ चातुर्य और सन्तान आदि माग हैं। पुस्तक म केवल मागनी ही मागनी की गई है, किसी के द्वारा दिया गया उत्तर ता दखन म नहीं आता है।

अलबत्ता अरहुमजद क भक्तों की यह विशेषता है कि कुरान और बाईबल की तरह लड़ाई करवान का उपदश किसी उत्तर मे अहुरमजद के मुख से या स्तुति करन वालों के मुख से नहीं दिया गया। पशुओं की बलि और मनुष्यों की हत्या भी नहीं बतलाइ गइ है। ये सब बातें अहुरमजद की सात्त्विक वृत्ति को सिद्ध करती हैं।

अहुरमजद के भक्त स्वग नरक और मुक्ति के साधनों के विषय में भी अहुरमजद से प्रश्न पूछकर खुलासा प्राप्त करना नहीं भूले। ईश्वर का भय रखकर भला आचरण करने और सन्मार्ग में चलने की सूचना करके मुक्ति का मार्ग भी दिखाया

हैं। कर्मों का नियम भी स्पष्टता से समझाया है। भला करोगे तो स्वर्ग मिलेगा और बुरा करोगे तो नरक प्राप्त होगा यह बतलाकर 'जैसी करनी पार उतरनी' यह कर्म का नियम समझाकर अहुरमजद ने भक्तों को अपनी कृपा पर ही आश्रित नहीं रखा है। जिस प्रकार खुदाने और ईशु ने तौबा करने वाले को क्षमा प्रदान की है और सामना करने वाले को अधिक से अधिक दण्ड देकर रागद्वेष की तीव्रता के साथ कर्म के नियम का उच्छेद कर दिखाया है, वैसे अहुर मजद ने 'कर्म के नियम का भग कर अपनी कृपा से सब सुखी रहेंगे और कोप से सर्वथा अनिष्ट पावेंगे' एसा भय और लालच बतलाकर रागद्वेप की प्रवृत्ति नहीं बढाइ है। इतना अवश्य किया है कि एक जगह ईरान के बादशाह की प्रशसा और ईरान का पक्षपात दिखलाया है कि ईरान के बादशाह के सिवा दूसरे बादशाह पराजित और मारखाये हुए होकर अध पतन को प्राप्त हों ? इन वाक्यों स ईश्वर को पक्षपाती बनाने की अनिष्ट वाणी उच्चारण को गई है, परन्तु ऐसे अधिक वाक्य नहीं हैं। परभव के लिए कलेवा बाँधने की बात कह कर जैनों के साथ एकता दर्शाई गई है। क्योंकि नेकी से परलोक सुधरता है और बदी से बिगडता है, यह जैनधर्म का अटल सिद्धान्त है। सुज्ञेषु किं बहुना ?

है। इन श्रेणियों में ही माउण्ट एवेस्ट आदि उच्च शिखर भी हैं जिन में से मुख्य मुख्य नीचे लिखे अनुसार हैं—

माउण्ट(एवेस्ट गौरीशंकर)	नेपाल में	२९००२	फीट
किञ्चन चंगा	,,	२८१५०	,,
धवल गिरी	,,	२६८००	,,
नगा पर्वत	काशमीर में	२६६००	,,
गशेर ब्रुम	काराकोरम में	२६४७०	,,
गोसाईं थान	कुमायु में	२६६५०	,,
नन्दा देवी	,,	२५६५०	,,
राका पोशी	कैलास में	२५५५०	,,

(२) "मध्यवर्ती हिमालय" इसकी ऊंचाई प्राय ग्यारह हजार फीट से पन्द्रह हजार फीट के बीच में है। इसकी चौड़ाई प्राय ५० मील है।

(३) 'बाह्य हिमालय" अथवा शिवालिक श्रेणिया, ये मैदान और मध्यवर्ती हिमालय की श्रेणियों के बीच में हैं। इसकी ऊंचाई करीब तीन हजार से सात हजार फीट के बीच में है। इसकी चौड़ाई पाँच से तीस मील तक है। मसूरी तथा नैनीताल इन श्रेणियों में ही है।

वैज्ञानिक अन्वेषण से मालूम हुआ है कि करीब साढे तीन करोड़ वर्ष पहले इस स्थान पर महासागर था। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि हिमालय के प्रत्येक पत्थर और कन-कन में सामुद्रिक उत्पत्ति की छाप लगी हुई है। इसकी शिलाएँ प्रस्त-

व्यस्त नहीं हैं किन्तु स्तर पर स्तर रूप से जमी हुई शिलायें, पत्थर, वालुका, मिट्टी या चूने के पत्थर के कनों से बनी हुई हों ऐसा मालूम पड़ता है। इन शिलाओं का प्रस्तरित होना और छोटे छोटे कणों से बनना' सिद्ध करते हैं कि इनकी उत्पत्ति किसी जलाशय के पुट म हुई है।

हिमालय की उत्पत्ति कैसे हुई?

यह साधारण अनुभव की बात है कि नदियाँ और नाले अपन प्रवाह क साथ मिट्टी, वालुका और ककड़ बहा ले जाते हैं। मैदानों में बहती हुई नदी ज्यों-ज्यों समुद्र क पास पहुँचती है त्यों त्यों उसका पानी गदला होता जाता है। हरद्वार में गगाजल जितना निमल है उतना काशी में नहीं है और काशी में जितना ह उतना पटना में नहीं है। नाले और नदिया पृथ्वी को काट काटकर अपना मार्ग बनाती जाती हैं। बड़ी-बड़ी नदियाँ तो कल कल शब्द करती हुई जल के प्रबल वग स बड़ी बड़ी शिलाओं को भी काट डालती हैं। पहाड़ों स टूटे हुए पत्थर जल प्रवाह में रगड़ खाते खाते गालमोल होकर धीरे धीरे छोटे छोटे ककड़ बन जाते हैं। पहाड से उतरते हुए वेग प्रबल होता है मैदान म वेग कुछ कम होता है तब ककड आदि रुक जाते हैं किन्तु बालुका और मिट्टी तो ठेठ समुद्र तक पहुँचती हैं और समुद्र म मिट्टी और रेती के स्तर जमते जाते हैं और उनम शिलाओं के स्तर जमन पर पहाड़ बनते जाते हैं, इस प्रकार पवतों की गुप्त रूप से सृष्टि होती है। पर्वत बनने में लाखों करोड़ों वर्ष व्यतीत होते हैं। करोड़ों वर्षों म जब भूकम्प आदि अनेक कारणों से समुद्र का पानी एक स्थान छोड़कर

अन्य स्थान पर जाता है तब पर्वत प्रकट होते हैं। इस प्रकार हिमालय की सृष्टि महासागर में हुई हो ऐसा विज्ञान मानता है। इसका दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण यह भी है कि इसकी चट्टानों में जलचर प्राणियों के अवशेष मिलते हैं। उक्त प्रमाणों से हिमालय की उत्पत्ति महासागर में हुई मानी जाती है। वैज्ञानिकों ने इसका नाम 'टेथिस' रक्खा है। हिमालय के पूर्व भारत का देशविभाग आजकल से विभिन्न था। उस वक्त भारत का दक्षिण प्रायद्वीप पूर्व में आस्ट्रेलिया और पश्चिम में अफ्रिका के साथ लगा हुआ था। आजकल बंगाल की खाडी, अरेबियन सागर तथा हिंद महासागर जहाँ हैं वहाँ पहले महादेश था। इस प्राचीन महादेश को "गौण्डवाना लैण्ड" कहते हैं। इस प्रकार टेथिस महासागर के उत्तर में "अंगारा लैण्ड" और उत्तर पश्चिम में 'आर्कटिक' महादेश था ऐसा कई प्रमाणों से माना जाता है।

हिमालय पर्वत की शिलाएँ तथा प्राणि-अवशेषों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये सब श्रेणियाँ एक साथ उठकर इतनी ऊंची नहीं हुई हैं। यह उत्थान प्राय तीन अवस्थाओं में हुआ है—

प्रथम उत्थान "मध्यईयोसीन[१]" काल विभाग में मध्यवर्ती हिमालय वाला भाग समुद्र से बाहर निकला और दस बारह फीट ऊंचा उठा। इस काल विभाग का समय अनुमान से साढे तीन करोड सौ वर्ष पहले का माना जाता है।

१—भौतात्त्विक काल विभाग का नाम है।

द्वितीय उत्थान "मध्यमायोसीन" समय में आज से लगभग एक करोड़ वर्ष पहले हुआ। इसमें मरी कसौली की श्रेणियाँ उत्पन्न हुई। इसकी ऊँचाई दस से बीस हजार फीट की है।

तीसरा उत्थान दूसरे उत्थान से लगभग चालीस हजार वर्ष के बाद 'प्लायोसीन' काल विभाग में हुआ—इसमें शिवालीक श्रेणियों की उत्पत्ति हुई। यह उत्थान तीन हजार से सात हजार फीट का हुआ। ये उत्थान भूकम्प आदि से हुए मालूम पड़ते हैं। तीसरे उत्थान में फलत शिवालिक श्रेणियों की ऊँचाई २५ से तीस हजार फीट की हुई।

हिमालय की नदियाँ

गंगा, सिन्धु, यमुना, ब्रह्मपुत्रा आदि नदियाँ हिमालय की सब से ऊंची श्रेणियों की परलीपार तिब्बतवाले प्रदेश से निकली हैं। ब्रह्मपुत्रा प्रायः एक हजार मील पश्चिम से पूर्व तरफ बहकर पीछे दक्षिण की तरफ मुड़कर चलती है, एक एक कर के क्रमशः सब पर्वत श्रेणियों को काटकर मैदान में प्रवेश करती है।

इसी प्रकार सिन्धु नदी भी मानसरोवर झील से निकल कर पूर्व से पश्चिम की तरफ बहकर पश्चात् सब पर्वत श्रेणियों को काटकर मैदान में प्रवेश करती है।

गंगा और यमुना का उद्गम भी मध्य हिमालय में है। ये भी क्रमशः समानान्तर सब पर्वत श्रेणियों को काटकर मैदान में उतरती हैं।

उत्थान की अपेक्षा नदियों की प्राचीनता

साधारण भौतिक नियम ऐसा है कि पहाड़ का नदियों का जल-मार्ग न समानान्तर पर्वत श्रेणियों की बीच की घाटी में होना चाहिए जैसे कि सिन्धु और ब्रह्मपुत्रा के पूर्वार्द्ध का भाग। किन्तु गंगा वगैरह का प्रवाह एक एक करके पर्वत श्रेणियों को काटता हुआ अपना मार्ग बनाता है, यह भौतिक नियम के विरुद्ध है। वैज्ञानिक कहते हैं कि नदियों का जल मार्ग हिमालय पर्वत की श्रेणियों का अपेक्षा अधिक पुराना है। जब हिमालय के स्थान पर टथिस महासागर था तब दक्षिण महा द्वीप का ढाल उत्तर को तरफ था उस समय नदी का प्रवाह उत्तर की तरफ बहता हुआ टथिस महासागर में पड़ता था। इन नदियों के द्वारा जो रेत और मिट्टी पहुँचा थी उसी से हिमालय का शिलाएँ बनीं और भूकम्प के धक्कों से जब वह उन्नत बना तब नदियों का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की तरफ जाने के बदले उत्तर से दक्षिण की तरफ बहने लगा। नदियों के उद्गम स्थान ऊँचे होने से जल प्रवाह का वेग भी तेज हो गया और शिला काटने की शक्ति भी बढ़ गई। इसी बढ़ी हुई शक्ति से नदियाँ अपना मार्ग कायम करने में सफल हुई। ज्यों-ज्यों हिमालय के शिखर ऊँचे होते गये त्यों त्यों नदियों की शक्ति बढ़ती गई। फल स्वरूप अपनी घाटी को प्रति दिन ऊँची बनाता गई। एक तरफ नये पर्वतों की सृष्टि होती गई और दूसरी तरफ घाटी ऊँची होती गई। इसका परिणाम यह आया कि नदियों की घाटियाँ समानान्तर पर्वत श्रेणियों को काटती हुई दक्षिण की तरफ बहने लगीं।

साराश

पहाड़, पृथ्वी का पर्याय है। पृथ्वी एक स्थान पर ऊँची होती है दूसरे स्थान पर गड्ढा होता है। जहाँ स्थल हो वहाँ जल फैल जाता है और जहाँ जल होता है वहाँ पहाड़ बन जाते हैं। यह पर्याय का स्वभाव है। द्रव्य ध्रुव स्थिर रहता है किन्तु पर्याय का परिवर्तन क्षणे क्षणे होता रहता है। द्रव्य सत है और सत् का लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप है। ईश्वर की शक्ति को बीच म डालने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। ईश्वरीय शक्ति कार्य करती होती तो सात मिनट में या सात सैकिंड में हिमालय बन जाता, करोड़ों वर्ष न लगते।

गगा विज्ञानाक प्रवाह ४ तरग १
लेखक—अनन्तगोपाल किंगरन एम०एस०सी०

पृथिवी की उम्र

(पृथिवी की उम्र क विषय में भिन्न भिन्न मान्यताएँ)

(१) Des Vignoles (डेस विग्नोलिस) Chronology of the sacrad History नामक पुस्तक की भूमिका में लिखता है कि मेरी गिनती क अनुसार सृष्टि के आरम का समय दो प्रकार का है— ईसा स ३४८३ वर्ष पूर्व अथवा ६९८४ वर्ष पहले। सर्व मत भेदों को ध्यान में रखत हुए कहा जा सकता है कि सृष्टि ईसासे ४००४ वर्ष पहले बनी है। आर्च विषय उशर Rrchbishap ussher भी इसी प्रकार मानता है।

(२) भूगर्भ विद्या विशारद प्रो० जैलि कहता है कि पृथिवी की मोटाई पर से ज्ञात होता है कि यह पृथिवी दस करोड़ वर्षों में बनी है।

(३) ईरानी पुराणों के अनुसार पृथिवी की उत्पत्ति आज से बारह हजार वर्ष पहले हुई थी।

मनुस्मृति और पुराणों के अनुसार

हिन्दू पुराणों कीमान्यतानुसार ब्रह्माके दिन की शुरूआत में सृष्टि उत्पन्न होती है और शाम को समाप्त होती है अर्थात् प्रलय होता है। रात में प्रलय और दिन में सृष्टि। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं। एक एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं। चार युग में सत्ययुग के १७२८०००, त्रेता के १२९६०००, द्वापर के ८ ४००० और कलियुग के ४३२००० वर्ष होते हैं। चारों युगों के कुल ४३२०००० वर्ष हुए। चौदह मन्वन्तरों के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष हुए। इतनी उम्र पृथिवी की बताई गई है। वर्तमान में सातवें मन्वन्तर की २७ चतुर्युगी व्यतीत हो चुकी हैं। अट्ठाईसवीं चालू है। उसके तीन युग पूरे हो चुके हैं, चौथे कलियुग के ५०४० वर्ष चालू साल में अर्थात् १९९६ के साल में पूरे हुए हैं। बाकी कलियुग के चार लाख ,छ्त्तीस हजार नौसौ साठ वर्ष और हैं। वर्तमान में पृथिवी की उम्र १९७२९४९०४० वर्ष की है। मनुस्मृति प्रथमाध्याय के श्लोक ६८, ७२, ७९, ८० के अनुसार भी ऊपर मुजब वर्तमान आयु बताई गई है। सूर्य्य सिद्धान्त के अनुसार भी यही अंक हैं किन्तु आर्यभट की गणनाके अनुसार १९८६१२५०३१ वर्ष होते हैं।

रेडियम

'यह पृथिवी कितनी पुरानी है यह सिद्ध करनेवाले वैज्ञानिकों ने रेडियम नामक पदार्थ की खोज की है। रेडियम युरेनियम नामक पदार्थ से निकलता है अर्थात् युरेनियम रेडियम रूप से परिवर्तित होता है। एक चावल भर रेडिम तीस लाख चावल भर युरेनियम से प्राप्त होता है। युरेनियम के एक परमाणु का रेडियम रूप में परिणत होने में सात अरब पचास करोड़ वर्ष लगते हैं ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है। इस रेडियम से नासूर आदि रोगों का नाश होता है। जो रोग बिजली से भी नष्ट नहीं होते वे रेडियम की शक्ति से नष्ट हो जाते हैं। यह रेडियम नामक धातु दुनिया में बहुत अल्प प्रमाण में प्राप्त हुई है। एक तोला भर रेडियम की कीमत तीस लाख रुपया है। जब कि रेडियम के एक परमाणु के बनने के लिए तीस लाख गुने युरेनियम की आवश्यकता होती है और उसको भी रेडियम रूप में परिणत होने के लिए सात अरब पचास करोड़ वर्ष चाहिए तब एक रत्ती भर या तोले भर रेडियम तय्यार होने में कितना युरेनियम चाहिए और उसे रेडियम रूप बनने में कितने वर्ष लगने चाहिए।

गंगा विज्ञान अंक प्रवाह ४ तरंग १
लेखक—श्री अनन्त गोपाल फिंगरन M S C

आइन्स्टाइन का सापेक्षवाद

पृथिवी की प्राचीनता के विषय में सबके अधिक आश्चर्य जनक बात आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद में मिलती है। आइन्स्टा

न के सिद्धान्त ने अर्थात् सापेक्षवाद ने वैज्ञानिक संसार में खलबली मचा दी है। ई० सन् १६१६ में प्राय सभी समाचार पत्रों में सापेक्षवाद की प्रामाणिकता के लेख छपाये जा रहे थे। सापेक्षवाद कहता है कि 'पदार्थ और शक्ति वस्तुत एक ही हैं। एक सेर गरमी की बात करना एक सेर लोहे की बात के बराबर है। एक सेर गरमी की शक्ति सवा अरब मन पत्थर को पिघलाने में समर्थ है।

कदाचित् सूर्य की गरमी इस सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ का क्षय करने और उसके स्थान में शक्ति प्रकट करने में कम होती हो तो दस खर्व वर्षों में एक सेर पीछे केवल आधी रत्ती भले ही कम हुई हो। सेर में आधी रत्ती कुछ महत्व नहीं रखती अत सिद्ध हुआ कि यह सूर्य हजारों अरब वर्षों से चमकता आ रहा है और हजारों शख वर्ष पर्यन्त चमकता रहेगा।

(सौ० प० अ० ५ साराश)

जैन दृष्टि से समन्वय

वैज्ञानिकों ने सूर्य और पृथिवी के अस्तित्व का जो अनुमान रेडियम तथा पदार्थ और उसकी शक्ति की एकता के आधार पर बाँधा है वह निश्चितरूप से नहीं है किन्तु अन्दाजा है। उसमें रेडियम की बनावट से आज तक का काल निश्चित है किन्तु आगे पीछे का काल अज्ञात है। आइन्स्टाइन का सापेक्षवाद तो जैनों के नयवाद या स्याद्वाद से बहुत मिलता

हुआ है। जैन द्रव्य और गुण तथा पर्याय को भिन्नाभिन्न मानते हैं। एक अपेक्षासे भिन्न है तो दूसरी अपेक्षास अभिन्न है। आइन्स्टाइन का पदार्थ जैनों का द्रव्य है और शक्ति पर्याय है। आइन्स्टाइन के अन्दाज म अनिश्चित शर्त है कि यद ऐसा हो तो ऐसा होगा किन्तु जैनों क सिद्धान्त मे शर्त नहीं है। उसमें निश्चित बात है कि पर्यायों का चाहे कितना ही परिवर्तन हो किन्तु द्रव्य न तो परिवर्तित होता है और न घटताही है। द्रव्याश ध्रुव स्थिअर है। आइन्स्टाइन के कथनानुसार यदि हजारों अरब वर्षों म आधी रत्ती गर्मी नष्ट होती है ता हजारों नील वर्षों में गरमी खतम हा जायगी। पदार्थ और शक्ति को एकान्त अभिन्न मानने पर यह हिसाब लागू होता है किन्तु अनकान्त भेदाभेद पक्षमें लागू नहीं पड सकता। शक्ति चाह कम ज्यादा होती हो किन्तु पदार्थ—द्रव्य का नाश तो अनन्त काल में भी नहीं हो सकता। वस्तुत गर्मी या शक्ति का जितने प्रमाणम व्यय या नाश होगा उतनाही आमदनी भी हो जायगी। क्योंकि लोक में गर्मी शक्ति के द्रव्य अनन्तानन्त हैं। द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्यस्वरूप है। एक तरफ व्यय तो दूसरी तरफ उत्पाद भी चालू है। इसलिए जमन विद्वान हेल्म होल्टस की जो 'शक्ति नइ उत्पन्न नहीं होती है और पुरानी नष्ट नहीं होती है' मान्यता है वह ठीक है और वह जैनों को अक्षरश लागू पडती है।

कि बहुना !

शक्ति का खजाना सूर्य

ईश्वरवादी कहते हैं कि ईश्वर जगत् उत्पन्न करता है और जीवों का पालन करता है संहार भी ईश्वर ही करता है अर्थात् ईश्वर सर्वशक्तिमान् है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि इस पृथिवी के सब जीवों को जीवनी शक्ति देने वाला सूर्य ही है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि सूर्य की रश्मियों से ही रासायनिक परिवर्तन होता है जिसके जरिये से छोटे छोटे तृण से लकर बडे बडे वृक्ष पर्यन्त सब वनस्पति हरी भरी रहती है। हरिण शशक आदि पशुओं का जीवन भी इन्हीं उद्भिज्ज पदार्थों पर अवलम्बित है।

इसी सूर्य के प्रकाश से वाष्प बनता है और वर्षा होती है। वर्षा से कई उद्भिज्ज पदार्थों और चलते फिरते प्राणियों की उत्पत्ति होती है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। दक्षिण ध्रुव और उत्तर ध्रुव की तरफ यात्रा करने वाले कहते हैं कि दोनों ध्रुवों पर प्राणी वनस्पति या वृक्ष का नामो निशान नहीं है, वह स्थान जीवन शून्य है। इसका कारण यह है कि वहाँ सूर्य का प्रकाश बहुत कम है। सूर्य की शक्ति के अभाव से वह प्रदेश प्राणी और वनस्पति से शून्य है। यहां ईश्वर वादियों से पूछना चाहिए कि ईश्वर तो सर्व व्यापक है—ध्रुव प्रदेश पर भी उसकी शक्ति रही हुई है वैसी अवस्था में वहां वृक्षादि की सृष्टि क्यों नहीं होती? इसका उत्तर उनके पास नहीं है, जब कि वैज्ञानिकों ने इसका खुलासा ऊपर कर दिया है।

सूर्यताप और विद्युत् धारा

अलग अलग दो धातु के मलीय सूर्य के ताप में इस प्रकार रक्खे जायँ कि उनमें से एक जोड़ा गर्म हो और दूसरा ठण्डा रहे तो उस कक्षा म विद्युत् धारा होने लगती है। इस धातु के याग का 'ताप विद्युत युग्म' Tsermo couple कहा जाता है।

एक विशेष प्रकार का काच जिसे एकी करण ताल (Lens condensing) कहते हैं उस सूर्य की कक्षा म रखने से ताप इतना बढ़ सकता है कि उससे कागज कपड़ा आदि वस्तु जल सक्ता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर इंजिन के बॉयलर का पानी गर्म होकर वाष्प रूप बनता है।

अभी बर्लिन के वैज्ञानिक डाक्टर ब्रूनो लैंग ने अपनी प्रयोग-शाला में एक ऐसे यन्त्र की रचनाकी है कि जिससे सूर्यताप निरंतर विद्युत् शक्ति म परिणत होता रहता है। इस यन्त्र की अग्रभूत प्लेट्स यदि हजारों की तादात म तय्यार कराकर उपयोग में लाइ जायगी तो उनसे मील आदि कारखानों का कार्य भी चलाया जा सकेगा। यद्यपि जल प्रपात म भी विद्युत् प्रवाह उत्पन्न होता है किंतु इसकी अपेक्षा सूर्य ताप से उत्पन्न होनेवाले विद्युत प्रवाह की यह विशेषता है कि वह हर स्थानपर उत्पन्न हो सकता है। सूर्य प्रकाश हर स्थान पर मिल सक्ता है। विशेषकर क भूमध्य रेखा के पास उष्णकटिबन्धवाले देशों में विद्युत्शक्ति बहुत सस्ती पैदा की जा सकती है। यदि सूर्य स शक्ति ग्रहण करने का यह प्रयोग बहुतायत से किया गया तो कोयल तेल, लकड़ा आदि की आवश्यकता बहुत कम रह जायगी। डाक्टर लग की प्लेट का उपयोग अन्य भी कई प्रकारों से होता

है। जैसे जहाज या वायुयान में इस यन्त्र के द्वारा भय का सूचना प्राप्त की जा सकती है। फोटोग्राफ की प्लेट पर लाल रग की किरण एकत्रित की जा सकती है।

गगा विज्ञानाङ्क प्रवाह ४ तरग १
लेखक—श्रीयुत रामगोपाल सक्सेना
B. S C

सूर्य की गर्मी

सूर्य को गर्मी वृक्ष, पशु, पक्षी मनुष्य आदि मब को जीवन प्रदान करती है। सूर्य की गर्मी स ही जमीन म पत्थर के कोयले बनते हैं जिनसे एँजिन के जरिए मील आदि चलते हैं।

न्यूटन ने शोध की है कि सूर्य और पृथिवी में आकर्षण शक्ति है। सूर्य पृथिवी को अपनी ओर खींचता है और पृथिवी सूर्य को अपनी ओर। किन्तु सूर्य का वजन पृथिवी से तीन लाख तीस हजार गुना अधिक है, उसमें आकर्षण शक्ति अधिक है जिससे पृथिवी के द्वारा सूर्य न खिंच कर पृथिवी को अपनी तरफ खींचता है। पृथिवी में खुद में भी आकर्षण शक्ति है जिससे वह खींची जाती हुई भी सूर्य में नही जा मिलती किन्तु समान अन्तरे पर सूर्य के आसपास घूमती है। पृथिवी की आकर्षण शक्ति की अपेक्षा सूर्य की आकर्षण शक्ति अट्ठाईस गुनी अधिक है अर्थात् जिस वस्तु का वजन पृथिवी पर एक सेर है उसी वस्तु का वजन सूर्य पर करने पर अट्ठाईस सेर होगा। जिस मनुष्य का पृथिवी पर डेढ या दो मन वजन होगा सूर्य पर उसी का वजन ४२ मन या ५६ मन होगा। मनुष्य अपने वजन से ही दब कर चूरचूर हो जायगा।

वातावरण और शरदी गर्मी

सूर्य की गरमी सदा समान रहती है ता भी सीयाल में ठ और उन्हाले में गर्मी, किसी देश में शरदी अधिक और कि में गर्मी अधिक मालूम पड़ती है। इस का कारण वायु मण्ड है। पृथिवी के चारों ओर २०० मील तक वायु मण्डल वा वरण है। इस म किसी समय पानी वाष्प-भाप अधिक होती तो सूर्य की गर्मी पृथिवी पर कम आती है और किसी वक्त वाष्प वर्षा के रूप में नीचे गिरजाती है तब शुष्क वातावरण से गर्मी अधिक बढ़ती है। किसी वक्त वातावरण स ब गिरता है तब शरदी अधिक हो जाती है।

उष्णकाल म किसी किसी देश म तापमान ११० से ११५ या १२० तक पहुँच जाता है तब बहुत स पशुपक्षी मर जाते हैं। यदि तापमान इससे भी अधिक बढ़जाय तो मनुष्य भी मर जाते हैं। शरदी में शिमला जैसे प्रदेशों में तापमान घटता घटता ४५—५० डिग्री तक रह जाता है तब बहुत शरदा प जाती है। यदि तापमान इसमें भी नीचे जाय तो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि मर जाते हैं। ठण्डे देश में जन्मे हुए मनुष्य अधिक गर्मी सहन न कर सकने से गर्म देश में नहीं रह सकते अथवा रहते हैं तो मर भी जाते हैं। इसी प्रकार गर्म देश म जन्मे हुए ठण्डे देश म अधिक शरदी सहन नहीं कर सक्त बीमार हो जाते और मर भी जाते हैं। यही बात पशु पक्षियों के लिए भी है। कहिये मनुष्य आदि प्राणियों को जीलाने या मारने की शक्ति ईश्वर म है या वातावरण और सूर्य में। ईश्वर शरीर रहित और वजन रहित होने से उसमें गर्मी भी

ी है और आकर्षण शक्ति भी नहीं है। यदि यह कहो कि र्मी और वातावरण को ईश्वर ने ही बनाया है तो यह ठीक हीं है क्योंकि जो शक्ति—गर्मी और आकर्षण स्वय ईश्वर नहीं है तो दूसरों का कैसे दे सकता है। यदि ईश्वर में भी र्मी और आकर्षण माने जाय तो वह सर्व व्यापक होने से सर्वत्र गर्मी या शरदी समान रूप से होनी चाहिए। मगर सा नहीं है। यन्त्रादि के द्वारा जो ताप क्रम का माप किया जाता है उसका अन्वय व्यतिरेक सूर्य के साथ तो प्रत्यक्ष है गर ईश्वर के साथ तो अन्वय व्यतिरेक नहीं होता अत श्वर में उसकी कारणता किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती। कारणता की यथार्थ खोज कर के वैज्ञानिको ने प्रत्यक्ष सिद्ध र के दिखा दिया है। ईश्वर वादियों ने विचार शून्य कल्पना र अन्ध श्रद्धा रख कर के वाद विवाद में निरर्थक समय यतीत किया है। अस्तु। 'गत न शोचामि'।

(सौ० प० अ० ९ सारांश)

जल और वायु की शक्ति

वायु से कई स्थानों पर पवन चक्की चलती है। कूए का ानी ऊपर चढ़ाया जाता है। वाहन पर ध्वजा बांध कर हवा े जरिए इष्ट दिशा की तरफ समुद्र में जहाज चलाया जा सकता है। जल प्रपात से भी पवन चक्की चलती है। अमेरिका े सुप्रसिद्ध जल प्रपात से बिजली की बडी बडी मशीन लाई जाती हैं। नायगरा के जल प्रपात में अनुमानत अस्सी ार अश्वबल की शक्ती है। प्रति घण्टा बीस मील की चाल चलने वाली सौ वर्ग फुट की हवा मे ५६० अश्वबल की

शक्ति रही हुई है। पाच दस अश्वबल के तैल इञ्जिन मरीदन या चलाने म कितना मर्च होता है यह सब कोइ जानत हैं। जब कि ऊपर बनाई हुई ५६० अश्वबल वाली हवा मुफ्त में ही बहती रहती है। किन्तु यहां प्रश्न यह है कि हवा और पानी में शक्ति कहा से आती है ? हवा कौन चलाता है ? पानी को पहाड़ों पर कौन चढ़ाता है ? उत्तर—सूय। सूय ही पृथिवी का गर्म करता है। गर्म पृथिवी पर हवा गर्म होती है। गर्मी से हवा पतली होकर ऊपर चढ़ती है और ऊपर की नीचे आती है। इस प्रकार हलचल होने से हवा इधर उधर दौड़ती है और मुसाफिरी करती रहती है। सूर्य ही समुद्र के पानी को गर्म करके वाष्प रूप बनाता है। जब वाष्प, ऊपर वायुमण्डल में जाकर अमुक समय मे बरसता है तब पहाड़ों पर पानी चढ़ता है और पहाड़ से उतर कर बड़े प्रपात में गिरता है और नदी नालों के रूप में बहता हुआ समुद्र में रत, मिट्टी, कङ्कड़, पत्थर लेजाकर उसमें पहाड़ो की रचना करता है। जहा ५० से ३५ इञ्च पानी पड़ता है वहा प्रति वर्ग मील पर पाच करोड मन से अधिक पानी सूय बरसाता है। जिस हवा के बिना प्राणी श्वासोच्छ्वास नहीं ले सकते और जिस जल का पान किये बिना कोइ भी प्राणी जीवनधारण नहीं कर सकता उस हवा और पानी को उत्पन्न करने वाला सूय है। सूर्य ही में य सब शक्तिया हैं न कि ईश्वर में।
(सौ० प० भ० ५ सारांश)

कोयलों में जलने की शक्ति

खान से पत्थर जैसे जो कोयले निकलते हैं दर असल वे पत्थर या मिट्टी नहीं है किन्तु लक्कडे हैं। बहुत वर्ष पहले

वृक्ष या वनस्पति मिट्टी के नीचे दब कर बहुत काल के दबाव से पत्थर जैसे घनीभूत बन गये। वृक्षावस्था में जलने की शक्ति उनको सूर्य से प्राप्त हुई थी। सूर्य की रोशनी और गर्मी में वृक्ष कारबोन द्विओषिद से कारबोन हवा ग्रहण करते हैं। कारबान द्विओषिद (Carbon dioxide) और कारबोन को अलग करने में शक्ति की आवश्यकता है। वह शक्ति सूर्य के ताप से आती है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि वृक्ष सूर्य के ताप से जितनी शक्ति खींचते हैं उतनी ही शक्ति (न रत्ती कम न रत्ती अधिक) जलने में लगाते हैं—देते हैं। घासलेट तेल और पेट्रोल में भी यही नियम लागू पड़ता है। इस पर से ज्ञात हो जायगा कि कोयलों में जो शक्ति अभी हम देखते हैं वह शक्ति खान से निकलने के बाद प्राप्त नहीं हुई है किन्तु लाखों करोड़ों वर्ष पहले जब ये वृक्ष के रूप में थे तब से उन में संचित है। उन पर हजारों फीट मिट्टी के स्तर जम जाने पर और पत्थर रूप बन जाने पर भी सूर्य की रश्मियों से प्राप्त [illegible] हुई शक्ति ज्यों की त्यों कायम रख सके। और हजारों [illegible] या करोड़ों वर्ष बाद उस शक्ति को दूसरे कोयले के [illegible] प्रकट कर सके।

(सौ० प० [illegible])

सूर्य से कितनी शक्ति आती है ?

गर्मी मापने के यन्त्र से ज्ञात हुआ है कि [illegible] ऊपरी सतह पर जब खड़ी सीधी रश्मि [illegible] वर्गगज पीछे डेढ़ अश्वबल के बराबर [illegible]

वायुमण्डल के बीच में धौंकी गर्मी हस आ स सार का भारत वर्ष के ताप में बराबर हो वगगप पर सालान्तर से अश्व बल की शक्ति आता है। इस हिसाब से सारी पृथ्वी पर लगभग २३०,०००००००००० तईस नील अरबबल जितनी शक्ति उतरती है। यह तो अपनी पृथ्वी की बात हुई। सूर्य ताप तो अपनी पृथ्वी के बाहर भी चारों तरफ बहुत भी गिरता है। इन सब का हिसाब करें तो ज्ञात होगा कि सूर्य की सतह में प्रतिवर्ग इन्च ४४ अश्वबल की शक्ति निकलती है। सूर्य के प्रत्येक वर्ग सेन्टीमीटर से लगभग ४०००० कन्डल की रोशनी निकला करती है। इस हिसाब से एक वर्ष में सूर्य से इतनी गर्मी निकलती है कि जो ग्यारह अंक पर तेरह शून्य लगाने पर जो संख्या होती है उतने मन पत्थर के कोयले जला सकता है।

क्या सूर्य की गर्मी कम होती है ?

इस प्रकार सूर्य की गर्मी निकलती रही तो कालान्तर में अवश्य घट जायगी ? वैज्ञानिक कहते हैं कि नहीं घटेगी। एक सवा तीन हजार वर्ष पुराने वृक्ष के पीढ़े के भाग का पोस्ट लिया गया था उसकी छाल पर से वर्षों की गिनती की गई। एक वर्ष में एक छाल नई आती है वैसी छालें गिनने पर पचीस सौ वर्ष का उस वृक्ष का आयुष्य माना गया। वृक्ष की वृद्धि जितनी आजकल होती है उतनी ही वृद्धि सवा तीन हजार वर्ष पूर्व भी हुई मालूम पड़ी है। इस पर से निश्चय होता है कि सवा तीन हजार वर्षों में जब गरमी पड़ने में कुछ घटती नहीं हुई तो भविष्य में भी नहीं होगी। (सौ० प० ब० २ सारांश

वायु मंडल का प्रभाव

पहाड़ सूर्य की समीप में हैं और पृथ्वी उससे दूर है अत पहाड़ों पर गर्मी अधिक गिरनी चाहिये और पृथ्वी पर कम पड़नी चाहिये। किन्तु होता है ठीक इसके विपरीत। पृथिवी पर गर्मी अधिक पड़ती है और पहाड़ों पर ठंडक रहती है। आबू और शिमला के पहाड़ों पर वैशाख मास में भी गर्मी न मालूम होकर शरदी मालूम पड़ती है। इस का क्या कारण है?
उत्तर—वायु मण्डल में हवा का हलन चलन। गर्म प्रदेश की हवा ठण्डी होती है और वहां से चलकर ठंडे प्रदेश में जाती है, वहां रुक जाती है। अर्थात् गर्म प्रदेश ठंडा हो जाता है और ठंडा प्रदेश गर्म हो जाता है। दूसरी बात यह है कि पृथ्वी दिन में गर्म होती जाती है और रात्रि में वह गर्मी वायु मण्डल में रही हुई वाष्प या बादल आदि से रुक जाती है अर्थात् आय बढती और व्यय कम होता है। इस प्रकार गर्मी बढते बढते वर्षा होती है तब गर्मी के जाने का मार्ग खुला हो जाने से आय की अपेक्षा व्यय बढ जाता है और वातावरण में शैत्य फैल जाता है। पहाड़ों पर गर्मी अवश्य पड़ती है मगर व्यय का मार्ग खुला है, रुकावट इतनी नहीं होती अत आयकी अपेक्षा व्यय बढ जाने से गर्मी कम पड़ती है और ठंडक अधिक रहती है। ऊपर की हवा स्वच्छ और हलकी विशेष है अत गर्मी की आय की अपेक्षा व्यय बढ जाने से ठण्ड विशेष प्रमाण में रहती है।
(सौ० प० अ० १ सारांश)

सूर्य में गर्मी कहाँ से आती है?

आधुनिक विज्ञान से सिद्ध हुआ है कि शक्ति नई उत्पन्न नहीं होती है और न विनष्ट होती है। जब घासलेट तेल के

हुआ होता है उस पर प्रकाश गिरने से प्लेट गर्म हो जाता है उससे तापक्रम की डिग्री का पता लग जाता है। इस पृथ्वी पर अधिक से अधिक गर्मी बिजली में है। बिजली का तापक्रम तीन हजार डिग्री तक पहुँचा है। सूर्य की सतह के पास वाला मीटर यन्त्र से जाच करने पर छ हजार डिग्री तापक्रम होता है। सूर्य के केन्द्र में तो इससे भी अधिक गर्मी होगी। उकलते हुए पानी में सो डिग्री गर्मी होती है। एक हजार डिग्री गर्मी से सोना पिघलता है। तापक्रम के माप से वैज्ञानिकों ने यह भी हिसाब लगाया है कि सूर्य से कितनी गर्मी निकलती है। इस बोलोमीटर यन्त्र से किस देश में किस ऋतु में कितनी गर्मी या शरदी है इसका निश्चित परिमाण बताया जाता है।

ऐसे यन्त्रों की सहायता से ईश्वर वादियों की शाब्दिक कल्पना वैज्ञानिकों के प्रत्यक्षसिद्ध प्रमाणों के सामने जरा भी नहीं टिक सकती इस बात का पाठक स्वयं विचार करेंगे।

(सौ० प० अ० ५ सारांश)

बोलते चित्र और विद्युच्छक्ति

सीनेमा में जो चित्र थोडे वर्ष पहले मूक दीखते थे आज वे बोलते दिखाई देते हैं। फोनोग्राफ से अमुक स्थान और अमुक काल में उच्चरित ध्वनि कालान्तर में हजारों कोशों पर उसी रूप में सुनाई देती है। रेडियो में विलायत में गाये हुए गायन बम्बई या कलकत्ता में ज्यों के त्यों सुनाई देते हैं। लाउड स्पीकर में एक मनुष्य का धीमी आवाज से किया हुआ भाषण पांच पचीस हजार मनुष्य दूर बैठे बैठे भी स्पष्टतया सुन सकते हैं। ब्रॉड कास्ट में हिटलर या चेम्बरलेन का भाषण दुनिया के चारों

कोनों में एक ही समय सुनाई देता है। टेलीफोन मे हजारों कोशों दूर से बोलने वाले के शब्द स्पष्टरूप से पास में बोलता हो वैसे ही सुनाई देते हैं। इतना ही नहीं किन्तु थोडे समय पश्चात् बोलने वाले का फोटू (चित्र भी) देखा जा सकेगा। य सब वर्तमान जमाने के आविष्कार एक ही विद्युत् शक्ति के परिणाम हैं जिनका सूर्य के ताप के साथ भी सम्बन्ध है।

मूकचित्रों से बोलते चित्र

सीनेमा में दृश्य रूप से कार्य करनेवाले मूकचित्रों की उम्र पूरे सौ वर्ष की नहीं हुई कि इतन में तो दर्शकों का मनोरंजन करन के लिए नाटकों से टक्कर लेनेवाले बोलते चित्रों का आविष्कार होगया। सामान्यतया फोनोग्राफ की रेकार्ड म और विशेषत सिनेमा में उसकी प्रगति हुइ है। ग्रामोफोन का आविष्कार एडिसन न किया है। ग्रामोफोन म बोलनेवाले मनुष्यकी ध्वनि की रुकावट (Impedance) की जाती है। इस ग्रामोफोन के साथ छाया चित्रों या मूक चित्रों का जब एककालीनता का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तब मूक चित्र बोलने लगन हैं। इसक लिये मशीनों का उपयोग होने लगा किन्तु उनमे अधिक लाभ नहीं हुआ। क्योंकि एक रेकार्ड अधिक से अधिक छ सात मिनिट तक आवाज कर सकती है और एक फिल्म कमसे कम पन्द्रह मिनिट तक चलती है। इसका समीकरण करने के लिय फोनोग्राफ का दो रिकार्ड एक फिल्म के साथ जोडी जाने लगी अर्थात् एक रिकार्ड पूरी होती कि तुरत ही दूसरी मशीन की दूसरी रिकार्ड जोडी जाती। दर्शकों को अन्तरे की खबर

न लग इसका पूरा खयाल रखा जाता। इसस कई अशों मे समान कालीनता अवश्य आगई। इतना होते हुए भी वैज्ञानिकों को पूरा सन्तोष न हुआ। ध्वनिकी रुकावट और विद्युत् की रुकावट (Impedance) का एक नया आविष्कार हुआ। इस शोध की सहायता स ध्वनि को पुन उत्पन्न करक इसे दर्शकों की बडी सख्या तक पहुँचाने से लिये रेडियो तथा लाऊड स्पीकर की सहायता ली गइ। यहाँ सक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि सत्र प्रथम मूलध्वनि को विद्युत् तरगों मे बदलकर उन तरगों को प्रकाश क उतार चढाव में परिवर्तित किया जाता है। प्रकाश का उतार चढाव उस दृश्य की मूक फिल्म क साथ साथ अकित होता है। सिनेमा हॉल में इसस विपरीत कार्यवाही की जाती है। लाउडस्पीकर में आवाज उत्पन्न करने के लिए प्रकाश क उतार चढाव को पुन विद्युत् तरगा म बदलना पडता है। ध्वनि का बिजली के तरगों में बदलन का कार्य आज कल साधारण हो गया है। टेलीफोन और ब्रॉडकास्टिग इसी सिद्धान्त पर कार्य करत है।

माईक्रोफोन ध्वनि को विद्युत तरग क रूप में बदल देता है। इस में ध्वनि की तरग एक प्रकार की झिल्ली पतला पतरी (Diaphragm) पर आकर टकराती है। इससे पतरी में सह कम्पन (Sympathetic Vidrations) पैदा हो जाता है— झिल्ली गति करन लग जाती है। इस गति से माईक्रोफोन के सरकिट (Circit) में विद्युत्तरग पैदा होती है। इस तरग का आधार झिल्ली का गति पर निभर है। उसकी तेजी य सुस्ती क अनुसार तरग शक्तिशाली या कमजोर बनती है ध्वनि स्वर में परिवर्तन होने क साथ ही साथ तरग म परि

वर्तन होता जाता है। परिवर्त्तनशील यह तरग थोडे अन्य उपकरणों से प्रकाश के उतार चढाव में बदल जाती है। इसके लिए कई उपाय प्रचलित हैं। एक पद्धति में विद्युत् धारा मापक यन्त्र काम में लाया जाता है इसकी सुई से विद्युत् धारा के माप का पता लगता है, यह सुई धारा का माप बताने के लिये गति करती है। इस सुई के बजाय एक छोटा-सा काच लगाया जाता है। वह काच गति करता रहता है और इसकी सहायता से प्रकाश का किरण एक स्लिट [Slit] में हो कर जा सकता है। इन किरणों का परिमाण विद्युत् तरगों की शक्ति पर आधार रखता है।

इस स्लिट के पीछे एक सीनेमा फिल्म खींचकर रखी जाती है, तब उस पर किरणों क प्रभाव से कहीं अँधेरा और कहीं उजाला होता रहता है, इस प्रकार फिल्म पर प्रकाश और अँधेरे क रूप में ध्वनि अकित होती है। मूलध्वनि के स्वरों में ज्यों-ज्यों उतार चढाव होता जाता है त्यों-त्यों की वह फिल्म पर अकित होता है।

इस फिल्म की जाँच करने से ज्ञात होता है कि धीमी आवाज के लिए अस्पष्ट रेखाएँ अकित होती हैं और तेज आवाज के लिये तेज स्पष्ट रेखाएँ अकित होती हैं। पॉजिटिव फिल्म में इससे उल्टा होता है अर्थात् तेज आवाज के लिये अस्पष्ट रेखाएँ और धीमी आवाज लिये तेज स्पष्ट रेखाएँ अकित होती हैं। इसे धारीदार फिल्म साउण्ड ट्रेक कहते हैं। इस फिल्म पर ध्वनि के साथ साथ मूक चित्र भी अकित होते जाते हैं। ध्वनि आलेखन और दृश्य आलेखन दोनों एक साथ

यह हम देख चुके। जैन दृष्टि से ध्वनि शब्द है और शब्द पुद्गल रूप है। प्रकाश की किरण भी पुद्गल रूप है। पूरण गलन स्वभाव यह पुद्गल का लक्षण है। ध्वनि का विद्युत् धारारूप में परिवर्तन होना और प्रकाश की किरणें के साथ मिल कर मूक चित्र को सवाक् चित्र बनाना, प्रकाश की सहायता से धीमी आवाज को तेज बनाना या उसी आवाज को स्थूल रूप देना, ध्वनि और प्रकाश का गति में परिणत होना, और रेकार्ड या फिल्म पर स्थायी प्रतिबिम्ब होना, यह सब पुद्गल की लीला है, प्रकाश या बिजली की शक्ति का माहात्म्य है। इसमें ईश्वर का जरा भी हाथ नहीं है। ईश्वर का हाथ होता तो ईश्वर अपने भक्तों के हाथों से ही फोनोग्राफ, लाउडस्पीकर, टेलीफोन, ब्रॉडकास्ट, आदि नये नये आविष्कार कराता। अथवा मनुष्यों की उत्पत्ति के साथ ही अपना इस शक्ति का थोड़ा बहुत परिचय कराता। लाखों-करोड़ों वर्षों तक जनता को अज्ञान रखकर ईश्वर को न मानने वाले अभक्तों के हाथों में इसका यश क्यों दिया गया? ईश्वर क्या यश दे? यह तो भौतिक शक्ति है। ईश्वर के पास तो आत्मिक शक्ति है। भौतिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शक्ति कई गुनी अधिक है। इस शक्ति के प्रभाव से संसार या कर्म बंधन से आत्मा को मुक्त करना या परमानन्द पदवी प्राप्त करना रूप फल ईश्वर भक्तों को मिल चुका है और मिलता रहेगा। भौतिक शक्ति का उपयोग भोग विलास या अन्यों का संहार करनेमें भी हो सकता है। वर्तमान युद्ध में वायुयान में बैठकर निरपराध प्राणियों पर बम फेंकना या जहरी गेस फैलाना या मनुष्यों का संहार करना, आदि उपयोग भौतिक शक्ति का हो रहा है। कुछ भी हो हमें तो

यहाँ यही समझना है कि प्रकाश, बिजली वाष्प और शब्द ये सब जड़ होते हुए भी कितने शक्ति सम्पन्न हैं। ऐसी और इस से भी अधिक शक्ति जड भूत कर्म पुद्गलों में रही हुई है। ये पुद्गल ईश्वरीय प्रेरणा के बिना भी स्वत सिद्ध अनेक प्रकार की शक्तियाँ रखते हैं। ये कर्म पुद्गल जीवात्माओं के द्वारा गृहित होने के बाद जीवात्मा को अपनी विविध प्रकार की शक्ति बताते हैं, जैसे जीव को सुगति, दुर्गति मे लेजाना, सुखी या दुःखी बनाना, राजा से रक और रक से राजा बनाना, स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री बनाना, निर्धन को धनवान और धनवान को निर्धन बनाना। यह सब पुद्गल कर्म की लीला है। भौतिक शक्ति का परिणाम है। यह लीला आजकल की नहीं है किन्तु अनादि अनन्त काल से होती आरही है और होती रहेगी। सुक्षेपु किं बहुना ?



चिद्रूप आत्मा को जड़रूप देखता है। अद्वितीय को सद्वितीय की तरह चिद्रूप को जड़रूप देखता है। अविद्या का उपादान करणावली स्वप्नप्रपञ्चवत् महदादि प्रपञ्चरूप यह सृष्टि है।

मीमांसकों का उत्तर पक्ष

किमिदानीमसन्नेवाय प्रपञ्च ? श्रोमिति चेन्न । प्रत्यक्ष विरोधात् । न चागमेन प्रत्यक्षबाध सम्भवति । प्रत्यक्षस्य शीघ्रप्रवृत्तेन सर्वेभ्यो बलीयस्त्वात् । किञ्च प्रपञ्चाभाव प्रतिपत्ताऽवश्यमागमोऽपि प्रपञ्चान्तर्गतत्वादसद्रूपतया प्रत्येतव्य । कथं चागमेनैवागमस्याभाव प्रतीयेत ? असद्रूपतया हि प्रतीयमानो न कस्यचिदप्यर्थस्य प्रमाणं स्यात् । प्रामाण्ये वा नासत्त्वम् ।

(शा० दी० १ । १ । ५ पृष्ठ ११०)

अर्थ—क्या वर्त्तमान में भी जगद् विस्तार असत् है ? जगत् प्रत्यक्ष से सद्रूप दिखाई देता है, उसका आगम से बाधित होना सम्भवित नहीं है। कारण यह है कि प्रत्यक्ष सब से बलवान है और आगम की अपेक्षा इसकी प्रवृत्ति सब से पहले होती है।

दूसरी बात यह है कि जगत् को असद्रूप मानने वाले पुरुष को जगत् के अन्दर रहे हुए आगम को भी असद् मानना पड़ेगा, यह भी प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं किन्तु आगम प्रमाण से। तो इस में विचारणीय यह बात है कि आगम स्वयं अपना अभाव किस तरह सिद्ध करेगा ? यदि आगम असद्रूप सिद्ध हो जायगा तो वह किसी भी अर्थ के लिए प्रमाण स्वरूप न

रह सकेगा। और अगर प्रमाणरूप रहेगा तो वह असद्रूप नहीं रह सकेगा। (असद्रूप और प्रामाण्य ये दोनों परस्पर विरोधी हैं अत एक वस्तु में नहीं टिक सकते।

अनिर्वचनीयवाद

वेदान्तान्तर्गत अनिर्वचनीयवादी कहता है कि हम प्रपञ्च—जगत् को असत् नहीं कहते क्योंकि प्रत्यक्ष से विरोध है जो प्रत्यक्ष से सत् दिखाई देता है उसे असत किस प्रकार कहा जाय? किन्तु परमार्थ से सत् भी नहीं कह सकते क्योंकि आम ज्ञान से बाधा आती है। अत जगत् सत् और असत् दोनों से वाच्य न होकर अनिर्वचनीय है।

मीमासकों का उत्तरपक्ष

अनिर्वचनीयवादी का कथन ठीक नहीं है। सत् से भिन्न असत् है और असत् से भिन्न सत् है। यदि जगत् सत्रूप नहीं है तो असत होना चाहिए और यदि असत नहीं है तो सद्रूप होना चाहिए। एक का अभाव दूसरे की सत्ता स्थापित करता है। अर्थात् सत का अभाव असत की सत्ता और असत का अभाव सत की सत्ता स्थापित करता है। एक के अभाव से दोनों का अभाव हो जाय यह बात अशक्य है। अत जगत् को या तो सत् कहो या असत् कहो। जगत् की अनिर्वचनीयता नही टिक सकती। वस्तुत यही असत् है, जो कदापि प्रतीयमान न हो जैसे कि शशविषाण, आकाश इत्यादि। और सत्

त्पत्ति और विनाश के योग से अनित्य मात्र सिद्ध होगा किंतु अत्यन्ताभाव रूप असत सिद्ध न होगा।

दूसरी बात! ज्ञान से जगत्का नाश होता है तो वह ज्ञान कौन-सा है? आत्म ज्ञान या निष्प्रपञ्च आत्मज्ञान? केवल आत्मज्ञान तो विरोधी न होने से जगत् का विनाशक नहीं बन सकता। निष्प्रपञ्च आत्मज्ञान को कदाचित् नाशक माना जाय तो उसमें आत्मज्ञान अंश तो अविरोधी है। निष्प्रपञ्च याने प्रपञ्च का अभाव। जब तक प्रपञ्च विद्यमान है तब तक उस के अभाव का ज्ञान कैसे हो सकता है? उस ज्ञान के उत्पन्न हुए बिना प्रपञ्च का नाश भी नहीं हो सकता। अत अन्योन्याश्रयरूप दोष की आपत्ति प्राप्त होगी। इसलिए ज्ञान से भी जगत् की सत्ता का नाश नहीं हो सकता। जब कि जगत् आत्मज्ञान की तरह सत् सिद्ध हो जायगा तो अद्वैतवाद सिद्ध न होकर द्वैतवाद की सिद्धि हो जायगी। मृगजल तो पहले से ही असत् है, अत उसके नाशका तो प्रश्न ही नहीं ठहरता है। इसलिए यह दृष्टांत यहाँ लागू नहीं पड़ता है। इत्य द्वैतमतनिरास ।

(शा दी १।१।२ पृ १११)

अर्द्ध जरतीय अद्वैतवादी का पूर्व पक्ष

उपनिषद् को माननेवाला वेदान्ती अर्द्ध जरतीय अद्वैतवादी जाता है। वह कहता है कि ब्रह्म या आत्मा स्वय ही अपनी

इच्छा से जगत रूप में परिणत हो जाते हैं। जिस प्रकार बीज वृक्षरूप सच्चे परिणाम को प्राप्त करता है, उसी प्रकार आत्मा भी आकाशादि भिन्न भिन्न जगद् रूप में परिणत हो जाता है। नाम रूप भिन्न भिन्न होते हुए भी मूल कारण रूप एक आत्मा का ही यह सब विस्तार है।

जगत् के असत्यवाद, अविद्यावाद, भ्रान्तिवाद, मायावाद, ये सब वाद अनित्य जगत् के औपचारिक हैं। जिस तरह मृगतृष्णा, रज्जुसर्प और स्वप्न प्रपञ्च थोड़े समय तक आविर्भूत होकर पीछे विलीन हो जाते हैं उसी तरह जगद्विस्तार भी अमुक समय तक आविर्भाव प्राप्त करके पीछा लय को प्राप्त हो जाता है। अनित्य जगत् औपचारिक असत् है। आत्मा नित्य होने से पारमार्थिक सत्य है। जगत् का असत्यत्त्व वैराग्य पैदा करने के लिए है। आत्मा का परमार्थपन मुमुक्षुओं के उत्साह की वृद्धि करने के लिए है। मृत्पिण्ड के विकार का दृष्टान्त यहाँ ठीक घटित होता है। मिट्टी के वर्तन—घड़ा, शराव इत्यादि अनेक नाम वाले होते हुए भी एक मिट्टी के विकार हैं। मिट्टी सत्य है। घड़ा शराव आदि वाचारम्भमात्र हैं। नाम रूप भिन्न—भिन्न हैं वस्तु भिन्न नहीं है किन्तु एक ही मिट्टी है। आत्मा और जगत् के विषय में भी ऐसे ही समझ लेना चाहिए। जगत् नानारूप दिखाई देता है सो एक आत्मा का विकार परिणाम रूप है। आत्मा एक है किन्तु अन्त करण की उपाधी के भेद से भिन्न भिन्न जीव बनते हैं। जीव के भेद से बन्धमोक्ष की व्यवस्था हो सकती है।

वैसी हालत म स्वप्न की तरह अविद्या की प्रवृत्ति कहाँ से हो गई ? अविद्या भ्रान्ति है । भ्रान्ति किसी न किसी कारण से होती है। पुरुष विशुद्ध स्वभाव वाला है । उस के पास भ्रान्ति का कोई कारण नहीं है । विना कारण के अविद्या की उत्पत्ति से हो गई ? कैअविद्या सिद्ध न हो तो उसके योग से पुरुष की जगत्‌रूप मे परिणति या प्रतीति भी कैसे हो सकती है ?

अन्येनोपप्लवेऽभीष्टे, द्वैतवाद प्रसज्यते ।
स्वाभाविकीमविद्यां तु, नोच्छेत्तुं कश्चिदर्हति ॥ ५ ८१ ।
विलक्षणोपपाते हि नश्येत् स्वाभाविकी क्वचित् ।
नत्वेकात्माभ्युपायानां, हेतुरस्ति विलक्षण ॥ ५–८१ ॥

अर्थ—अविद्या को उत्पन्न करनेवाला पुरुष के सिवाय अन्य कारण मानने पर द्वैतवाद का प्रसग आयगा। अगर कारण न होने से पुरुष की तरह अविद्या को भी स्वाभाविक मानलोगे तो वह अनादि सिद्ध होगी। अनादि अविद्या का कभी भी उच्छेद नहीं हो सकता। इसलिए किसी भी पुरुषका मोक्ष भी नहीं हो सकता। कदाचित पार्थिव परमाणु की श्यामता जिस प्रकार अग्नि सयोग से नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अविद्या भी-स्वाभाविक अविद्या भी ध्यानादि विलक्षण कारण के योग से नष्ट हो जायगी ऐसा कहोगे तो मोक्षोच्छेद की आपत्ति तो दूर हा जायगी मगर एक ही आत्मा मानने वाले अद्वैतवादी क मत में आत्मा के सिवाय ध्यानादि कोई विलक्षण कारण ही नहीं है तो अविद्या का उच्छेद कैसे

होगा ? इस आपत्ति से अद्वैतवाद नहीं टिक सकता इसलिए द्वैतवाद स्वीकार करना युक्ति संगत है ।

अद्वैतवाद के विषय में बौद्धों का उत्तर पक्ष

तेषामल्पापराधं तु दर्शनं नित्यतोक्तितः ।
रूपशब्दादि विज्ञाने, व्यक्तं भेदोपलक्षणात् ॥

(त स ३२१)

एकज्ञानात्मके वे तु, रूपशब्दरसादयः ।
सकृद्वेद्या प्रसज्यन्ते, नित्येऽवस्थान्तरं न च ॥

(त० स० ३३०)

अर्थ—पृथिवी जलादिक अखिल जगत् नित्य ज्ञान के विवर्तरूप हैं। और आत्मा नित्य विज्ञान रूप है। अत नित्य विज्ञान के सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार कहने वाले वेदान्तियों का जो कुछ अपराध है उसको शान्तिरक्षित जी इस प्रकार दिखाते हैं—अहो अद्वैतवादियो ! विज्ञान एक और नित्य है। रूप, रस, शब्द आदि का जो पृथक पृथक ज्ञान होता है वह तुम्हारे मत से न होना चाहिए किन्तु एक ज्ञान से एक ही साथ रूप रसादि सर्व पदार्थों का एक रूप से ज्ञान होना चाहिये। अगर तुम यों कहोगे कि जिस प्रकार एक ही पुरुष में बाल्यावस्था, तरुणअवस्था, वृद्धावस्था भिन्न-भिन्न होती हैं उसी प्रकार ज्ञान की भी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ होंगी जिससे रूपविज्ञान, रसविज्ञान इत्यादि की उपपत्ति हो जायगी तो यह कथन भी ठीक नहीं है। विज्ञान की अवस्थाएँ बदल जाने पर विज्ञान नित्य नहीं रह सकता क्योंकि अवस्था

और अवस्थावान् का अभेद होने से अवस्था के अनित्य होने पर अवस्थावान् भी अनित्य सिद्ध होगा।

> रूपादिवित्तितो भिन्न, न ज्ञानमुपलभ्यते।
> तथा प्रतिक्षण भेदे, किमभिन्न व्यवस्थितम्॥
> (त० स० १९२)

अर्थ—रूप रसादि ज्ञान से पृथक् कोई नित्य विज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। जो उपलब्ध होता है वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। चिरकाल तक रहनेवाला कोई अभिन्नमान नित्यविज्ञान न तो प्रत्यक्ष से उपलब्ध होता है और न अनुमान से। इन दोनों प्रमाणों से जो वस्तु सिद्ध नहीं है उसका स्वीकार करना ही व्यर्थ है।

नित्यविज्ञान पक्ष में बन्ध-मोक्ष की व्यवस्था नहीं होती

> विपर्यस्ताविपर्यस्त-ज्ञानभेदो न विद्यते।
> एकज्ञानात्मके पुंसि, बन्धमोक्षौ ततः कथम्॥
> (त० स० ३३१)

अर्थ—नित्य एक विज्ञान पक्ष में विपरीत ज्ञान और अविपरीत ज्ञान, यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ज्ञान, सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान इस प्रकार का भेद नहीं रह सकता तो एक ज्ञान स्वरूप आत्मा में बन्ध मोक्ष व्यवस्था कैसे हो सकती है? हमारे मत में मिथ्याज्ञान का योग होने पर बंध और मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होने पर सम्यग्ज्ञान के योग से मोक्ष की व्यवस्था अच्छी तरह हो सकती है।

नित्य एक विज्ञान पक्ष में योगाभ्यास की निष्फलता

किं वा निवर्त्तयेद्योगी, योगाभ्यासेन साधयेत् ।
किं वा न हातु शक्यो हि, विपर्यासस्तदात्मकः ॥
तत्त्वज्ञानं नचोत्पाद्य तादात्म्यात् सर्वदा स्थिते ।
योगाभ्यासोपितेनायम् अफल सर्व एव च ॥
(त० स० ३३४-३३५)

अर्थ—नित्य विज्ञान पक्ष में यदि मिथ्याज्ञान ही नहीं है तो योगी योगाभ्यास के द्वारा किसकी निवृत्ति करेगा और किसकी साधना करेगा ? यदि नित्य विज्ञान को विपर्यासरूप अर्थात मिथ्याज्ञानरूप कहोगे तो उसका त्याग नहीं हो सकता क्योंकि वह नित्य है। नित्य की निवृत्ति अशक्य है। नित्य विज्ञान आत्मरूप होने से सदा विद्यमान रहेगा। विद्यमान तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति अशक्य है अत तत्वज्ञान के लिए योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए तुम्हारे मतसे योगाभ्यास आदि सर्व प्रक्रिया निष्फल हो जाती है।

अद्वैतवाद के विषय में साङ्ख्यों का उत्तर पक्ष

नाविद्यातोप्यवस्तुना बन्धायोगात्
(सां० द० १।२०)

भावार्थ—क्षणिक विज्ञानवादी योगाचार बौद्ध और नित्य विज्ञानवादी वेदान्ती ये दोनों अद्वैतवादी हैं क्योंकि विज्ञान के सिवाय अन्य पदार्थ नहीं मानते हैं। वेदान्ती एक ही नित्य विज्ञानमय ब्रह्म मानते हैं और योगाचार बौद्ध अनन्त क्षणिक विज्ञान व्यक्तियों का एक सन्तान मानते हैं। ये दोनों अविद्या को

को सत् मानने पर विज्ञान और अविद्या ये दो पदार्थ सिद्ध होने पर विजातीय द्वैतता प्राप्त होगी । वेदान्तियों के लिए द्वैतता मात्र दोषापत्ति रूप है ।

विरुद्धोभयरूपा चेत॥ (सां० द० १।२३)

भावार्थ—साख्य कहते हैं कि अविद्या को सत् या असत् मानने मे दोषापत्ति प्राप्त होनेसे विरुद्ध उभयरूप मान लो,अर्थात् सत्,असत् सदसत् और सदसत्से विलक्षण ये चार कोटियाँ हैं । इनमें से पहिली दो सत् और असत् का तो निषेध हो चुका । तीसरी सत् असत् रूप कोटि परस्पर विरोधी है। सत् से विरुद्ध असत् और असत् से विरुद्ध सत् यह तीसरी कोटि तो परस्पर विरुद्ध होने से नहीं मानी जा सकती । तब विलक्षण सदसद्रूप चौथी कोटि मानोगे तो उसका जवाब नीचे दिया जाता है ।

न तादृक्पदार्थाप्रतीतेः ॥ (सां० द० १।२४)

भावार्थ—जगत् में ऐसा कोई पदार्थ ही प्रतीत नहीं होता है। सापेक्ष सत् असत् तो मिल सकता है मगर चौथी कोटि वाली निरपेक्ष सत् असत् वस्तु परस्पर विरुद्ध होने से कहीं भी प्रतीत नहीं होती । अन्य यह भी दोष है कि यदि अविद्या को साक्षात् बन्ध का हेतु मानोगे तो ज्ञान से अविद्या का नाश होने पर प्रारब्ध भोग की अनुपपत्ति होगी। क्योंकि दुःख भोगरूप बंध के कारण का नाश होने पर कार्य की निवृत्ति हो जायगी। हमारे मत से तो अविद्या जन्मादि संयोगद्वारा बन्ध का हेतु होगी । जन्मादि संयोग प्रारब्ध की समाप्ति के बिना नष्ट नहीं होते। इत्यलविस्तरेण ।

ब्रह्मवाद के विषय में नैयायिकों का उत्तर पक्ष

बुद्ध्यादिभिश्चात्मलिङ्गै निरूपाख्यमीश्वरं प्रत्यक्षानुमाना-
गमविषयातीत क शक्त उपपादयितुम् ॥

(न्या० वा० भा० ४।१।२१)

अर्थ—ब्रह्मवादी ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानते हैं। 'ईश्वर कारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्' । ४ । १ । १६ । इस सूत्र में आए हुए ईश्वर शब्द का अर्थ वे ब्रह्म करते हैं। ईश्वरो ब्रह्म । ईशनायोगात् । ईशना च चेतना शक्ति क्रियाशक्तिश्च । सा चात्मनि ब्रह्मणावि। ब्रह्म ईश्वर स एव कारणं जगत । न चाभावो वा प्रधान वा परमाणवा वा चेतयत ॥ अर्थ—ईशनायाग मे ईश्वर शब्द निष्पन्न होता है । ईशना चेतना शक्ति और क्रिया शक्ति दो प्रकार की है । वह आत्मा और ब्रह्म में है । ब्रह्म ही ईश्वर है, वही जगत् का कारण है । अभाव, प्रकृति या परमाणु जगत् क कारण नहीं हैं। ब्रह्मवादियों का यह पूर्व पक्ष है । नैयायिक इसका उत्तर देते हैं कि आत्मा को जानने के लिए आत्मा में लिङ्ग रूप बुद्धि इच्छा आदि विशेष गुण माने जाते हैं । ब्रह्म तो निरुपाधिक है। उसको जानने के लिए कोई लिङ्ग या निशानी नहीं है । मुख्य बात तो यह है कि प्रमाण के बिना प्रमेय की सिद्धि नहीं हो सकता। ब्रह्म की सिद्धि तुम किस प्रमाण से करोगे ? प्रत्यक्ष तो ब्रह्म का नहीं हो सकता क्योंकि वह किसी भी इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं है। ब्रह्म को बताने वाला कोई खास हेतु नहीं है अत अनुमान से भी ग्राह्य नहीं हो सकता । सर्वसम्मत आगम प्रमाण भी नहीं है । इसलिए भाष्यकार कहते हैं कि "प्रत्यक्षानुमानागमविषयातीत क शक्त उपपादयितुम्" प्रमाण के विषय से अतीत ब्रह्म

का उपपादन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ? कोई नहीं। जब ब्रह्म की ही उपपत्ति नहीं हो सकती तो उसको उपादान कारण मानने की बात मूल से ही उड जाती है। 'मूल नास्ति कुत शाखा' अर्थात् जहाँ मूल ही नहीं है वहाँ शाखा की क्या बात की जाय ? नैयायिक कहता है कि इसलिए आत्म विशेष रूप ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण मान लो। प्राणियों के कर्मों के अनुसार वह जगत् बनाता है। वस्तुत ईश्वरवादियों का यही सिद्धान्त है। प्राचीनतमनैयायिक आचार्य तो ईश्वर को नियन्तामात्र ही मानते हैं कर्त्तारूप से नहीं। इत्यलविस्तरेण।

अद्वैतवाद के विषय में जैनियों का उत्तर पक्ष •

अत्राप्यन्ये वदन्त्येव, ऽविद्या न सत पृथक्।
तच्च तन्मात्रमेवेति भेदाभासोऽनिबन्धन ॥
(शा० वा० स० स्तबक ८। ४)

अर्थ—अद्वैतपक्ष के विषय में वेदान्ती ऐसा कहते हैं कि अविद्या ब्रह्म से अलग नहीं है। ब्रह्म से अविद्या अलग मानने पर अद्वैतसिद्धान्त नहीं टिक सकता। सत् यह ब्रह्ममात्र है अर्थात् ब्रह्मकी ही सत्ता है। अविद्या की पृथक् सत्ता नहीं है। यदि ऐसी बात है तो घट, पट, स्त्री, पुरुष, पिता, पुत्र, सेठ, नौकर, पति, पत्नी इत्यादि जो भेद का आभास होता है उसका क्या कारण है ? कारण के विना कार्य नहीं बन सकता।

नैवाध्याऽभेदरूपापि, भेदाभासनिबन्धनम्।
प्रमाणमन्तरेणैत—दवगन्तु न शक्यते ॥
(शा० वा० स० ८। ५)

अर्थ—पूर्वपक्षी कहता है कि ब्रह्म के साथ अभेद भाव को प्राप्त हुई वही अविद्या भेदाभास का कारण बनेगी। उत्तरपक्षी कहता है कि अविद्या तभी कारण बन सकती है जब वह स्वयं प्रमाण से सिद्ध हो जाय। अविद्या प्रमेय है और प्रमेय प्रमाण के बिना नहीं जाना जा सकता।

भावेऽपि च प्रमाणस्य, प्रमेयव्यतिरेकत ।
ननु नाद्वैतमेवेति, तदभावेऽप्रमाणकम् ॥
(शा० वा० स० ८। ६)

अर्थ—अविद्या का निश्चय करने वाला प्रमाण कदाचित् स्वीकार कर लिया जाय किन्तु जब तक प्रमाण से प्रमेय की सत्ता का स्वीकार न किया जाय तब तक कार्य कारण भाव का निर्वाह नहीं हो सकता। वेदान्ती कहते हैं कि हम ऐसा नहीं कहते कि केवल अद्वैत ही है। यों तो प्रमाण और प्रमेय दोनों की व्यवस्था की हुई है। यदि प्रमाण को भी स्वीकार न करें तो अद्वैततत्त्व भी अप्रमाण हो जायगा। उत्तरपक्षी कहता है कि एक ओर द्वैत और दूसरी ओर अद्वैत इस प्रकार का परस्पर विरोधी कथन उन्मत्त के बिना अन्य कौन स्वीकार कर सकता है ?

विद्याविद्यादिभेदाच , स्वतन्त्रेणैव बाध्यते ।
तत्संशयादियोगाच्च प्रतीत्या च विचिन्त्यताम् ॥
(शा० वा० स० ८।७)

अर्थ—"विद्या चाविद्या च, यस्तद्वेदोभय सहा विद्यया मृत्यं तीर्त्वा, विद्ययाऽमृतमश्नुते", यह एक श्रुति है। इसमें विद्या और अविद्या का भेद स्पष्ट बताया हुआ है। विद्या का फल

अमृत प्राप्ति और अविद्या का फल मृत्युतरण है। कार्यभेद से कारण में भी भेद होता है। इसलिए उक्त श्रुति से स्वतन्त्ररूप से अद्वैततत्त्व का निरास हो जाता है। दूसरी बात यह है कि "तत्त्वमसि" इत्यादिश्रुति अद्वैत बोधक है, "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये पर चापर च" "पर चापर च ब्रह्म यदोङ्कार" इत्यादि श्रुति द्वैतबोधक है। इस पर संशय होना स्वाभाविक है कि प्रथमश्रुति सच्ची है या दूसरी? इस प्रकार आगमप्रमाण से बाधा और संशय उत्पन्न होने का संभव होने से अद्वैतवाददूषित ठहरता है। तीसरी बात है प्रत्यक्ष प्रतीति की। घट, पट आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएं प्रत्यक्ष से दिखाई देती हैं। घटपटादि भेद की जो प्रत्यक्ष प्रतीति होती है वह भी अद्वैततत्त्व का खण्डन करती है। वेदान्तियों का दृष्टि सृष्टिवाद भी बौद्धों के शून्यवाद के बराबर है। कहा भी है कि—

> प्रत्यक्षादि प्रसिद्धार्थ विरुद्धार्थाभिधायिन
> वेदान्ता यदि शास्त्राणि, बौद्धै किमपराध्यते ॥१॥
> अन्ये त्वाख्यानयन्त्येव, समभाव प्रसिद्धये।
> अद्वैतदेशनाशास्त्रे निर्दिष्टा न तु तत्त्वत ॥

(शा० वा० स० ८।८)

अर्थ—जैन वेदान्तियों को कहते हैं कि शास्त्र में जो अद्वैततत्त्व का उपदेश दिया गया है वह अद्वैततत्त्व की वास्तविकता बताने के लिये नहीं किन्तु जगत में मोह प्राप्त कर के जीव राग द्वेष को प्राप्त करते हैं उनको रोकने के लिए और समभाव की प्रतीति कराने के लिए तथा शत्रु मित्र को एक दृष्टि से देखने के लिए

है वह उपदेश 'आत्मैवेद सव' "ब्रह्मै वेदसर्वं" इत्यादि रूप है। जगत् को असार तुच्छ मानकर सब को आत्मसमदृष्टि म देखन का उपदेश देना ही शास्त्रकार का आशय है। इसमें तुम्हारी और हमारी एक वाक्यता है। इत्यलम्।

सृष्टि के विषय में मीमासा श्लोकवार्तिककार कुमारिल भट्ट का अभिप्राय

यदा सर्वमिदं नासीत् क्वावस्था तत्र गम्यताम्।
प्रजापते क वा स्थान, कि रूप च प्रतीयताम्॥
(श्लो० वा० अधि० ११४५)

अर्थ—ब्रह्मवादिओं के कथनानुसार सृष्टि की आदि में यदि ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं था तो जगत् की अवस्था किसी भी प्रकार बुद्धि में नहीं उतर सकती। और फिर प्रजापति को सृष्टा माना जाता है सो उस प्रजापति का स्थान क्या होगा? पृथिवी आदि न होने से उसका कुछ भी आधार नहीं है। जो प्रजापति माना जाता है वह शरीर सहित है या शरीर रहित है? यदि शरीर रहित माना जाय तो सृष्टि रचना की इच्छा और प्रयत्न चेष्टा नहीं घटित हो सकते। शरीर सहित मानने पर भूतों की उत्पत्ति के बिना भौतिक शरीर संभव नहीं हो सकता।

ज्ञाता च कस्तदा तस्य, यो नरान् बोधयिष्यति।
उपलब्धेर्विना चैतत्, कथमध्यवसीयताम्॥
(श्लो० वा० ११४६)

अर्थ—प्रजापति ने जब सृष्टि बनाई उस वक्त उसका जानने वाला कौन था जो लोगों को सृष्टि के होने की बात

बता सकता। जिस वस्तु की उपलब्धि साक्षात्कार नहीं है उसका निश्चय भी कैसे हो सकता है।

प्रवृत्ति कथमाद्या च, जगत सम्प्रतीयते।
शरीरादेर्विना चास्य, कथमिच्छापि सर्जने॥
(श्लो० वा० २।४७)

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ के पहले जब कुछ भी साधन विद्यमान न था जगत् रचना की आद्य प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? दूसरी बात शरीर के अभाव में सजन करने की इच्छा भी किस प्रकार हो सकती है?

शरीराद्यथ तस्य स्यात्तस्योत्पत्तिर्न तत्कृता।
तद्वदन्य प्रसङ्गोपि नित्यं यदि तदिष्यते॥
(श्लो० वा० २,४८)

पृथिव्यादावनुत्पन्ने किम्मयं तत्पुनर्भवेत्।

अर्थ—यदि उसके शरीरादि माने जाय तो उनकी उत्पत्ति उस शरीर से तो नहीं हो सकती उनकी उत्पत्ति के लिए अन्य शरीर की आवश्यकता होगी। उस अन्य शरीर के लिए तीसरे शरीर की आवश्यकता होगी इस तरह अनवस्था दोष प्राप्त होगा। कदाचित् उस शरीर को नित्य माना जाय तो वह पृथिवी आदि के बिना कैसे रह सकेगा? क्यों कि प्रलय में पृथिवी आदि का नाश माना गया है।

प्राणिनां प्रायदुःखा च, सिसृक्षाऽस्य न युज्यते।
(श्लो० वा० २।४९)

साधन धारणधर्मादि तदा किन्चिन्न विद्यते।
न च निस्साधन कर्त्ता, कश्चित्सृजति किन्चन ॥
(श्लो० वा० २।५०)

अर्थ—यह जगत् दुःख प्राय है। इसलिए हितेच्छु पुरुष को प्राणियों को दुःख देनेवाली सृष्टी बनाने की इच्छा करना ही उचित नहीं है। यदि इच्छा हो गई तो भी बिना साधन के केवल इच्छा से कार्य नहीं हो सकता। यदि प्राणियों के धर्माधर्मादि को साधन माना जाय तो यह भी नष्ट हो जाने से प्रलय काल में नहीं रह सकता। कर्त्ता कितना ही समर्थ क्यों न हो मगर साधन के बिना इच्छामात्र से कार्य नहीं कर सकता।

साधारण विना सृष्टि रूर्णनाभेरपीष्यते।
प्राणिनां भक्षणाच्चापि तस्य लाला प्रवर्तते ॥
(श्लो० वा० २।५१)

अर्थ—अदृष्ट धर्माधर्म भी रह सकता है किन्तु दृष्टसाधन के बिना केवल धर्माधर्म मात्र से कार्य नहीं बन सकता। कुम्भकार भी दृष्टसाधन मृत्तिका आदि तय्यार हो तभी घट वगैरह बनाने के लिए प्रवृत्ति करता है। मिट्टी के बिना केवल अदृष्ट पर आधार रखकर प्रवृत्त नहीं होता। मकड़ी का दृष्टान्त देकर यदि यों कहो कि वह दृष्ट साधन के बिना ही मुख में से लार निकाल कर लम्बी लम्बी जाल बना लेती है उसी प्रकार प्रजापति भी दृष्ट साधन के बिना ही केवल अदृष्ट से सृष्टि बना सकता है तो यह कथन भी ठीक नहीं है। क्योंकि मकड़ी मक्खी आदि का भक्षण करती है और उसीसे लार

उत्पन्न होती है जिससे वह जाल बनाती है। यह भी दृष्टान्त में साम्य नहीं है। से लार बनाती है। अतः इस दृष्टान्त में साम्य नहीं है।

अभावाच्चानुकम्प्यानां, नानुकम्पाऽस्य जायते।

सृजेच्च शुभमेवैक—मनुकम्पा प्रयोजितः॥

(श्लो० वा० ५। ५२)

अर्थ—यदि ऐसा कहो कि प्राणियों की अनुकम्पा से प्रजापति को सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुई है तो यह भी ठीक नहीं है। अनुकम्पा दुःखनिमित्तक होती है। अशरीरी आत्मा को मुक्तात्मा के समान दुःख ही नहीं है तो अनुकम्पा किस पर होगी? दुःखी के दुःख को देखकर के ही अनुकम्पा होती है। जहाँ दुःखी ही नहीं है अर्थात् अनुकम्पा करने लायक कोई जीव ही नहीं है वहाँ प्रजापति की अनुकम्पा घटित नहीं हो सकती। यदि भविष्य के दुःख के लिए अनुकम्पा स्वीकार करो तो उस अनुकम्पा से सृष्टि सुखमय ही बनाना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं है। प्रथम ही कहा है कि यह सृष्टि 'प्रायदुःखा' दुःखमय है। इसलिए अनुकम्पा भी सृष्टि का कारण नहीं है।

अथाशुभाद्विना सृष्टिः, स्थितिर्वा नोपपद्यते।

आत्माधीनाभ्युपाये हि, भवेत्किनाम दुष्करम्॥

तथाचापेक्षमाणस्य, स्वातन्त्र्यं प्रतिहन्यते।

जगच्चासृजतस्तस्य, किं नामेष्टं न सिद्ध्यति॥

(श्लो० वा० ५। ५३। ५४)

अर्थ—यदि ऐसा कहो कि दुःख के बिना सुख की सृष्टि या स्थिति घटित नहीं होती है तो यह भी ठीक नहीं। जिसके सभी उपाय आत्माधीन हैं उसके लिए दुष्कर कार्य क्या हो सकता है? यदि प्रजापति को दूसरे की अपेक्षा रखनी पड़ती है तो

उसका स्वतन्त्रपना नहीं टिक सकता। प्रजापति यदि जगत् का न बनाये तो क्या उसकी इष्ट सिद्धि रुक जायगी?

> प्रयोजनमनुद्दिश्य, न मन्दोपि प्रवर्तते।
> एवमेव प्रवृत्तिश्चेत् चैतन्येनास्य किं भवेत् (२।५३ वे२)
>
> क्रीडार्थायां प्रवृत्तौ च, विहन्येत कृतार्थता।
> बहुव्यापारतायां च, क्लेशो बहुतरो भवेत् (२।५१)

अर्थ—मन्द बुद्धि वाला भी प्रयोजन के बिना कुछ प्रवृत्ति नहीं करता। प्रजापति यदि प्रयोजन के बिना यों ही प्रवृत्ति करता है तो उसके चैतन्य का क्या फल होगा? क्रीडा या लीला के लिए यदि प्रजापति की सृष्टि प्रवृत्ति मानोगे तो उसकी कृतार्थता नष्ट हो जायगी। और क्रीडा भी कैसी? जगत् अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना करने में इतना अधिक व्यापार करना पड़ता है कि आराम के बजाय क्लेश ही अधिक होना संभवित है।

> संहारेच्छाऽपि चैतस्य, भवेदप्रत्ययाद्युत।
> न च कैश्चिदपी शत्तु, कदाचिदपि शक्यते॥
> (श्लो॰ वा॰ २।२०)

अर्थ—सिसृक्षा सर्जन करने की इच्छा-की तरह संहारेच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता। प्राणियों की अनुकम्पा भी संहारेच्छा का प्रयोजन नहीं बन सकती। अनुकम्पा का फल रक्षण करना तो संभवित हो सकता है मगर संहार करना कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। सिसृक्षा और संहारेच्छा परस्पर विरुद्ध हैं इसलिए उनका अनुकम्पा रूप एक ही प्रयोजन संभवित नहीं हो सकता। प्रजापति का संहार

कर्म के आविर्भाव की कल्पना करना निरर्थक है। यदि वादी इस कथन में इष्टापत्ति करले तो उसे रोकते हैं—

न चानिमित्तयायुक्त-मुत्पत्त हीश्वरेच्छया।
यद्वा सस्यानिमित्त य स्तद्र ताजा भविष्यति॥ (४ ७३)

अर्थ—असली बात तो यह है कि स्वय ईश्वर की इच्छा भी विना निमित्त के उत्पन्न नहीं हो सकती। ईश्वरेच्छा को नित्य नहीं मान सकते। नित्य मान लेने से हमेशा सृष्टि हुआ करेगी। कादाचित्क अनित्य मानने पर उसकी उत्पत्ति का कोई निमित्त मानना ही पड़ेगा। जो निमित्त माना जाय उसी से कर्मों का आविर्भाव क्यों न माना जाय? बीच में अन्तर्गडुक समान ईश्वरेच्छा को निमित्त मानने का क्या प्रयोजन है?

नैयायिकों का पूर्वपक्ष

सन्निवेशविशिष्टाना-मुत्पत्ति गो गृहादिवत्।
साधयेद्वे तनाधिष्ठा, देहाना तस्य चोत्तरम्॥ (४ ७४)

अर्थ—आकृतिवाले पदार्थों की उत्पत्ति किसी चेतन अधिष्ठाता के विना नहीं हो सकती—जैसे मकान-घर वगैरह ईंट, चूना, लकड़ी, लोहा, पत्थर आदि के विद्यमान रहते हुए भी कुशल कारीगर के विना नहीं बन सकते, वैसे ही शरीर होने से किसी कुशल कारीगर का कारीगरी के बन सकता। इससे यह अनुमान बनता है कि शरीर नदी वगैरह सावयव पदार्थों का उत्पन्न करने

अर्थ—इस जगत् में ऐसा कोई स्थान नहीं है कि जहाँ सर्व प्राणियों का कर्म फलशून्य हो जाय। किसी भी प्राणी का ऐसा कोई कर्म नहीं है कि जिस के फल स्वरूप सर्वजीवों के भोग्य कर्म का भोग एक दम रुक जाय।

> यशेषकर्म नाशे वा, पुन सृष्टिर्न युज्यते।
> कर्मणा वाऽप्यभिव्यक्तौ, किंनिमित्त सदा भवेत् ॥ (४-७१)

अर्थ—प्रलयवादी शायद यों कहें कि प्रलय में जैसे सब वस्तुओं का नाश हो जाता है वैसे ही जीवों के शुभाशुभ कर्मों का भी नाश हो जाता है, इसलिए फलोपभोग की चिन्ता कहाँ रही ? यह कथन भी उपयुक्त नहीं है। यदि कर्मों का नाश हो जाता है तो प्रलय के पश्चात् दूसरी सृष्टि नहीं बन सकती। एक प्रलय सदा के लिए प्रलय ही बना रहेगा। यदि ऐसा कहो कि कर्मों का नाश नहीं किंतु तिरोभाव हो जायगा। प्रलयकाल पूर्ण हो जाने पर पुन आविर्भाव हो जायगा और दूसरी सृष्टि उत्पन्न हो जायगी। तो यह कथन भी योग्य नहीं है। कारण के बिना कार्य का सम्भव नहीं होता है। यह तो बताओ कि तिरोभूत कर्मों का आविर्भाव किस निमित्त से होगा ?

> ईश्वरेच्छा यदीष्येत, सैव स्याल्लोककारणम्।
> ईश्वरेच्छावशित्वे हि, निष्फला कर्मकल्पना ॥ (४-७२)

अर्थ—कर्म के आविर्भाव में ईश्वर की इच्छा को ही कारण बताओगे तो ईश्वर की इच्छा से ही जगत् उत्पन्न हो जायगा। ईश्वर की इच्छा से ही यदि सब कार्य बन जाते हों तो बीच में

ारा सिद्ध करके सिद्धसाधन दोष प्राप्त करने में क्या लाभ है ?

नैयायिकों के अनुमान में दूसरा दोष दिखाया जाता है—

> अनेकान्तश्च हेतुस्ते, तच्छरीरादिना भवेत् ।
> उत्पत्तिमांश्च तद्देहो, देहत्वादस्मदादिवत् ॥ (२७७)

अर्थ—नैयायिकों से पूछना चाहिए कि जिस ईश्वर को तुम कर्त्तारूप से स्वीकार करते हो वह शरीर सहित है या शरीर रहित है ? शरीर सहित है तो शरीर आकृति और अवयव से युक्त होने से उसका बनाने वाला कोई कुशल कारीगर—चेतनान्तर होना चाहिए । अन्य चेतनान्तर है नहीं, इसलिए साध्य बिना हेतु रह जाने से हेतु अनेकान्त व्यभिचारी हुआ और इसलिए अनुमान भी दूषित हो गया । यदि इस प्रकार कहो कि ईश्वर का शरीर उत्पत्ति वाला नहीं है किन्तु नित्य है तो यह बात भी उचित नहीं है । आकृतिवाला सावयव शरीर हम लोगों के शरीर के समान उत्पत्ति वाला ही हो सकता है नित्य नहीं हो सकता क्योंकि देहत्व दोनों में एक समान है ।

> अथ तस्याप्यधिष्ठाता, नेनैवेत्यविपक्षता ।
> अशरीरोह्यधिष्ठाता, नात्मा मुक्तात्मवद्भवेत् ॥ (२७८)

अर्थ—ईश्वर के शरीर का अधिष्ठान ईश्वर ही है । अर्थात् यदि ईश्वरको ही ईश्वर के शरीर का अधिष्ठाता मानोगे तो वह शरीर चेतनाधिष्ठित हो जाने से [illegible] पक्षता न

वाला कोई महान् व्यक्ति होना चाहिए। वही व्यक्ति ईश्वर है कि जिसके अधिष्ठातृत्व के नीचे सम्पूर्ण जगत् बनता है और उसका व्यवहार चलता है।

मीमासकों का उत्तर

कस्यचिद्धेतुमात्रत्वं, यद्यधिष्ठातृतेष्यते।
कर्मभिः सर्वजीवानां तत्सिद्धेः सिद्धसाधनम्॥ (२-७२)

अर्थ—हे नैयायिको! अधिष्ठातृत्व का अर्थ यदि साध्य साधक हेतु मात्र करोगे तो सर्वजीवों के कर्म से उन उन शरीरादि की उपपत्ति हो जायगी। कर्म से सिद्ध-बने हुए को ईश्वरेच्छा से सिद्ध करना चाहते हो इसलिए सिद्ध साधन नामक दोष का यहाँ प्रसङ्ग आयगा।

इच्छा पूर्वकपक्षेऽपि तत्पूर्वत्वेन कर्मणाम्।
इष्टहानिस्तदसिद्धिस्तु, दृष्टान्तेऽपि न विद्यते॥ (२-७३)

अर्थ—नैयायिक ईश्वर की इच्छापूर्वक हरएक कार्य होता है ऐसा मानता है। किन्तु वह भी इच्छा के बाद में कर्म का तो कारण मानता ही है। इच्छामात्र से तो कार्य नहीं बन जाता। उसने जो मकान का दृष्टान्त दिया है वह भी कारीगर की इच्छामात्र से तय्यार नहीं हो जाता कारीगर, मजदूर आदि के प्रयत्न-चेष्टा कर्म से तय्यार होता है। तुम्हारा साध्य दृष्टान्त में भी नहीं रहता है इसलिए यह अनुमान क्या सिद्ध करेगा? अतः हे नैयायिको! कर्म को ही जगत का कारण मानो जिससे सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। कर्मद्वारा सिद्ध हुए को ईश्वरेच्छा

दोष प्राप्त होता है और इसलिए अनुमान दूषित होजाता है। अत' जगत् ईश्वर कर्तृक सिद्ध नहीं होता है। यदि घट के ईश्वर और कुम्भकार दोनों को कर्त्ता मानोगे तो देहादिक के भी अनेक कर्त्ता सिद्ध होंगे। एक ही ईश्वर कर्त्ता है यह सिद्ध न होगा।

> कुलालवच्च नैतस्य,[व्यापारो यदि कल्पते।
> अचेतन कथ भाव स्तदिच्छामनुरुध्यते ॥ (५ ८१)
> तस्मान्न परमाणवादेरारम्भ स्यात्तदिच्छया।

अर्थ—यदि ईश्वर को अशरीरी मानोगे और कुम्भकारा दिक की तरह व्यापारप्रयत्न न मानोगे तो भी अचेतन परमाणु आदि ईश्वर की इच्छा का किस प्रकार अनुसरण करेंगे। ईश्वर में प्रयत्न नहीं है और अचेतन परमाणु आदि में ज्ञान नहीं है। ईश्वर की इच्छा से परमाणु आदि की प्रवृत्ति सम्भवित नहीं हो सकती अत जगत् को अनादि मानलो, यह नैयायिकों के प्रति कुमारिलभट्ट का उत्तर है।

सृष्टि और ईश्वर के सम्बन्ध में साख्यसूत्र का अभिप्राय

साख्यसूत्रकार कपिल मुनि ईश्वर में प्रत्यक्षप्रमाणरूप लक्षण की अव्याप्ति की शका करते हुए कहते हैं कि—

ईश्वरासिद्धे ॥ (सा० द० १। ६२)

अर्थ—ईश्वर के अस्तित्व में कोई प्रमाण नहीं है। अर्थात् ईश्वर ही किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है तो अव्याप्ति की शका ही कहाँ रही ? नैयायिक कहते हैं कि "क्षित्यादि सकर्तृकं कार्यत्वात्" पृथिवी आदि का कोई कर्त्ता होना चाहिये क्योंकि

यह कार्य रूप है घटादिवत् । यह अनुमान प्रमाण ईश्वर की सिद्धि करता है । इसलिए हे साख्यो ! तुम जो ईश्वर की असिद्धि कहते हो वह ठीक नहीं है। इसके उत्तर में साख्य कहते हैं कि अहो नैयायिको ! तुम जिस ईश्वर को कर्त्तारूप से स्वीकार करते हो वह शरीर युक्त है या शरीर रहित है ? यदि शरीर सहित मानोगे तो सामान्यजीव के समान सर्वज्ञ न होने से जगत् का कर्त्ता नहीं बन सकता । और यदि अशरीरी मानोगे तो मुक्तात्मा के समान अकर्त्ता होने से जगत् कर्त्तृत्व की उपपत्ति नहीं हो सकती। स्वय सूत्रकार ही ईश्वर की असिद्धि के लिए युक्त्यन्तर बताते हैं—

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धि ॥

(सां० द० १ । ९३)

अर्थ—जगत् में पुरुष आत्मा दो प्रकार की हैं बद्ध और मुक्त । तुम्हारा माना हुआ ईश्वर मुक्त मे गिना जाय या बद्ध में ? यदि मुक्त में गिनोगे तो मुक्त में ज्ञान, चिकीर्षा और प्रयत्न का अभाव होने से कर्तृत्व सिद्ध नहीं हो सकता और यदि बद्ध में गिनोगे तो धर्म अधर्म का योग होने से ईश्वरपन नहीं रह सकता।

सृष्टिवाद और योग दर्शन

पतञ्जलि ऋषिके योगदर्शन में यद्यपि ईश्वर स्वीकार किया हुआ है पर वह सृष्टिकर्त्तारूपसे नहीं किन्तु आत्म शुद्धि के साधन रूप से स्वीकार किया हुआ है । देखिये—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।

(यो० सू० १।२४)

अर्थ—क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से जिसका परामर्श स्पर्श नहीं हो सकता ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञत्वबीजम् ।

(यो० सू० १।२५)

अर्थ—उसमें निरतिशय सर्वोत्कृष्ट ज्ञान होने से वह सर्वज्ञ है।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

(यो० सू० १।२६)

अर्थ—अवतार रूपसे माने हुए अन्य राम कृष्णादि में वह ईश्वर गुरु महान है क्यों कि वह कालमें अवच्छिन्न नहीं है अर्थात् अनादि है।

तस्य वाचकः प्रणवः ।

(यो० सू० १।२७

अर्थ—उस ईश्वर का वाचक प्रणव ओंकार शब्द है।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।

(यो० सू० १।२८)

अर्थ—प्रणव का जप करना चाहिए और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए।

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

(यो० सू० १।२९)

अर्थ—जप और भावना से शरीरस्थ आत्मा का भान होता है और साथ ही अन्तराय दूर हो जाते हैं। इससे मन निर्विघ्नतया समाधि में लग जाता है।

वैशेषिक दर्शनकार कणाद ने न तो ईश्वर को स्वीकार ही किया है और न निषेध ही। चुपकी साधी है। कणाद परमाणुवादी हैं। परमाणुओं के संघात से जगत् का चय अपचय होता रहता है। बीच में जगत् कर्त्तारूप ईश्वर की आवश्यकता उसने स्वीकार नहीं की है।

यह बात पहले कही जा चुकी है कि न्यायदर्शनकार गौतम ऋषि ने स्वयं सृष्टिकर्त्ता रूप से ईश्वर का समर्थन नहीं किया है किन्तु भाष्यकार वात्सायन ने ईश्वरवाद को अपना लिया है। पीछे के ग्रन्थकारों ने अपने अपने ग्रन्थों में ईश्वरवाद का विस्तार किया है और इसीलिए नैयायिकों को ईश्वरवाद के पूर्वपक्षी रूप से उल्लेख करते आये हैं। अस्तु; बौद्धदर्शन और जैन दर्शन ने सृष्टिवाद का जोर शोर से प्रतिवाद किया है। इन में पहले बौद्ध दर्शन का निरीक्षण करते हैं—

सृष्टिवाद और बौद्ध दर्शन

तत्त्वसंग्रहकार शान्ति रक्षित ने नैयायिकों का पूर्व पक्ष इस प्रकार उपन्यस्त किया है—

सर्वोत्पत्तिमतामीशमन्ये हेतु प्रचक्षते।
नाचेतन स्वकार्याणि, किल प्रारभते स्वय ॥

(त० स० ४६)

अर्थ—नैयायिक ईश्वर को उत्पत्तिवाले सर्व पदार्थों का कारण मानता है और इसके समर्थन में कहता है कि अचेतन धर्माधर्मादिक अपनी इच्छा से स्वय अपना अपना कार्य नहीं कर सकते, उनको प्रेरणा करने वाला दूसरा कोई होना चाहिये जो प्रेरणा करने वाला है वही ईश्वर है। ईश्वर की सिद्धि के लिए नैयायिक जो अनुमान प्रमाण देते हैं वह यह है—

यत्स्वारम्भकावयव सन्निवेशविशेषवत्।
बुद्धिमद्धेतुगम्यत तद्यथाकलशादिकम् ॥
द्वीन्द्रियग्राह्यमग्राह्य, विवादपदमीदृशम्।
बुद्धिमत्पूर्वक तेन वैधर्म्येणाणवो मता ॥

(त० स० ४७।४८)

भावार्थ—चक्षु और स्पर्श इन दो इन्द्रियों से ग्राह्य पृथिवी, जल और तेज ये तीनों, तथा इनसे अग्राह्य वायु, इन चारों पदार्थों में जो विवादास्पद हों अर्थात् कर्तृत्व विषयक जिनमें मतभेद हों, उन को यहाँ पक्षरूप से रक्खा है माना है। घटपट आदिको पक्ष कोटि में गिनें तो सिद्ध साधन दोष प्राप्त होता है, क्योंकि उनमें बुद्धिमत् पूर्वकत्व वादी प्रतिवादी दोनों के मत से सिद्ध है। उसको पुन सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है?

इसलिए पक्ष को "विवादास्पद" यह विशेषण लगाया गया है। 'बुद्धिमत्पूर्वकम्' यह साध्य है। 'स्वारम्भावयवसन्निवेशविशिष्टत्वात्' यह हेतु है। 'यथाकलशादिकम्' यह दृष्टान्त है। 'अणव' यह वैधर्म्य दृष्टान्त है याना व्यतिरेकी दृष्टान्त है। अर्थात् पृथिवी आदि सावयव पदार्थ बुद्धिमान् कर्त्ता द्वारा बने हैं क्योंकि आकृति विशिष्ट हैं। जैसे घट, कलशादिक। जो वैसी विशिष्ट आकृतिवाले नहीं हैं वे बुद्धिमत् कर्त जन्य भी नहीं हैं। जैसे परमाणु। यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है। इस अनुमान को नैयायिक ईश्वर की सिद्धि के लिए प्रमाण रूप बताते हैं।

नैयायिकों का दूसरा प्रमाण

तन्वादीनामुपादान, चेतनावदधिष्ठितम्।
रूपादिमत्वात्त स्वादि, यथा दृष्ट स्वकार्यकृत्॥

(स० स० ७६)

अर्थ—तन्वादि—शरीरादि, उनका उपादान कारण परमाणु आदि यह पक्ष है। 'चेतनावदधिष्ठित स्वकार्यकृत्' यह साध्य है और 'रूपादिमत्वात्' यह हेतु है। तन्तु आदि दृष्टान्त है। वे इस दूसरे अनुमान प्रमाण को इश्वर का साधक बताते हैं। अथात् पटादि के उपादान कारण तन्तु अपनी ओर से स्वयं पटरूप में परिणत नहीं होत, किन्तु जैसे उनको बुनने के लिए चेतना वाला तन्तुकार होता है वैसे ही परमाणु स्वय अपनी इच्छा से शरार रूप परिणत नहीं होते, किन्तु उनको याजना

करने वाला कोई सचेतन होना चाहिए। जो योजना करने वाला है, वही ईश्वर है।

न्यायाचार्य उद्योतकार का प्रथम प्रमाण

धर्माधर्माणव सर्वे, चेतनावदधिष्ठिता
स्वकार्यारम्भका स्थित्वा, प्रवृत्तेस्तुरीतन्तुवत् ॥

(त० स० ५०)

अर्थ—"सर्वे धर्माधर्माणव" यह पक्ष है। 'चेतनावदधिष्ठिता स्वकार्यारम्भका' यह साध्य है। 'स्थित्वा प्रवृत्ते' यह हेतु है। और 'तुरी तन्तुवत्' यह दृष्टान्त है। अर्थात् तुरीतन्तु की रह रह करके जो प्रवृत्ति होती है वह प्रवृत्ति कार्यजनक तभी हो सकती है, जब कि उसके ऊपर कोई न कोई चेतनावाला अधिष्ठाता हो। उसी प्रकार धर्म-अधर्म और परमाणुओं में रह रह करके जो नियतकाल में प्रवृत्ति होती है वह कार्यसाधक तभी हो सकती है, जब कि उनके ऊपर कोई चेतना वाला अधिष्ठाता हो। यह अधिष्ठाता ईश्वर के बिना अन्य नहीं हो सकता, अतः इस अनुमान से ईश्वर की सिद्धि हो जाती है। यह उद्योतकार का अभिप्राय है।

उद्योतकार का दूसरा प्रमाण

सर्गादौ व्यवहारश्च, पुंसामन्योपदेशजः ।
नियतत्वात्प्रबुद्धानां, कुमारव्यवहारवत् ॥ (त० स० ५१)

अर्थ—'सर्गादौ पुंसा व्यवहार' यह पक्ष है। 'अन्योप

दशान' यह साध्य है। 'नियतत्वात्' यह हेतु है। 'कुमारव्यवहारवत्' यह दृष्टान्त है। अर्थात् सृष्टि की आदि में जो पुरुषों का व्यवहार होता है, वह किसी के उपदेश से होता है क्योंकि नियमित है। जैसे कि कुमारों का व्यवहार वृद्धों के उपदेश के अनुसार होता है। सर्ग-सृष्टि की आदि में व्यवहार सिखाने वाला ईश्वर है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता, अतः व्यवहार शिक्षक रूप में ईश्वर की सिद्धि हो जाती है।

उद्योतकार का तीसरा प्रमाण

महाभूतादिकं व्यक्तं, बुद्धिमद्धेत्वधिष्ठितम्।
याति सर्वस्य लोकस्य सुखदुःखनिमित्तताम्॥
अचेतनत्वकार्यत्व विनाशित्वादि हेतुतः।
वास्यादिवदतस्स्पष्टं, सत्त्वं सर्वं प्रतीयते॥

(त० सं ५२ ५३)

अर्थ—'महाभूतादिक' यह पक्ष है। 'बुद्धिमद्धेत्वधिष्ठित सत् सर्वस्य लोकस्य सुखदुःखनिमित्तता याति' यह साध्य है। 'अचेतनत्वात् कार्यत्वात् विनाशित्वात्' इत्यादि हेतु हैं। 'वास्यादिवत्' यह दृष्टान्त है। अर्थात् जैसे बसोला आदि औजार किसी बुद्धिमान पुरुष के हाथ में आवें तभी अनुकूल या प्रतिकूल कार्य हो सकता है। वैसे ही महाभूतादिक किसी बुद्धिमान् की चेतना से अधिष्ठित हों तभी सुखदुःखादि के निमित्त हो सकते हैं। क्योंकि वे अचेतन हैं, कार्य रूप हैं, विनाशी हैं। अतः उनकी योजना करनेवाला कोई होना चाहिये। जो योजना करने

वाला है वही ईश्वर है। इस प्रकार ईश्वर सिद्धि के लिए उद्योत कार के तीन प्रमाण हैं।

बौद्धों का उत्तर पक्ष

तत्त्वसंग्रहकार शान्तिरक्षित जी उक्त प्रमाणों में हेत्वाभास रूप दूषण क्रमश दिखाते हैं—

> तदत्रसिद्धता हेतो , प्रथमे साधने यत ।
> सन्निवेशो न योगास्य , सिद्धो नावयवो तथा ॥
> द्रव्यत्वेनाभ्युपेतस्य, द्वयस्यानुपलम्भनात् ।
> साधनानन्वित चेद्—मुदाहरणमप्यत ॥
>
> (त० सं० ८६।५७)

अर्थ—उक्त प्रयोगों में जो प्रथम 'स्वारम्भकावयवसन्निवे' शविशिष्टत्वात्' इस हेतुवाला प्रयोग है वह असिद्ध दोष से दुष्ट है। उक्त हेतु में दो टुकडे हैं,एक सन्निवेश और दूसरा सन्निवेश विशिष्ट अवयवी। सन्निवेश का अर्थ अवयव संयोग करोगे, किन्तु संयोगरूप सन्निवेश और अवयवी इन दोनों में से एक भी सिद्ध नहीं है। शान्ति रक्षित नैयायिकों को कहते हैं कि तुम्हारे मत मे संयोग और संयोग विशिष्ट अवयवी का चाक्षुष प्रत्यक्ष होना चाहिए, किन्तु रूप के सिवाय संयोग या संयोगविशिष्ट अवयवी किसी की भी उपलब्धि नहीं होती है। जो कुछ भी उपलब्ध होता है वह मात्र रूप है। हेतु उपलब्ध न होने से असिद्धहेत्वाभास नामक दोष प्राप्त होता है,

अत उक्त अनुमान निष्फल है। दूसरी बात कलशादि का जो उदाहरण दिया गया है, वह भी साधन विकल है, क्योंकि कलशादि में रूप के सिवाय, सयोग या सयोगविशिष्ट अवयवी काइ नहीं पाया जाता।

स्वरूपासिद्धि बताकर अब आश्रयैकदेशासिद्धि बताई जाती है –

> चक्षु स्पर्शन विज्ञान, भिन्नाभमुपजायते।
> एकालम्बनता नास्ति, तयोर्गं धादिवित्तिवत ॥
> (त० सं० ५८)

अर्थ—द्वीन्द्रियग्राह्य अग्राह्य जो पक्ष कहा गया है उसमें द्वीन्द्रियग्राह्य वस्तु सिद्ध नहीं है क्योंकि चक्षुइन्द्रिय ज्ञान भिन्न है और स्पर्शन इन्द्रियज्ञान भिन्न है। दोनों ज्ञानों की विषयता भी भिन्न-भिन्न है। जिस प्रकार, गन्धज्ञान, रसज्ञान भिन्न भिन्न हैं और विषय भी दोनों का भिन्न भिन्न है, उसी प्रकार दो इन्द्रियों से ग्राह्य एक भी वस्तु उपलब्ध नहीं होती—प्रसिद्ध भी नहीं है – अत आश्रयासिद्धि रूप हेत्वाभास दूषण प्राप्त होने से उक्त अनुमान निरर्थक है।

चतुर्थ असिद्धि बताई जाती है—

> सन्निवेशविशिष्टत्व, यादृगृदेवकुलादिषु।
> कर्तर्यनुपलम्भेऽपि, यद्‌दृष्टो बुद्धिमद्‌गति ॥
> तादृगेव यदीष्येत, तन्वगादिषु धर्मिषु।
> युक्त स साधनाद्‌दृष्टा यथाभीष्टस्य साधनम् ॥
> (त० स० ६०-६१)

अर्थ—शान्तिरक्षित जी नैयायिकों को कहते हैं कि मन्दिर आदि में जिस प्रकार का सन्निवेश सयोग विशेष दिखाई देता है कि जो कर्त्ता की अनुपलब्धि में भी देखने वाले को बुद्धिमान् कर्त्ता का भान कराता है उसी प्रकार का सयोग विशेष यदि शरीर या पहाड़ आदि में होता तो इस साधन से इष्ट साध्य की साधना हो सकती। किन्तु दोनों के सन्निवेश में बहुत विलक्षणता है। वह बताइ जाती है—

अन्वय व्यतिरेकाभ्याम्, यत्कार्यं यस्य निश्चितम्।
निश्चयस्तस्य सद् दृष्टा विति न्यायो व्यवस्थित ॥
सन्निवेशविशेषस्तु, नैवामीषु तथाविध ।
न तु तर्वादिभेदेषु, शब्द एव तु केवल ॥
तादृश प्रोच्यमानस्तु सदिग्धव्यतिरेकताम्।
आसादयति वल्मीके, कुम्भकार कृतादिषु ॥

(त० स० ६३-६४-६५)

अर्थ—अन्वय और व्यतिरेक से जो कार्य जिससे निश्चित हो, उसको देखने से उसके कारण या कर्त्ता का निश्चय हो जाता है। यह न्याय व्यवस्थित है। जो सनिवेश विशेषण मन्दिर आदि में है वह शरीर, पहाड, समुद्रादि में प्रसिद्ध नहीं है। तरुआदि के भेद में भी वह सन्निवेश विशेष नहीं है। केवल शब्द मात्र से सादृश्य नहीं आ सकता। यदि सन्निवेश सामान्य को हेतु माना जाय तो मृत्तिका विकार से घटादिक में कुम्भकारकृतत्व के समान उद्धई के वल्मीक (बवी) में भी कुम्भकार कृतत्व की आशका हो जायगी। इसलिए सन्निवेश

विशेष को हेतु मानने पर वैसा सन्निवेश शरीरादि में प्रसिद्ध न होने से असिद्धि दोष प्राप्त होता है और सन्निवेश सामान्य का हेतु मानने पर जहाँ साध्य नहीं है वहाँ भी हेतु रह जाने से अनैकान्तिक दोष प्राप्त होता है। दोनों प्रकार से अनुमान दूषित है।

वैधर्म्य दृष्टान्त से साध्य की अव्यावृत्ति

अणुसहतिमात्रं च घटाद्यस्माभिरिष्यते।
तत्कारक कुलालादि—रणूनामेव कारक ॥
न व्यावृत्तस्ततो धर्म, साध्यत्वेनाभिवाञ्छित ।
यथोदाहरणादस्मा द्वैधर्म्येण प्रकाशितात् ॥

(त० स० ७८-९१)

अर्थ—शान्तिरक्षित जी नैयायिकों से कहते हैं कि घटादि पदार्थ अणुओं का समूह रूप है, वह अलग अवयवी नहीं है, ऐसा हम मानते हैं। कुम्भार आदि घटादि के कर्त्ता नहीं हैं किन्तु अणुसंघात के ही कर्ता हैं। तुमने अनुमान में जो वैधर्म्य रूप से अणुओं का उदाहरण दिया है वह अब वैधर्म्यरूप नहीं रह गया है क्योंकि उसमें साध्यधर्म की व्यावृत्ति नहीं रही है। अतः वैधर्म्य रूप से बताया हुआ दृष्टान्त साधर्म्य दृष्टान्त बन गया। अव्यावृत्त साध्यधर्मा वैधर्म्य दृष्टान्त का एक दोष है। उस दोष से अनुमान दूषित हो गया है अतः साध्य को सिद्ध नहीं कर सकता।

नैयायिक कहते हैं कि यदि हम विशेषरूप से साध्य बनाते तो उक्त दोष लगता मगर हम तो सामान्यरूप से बुद्धिमत्पूर्वकत्व

मात्र को साध्य बनाते हैं। उसके सिद्ध हो जाने पर सामर्थ्य से तरु आदि का कर्त्तारूप ईश्वर सिद्ध हो जायगा॥ घटादिका कर्त्ता जिस प्रकार कुलाल प्रसिद्ध है उस प्रकार यहाँ दूसरा कोई कर्त्ता प्रसिद्ध नहीं है अत सामर्थ्य से ईश्वर ही कर्त्ता सिद्ध हो जायगा।

इसके उत्तर में शान्तिरक्षित जी कहते हैं कि—

बुद्धिमत्पूर्वकत्व च, सामान्येन यदीष्यते।
तत्र नैव विवादो नो, वैश्वरूप्य हि कर्मजम्॥

(त० स० ८०)

अर्थ—यदि सामान्यरूप से साध्य मानोगे तो हमें कोई प्रकार का विवाद नहीं है क्योंकि सारे लोक की विचित्रता प्राणियों के शुभाशुभ कर्म से जनित है। वृक्ष आदि के कर्त्तारूप से भी शुभाशुभ कर्म प्रसिद्ध हैं। उनके कर्त्तारूप से यदि ईश्वर को पुन सिद्ध करोगे तो सिद्ध साधन दोष प्राप्त होगा। क्योंकि शुभाशुभ कर्म करने वाले जीव भी बुद्धिमान् हैं। अत सामान्यरूप से सिद्ध करने का अनुमान भी दूषित है।

विशेषरूप से सिद्ध करते दो दोष प्राप्त होते हैं, उन्हें बताते हैं—

नित्यैक बुद्धि पूर्वत्व—साधने साध्य शून्यता।
व्यभिचारश्च सौधादे—बहुभि करणे घ्रुवात्॥

(त० स० ८१)

अर्थ— नित्यैक बुद्धि पूर्वकत्व को यदि साध्य बनाया तो साधर्म्य दृष्टान्त घटकलशादिक में साध्य शून्यता दोष आवेगा। क्योंकि घटकलशादिक नित्य बुद्धि वाले पुरुष से नहीं बने हैं। अनेक पुरुषों की बुद्धि से बना हुई हवेली में हेतु का व्यभिचार दोष प्राप्त होगा। क्योंकि जहाँ साध्य नहीं है वहाँ हेतु रह जाता है।

प्रथम अनुमान में विस्तार से दोष दिखाकर अब द्वितीय अनुमान में संक्षेप से दोष दिखाये जाते हैं—

> एतदेव यथायोग्य—मवशिष्टेषु हेतुषु।
> योज्यं दूषणमन्यच्च, किंचिन्मात्र प्रकाश्यते ॥
> (स० स० ८३)

अर्थ—जो दोष पहले अनुमान में बताये गये हैं जैसे कि—असिद्धि, व्यभिचार, विरुद्ध, साध्यवैकल्य, सामान्य से सिद्ध साधन, विशेषरूप से सिद्ध करते व्यभिचार आदि—वे ही दोष अन्य चार अनुमानों में लगभग उसी रूप में प्राप्त होते हैं उनकी यथा योग्य योजना कर लेनी चाहिए। कुछ विशेष दोष हैं व बताये जाते हैं।

> विमुक्तस्योपदेष्टृत्वं श्रद्धागम्य पर यदि।
> वैमुख्य वितनुत्वेन, धर्माधर्म विवेकतः ॥
> (स० स० ८४)

अर्थ—उद्योतकार ने सृष्टि की आदि में व्यवहार शिक्षक के रूप में जो ईश्वर को सिद्ध करने के लिए अनुमान बताया

है वह ठीक नहीं है। क्योंकि ईश्वर में धर्माधर्म न होने से शरीर भी नहीं है। शरीर के अभाव में मुख का भी अभाव है। बिना मुख के उपदेशरूपता भी सम्भवित नहीं हो सकता। उपदेशक रूप में अन्य पुरुष की सिद्धि होने पर हेतु साध्याभाव का साधक हो जायगा और विरुद्धहेत्वाभास दोष होगा।

शान्तिरक्षित जी ईश्वर साधक प्रमाण में दोष बताकर के ईश्वर बाधक प्रमाण बताते हैं—

> नेश्वरो जन्मिनां हेतुरुत्पत्तिविकलत्वतः ।
> गगनाम्भोजवत्सर्वमन्यथा युगपद्भवेत् ॥
>
> (त० स० ८७)

अर्थ—जो ईश्वर स्वयं उत्पत्ति जन्म रहित है, वह अन्य जन्य पदार्थों को उत्पन्न नहीं कर सकता। आकाश कमल के समान। पूर्ण सामर्थ्यवान् ईश्वर यदि अन्य पदार्थों को उत्पन्न करने लगेगा तो क्षणभर में ही सर्व पदार्थ उत्पन्न हो जायगे। वसन्त ऋतु में ही वनस्पति फलती-फूलती है और चातुर्मास में ही वर्षा बरसती है, यह नहीं हो सकता। क्रम क्रम से जो पदार्थ होते हैं उनके क्रम का भी भंग हो जायगा। वर्ष के बाद होने वाला कार्य प्रथम क्षण में ही हो जायगा। किन्तु ऐसा होना इष्ट नहीं है। यदि यों कहो कि धर्माधर्मादि सहकारी कारण के विलम्ब से क्रम क्रम से कार्य होगा तो ईश्वर अपूर्ण सामर्थ्य वाला गिना जायगा क्योंकि सहकारियों की अपेक्षा रखता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता।

> यथाक्रमेण जायन्ते ते नैवेश्वरहेतुकाः ।
> यथोक्त साधनं दृभूता जडाना प्रत्ययाइव ॥
>
> (त० स० ८८)

अर्थ—जो पदार्थ क्रम क्रम से उत्पन्न होते हैं वे ईश्वर से उत्पन्न नहीं हो सकते। पूर्वोक्त अनुमान से उत्पन्न होने वाले जड़-वेसमझ मनुष्यों के निर्णय के समान—अर्थात् जैसे जड़ पुरुष के निर्णय ईश्वर जन्य नहीं हैं वैसे ही क्रमिक पदार्थ भी ईश्वर जन्य नहीं हो सकते।

तेषामपि तदुद्भूतो, विकला साधनाभिधा।
नित्यत्वादविकारित्वस्य नैव सा सहकारिणी॥

(त० स० ८६)

अर्थ—जड़ निर्णय भी (ईश्वर सब का निमित्त कारण होने से) ईश्वर जन्य हैं ऐसा मानकर दृष्टान्त की साध्यविकलता के दोष का निवारण करोगे तो पूर्वोक्त पाँचों अनुमानों का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। वे प्रयोग सहकारियों के होने पर सफल हो जायगे ऐसा कहोगे तो यह भी ठीक नहीं है। क्या ईश्वर का स्वभाव पहले असमर्थ था जिसको बदलकर सहकारी ने समर्थ बनाया है? यदि ऐसा है तो ईश्वर की नित्यता और निरोगिता नहीं टिक सकती। अतः हे नैयायिको! ईश्वर को जगत् का कारण या जगत का कर्ता मानकर उसे दूषित और कमजोर बनाने की अपेक्षा जगत् का अकर्ता, निर्दोष और समर्थ ही रहने दो।

सुज्ञेषु किं बहुना?

सृष्टिवाद और जैनदर्शन

सांख्य दर्शन के समान योगदर्शन के मूल सूत्रों में यद्यपि ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नहीं माना है किन्तु भाष्यकार और अन्य ग्रन्थकारों ने ईश्वर को कर्तृत्व और सुखदुःख प्रेरकत्व की उपाधि लगा दी है। शास्त्रवार्तासमुच्चयकार श्री हरिभद्रसूरि ने उसका निराकरण इस प्रकार किया है।

पातञ्जलों के ईश्वर का स्वरूप

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पते ।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥
(शा० वा० स० ३, २)

अर्थ—जिसका ज्ञान अप्रतिहत व्यापक और नित्य होता है, जिसके वैराग्य-माध्यस्थभाव वीतराग भाव, ऐश्वर्य स्वातन्त्र्य और प्रयत्न-संस्कार रूप धर्म, ये चारों सहजसिद्ध अनादिसिद्ध और नित्य होते हैं तथा जो अचिन्त्य चिच्छक्ति युक्त होता है उसे ईश्वर कहते हैं। सांख्यदर्शन में स्वीकृत पच्चीस तत्त्वों में से पुरुषतत्त्व में रहा हुआ पुरुष विशेष पातञ्जलों का ईश्वर है। सांख्य निरीश्वरवादी है किन्तु पातञ्जलों ने पुरुष विशेष को ईश्वर स्वीकार किया है। यदुक्तम्—

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वर ।
(यो॰ सू॰ ।।२४)

हरिभद्रसूरि ईश्वरवादी पातञ्जलों का पूर्वपक्ष इस प्रकार उपन्यस्त करते हैं—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽय मात्मन सुखदु खयो ।
ईश्वर प्रेरितो गच्छेत्, स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥
(शा॰ वा॰ स॰ ३।१)

अर्थ—ससारी जीव हिताहित प्रवृत्ति निवृत्ति के उपायों का अजान होने स आत्मा के (अपने) सुख दु ख का कर्त्ता नहीं हो सकता। अत अज्ञ जीव ईश्वर की प्रेरणा से प्रेरित होकर स्वर्ग या नरक मे जाता है। जैसे कि पशु आदियों की प्रवृत्ति निवृत्ति पर प्रेरणा स होती हुई दिखाई देती है। कर्म या प्रकृति को प्रेरक मानना भी ठीक नहीं है क्योंकि ये अचेतन हैं। चेतन के अधिष्ठान के बिना अचेतन का व्यापार नहीं हो सकता। यदुक्तम्—

मयाऽध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्।
तपाम्यहमहवष निगृह्णाम्युत्सृजामि च ॥
गीता—

इस पर स पतञ्जलि के अनुयायियों का कहना है कि सर्व का अधिष्ठाता ईश्वर है।

नैयायिक ईश्वर की सिद्धि के लिए इस प्रकार हेतु देते हैं

कार्यायोजनधृत्यादे, पदात् प्रत्ययत श्रुते ।
वाक्यात्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविद्व्यय ॥

अर्थ—कार्य, आयोजन, धृत्यादि, पद, प्रत्यय, श्रुति वाक्य, संख्या विशेष, इन हेतुओं से अव्यय ईश्वर की साधना करनी चाहिए।

(१) "कार्यं, सकर्तृक, कार्यत्वात्" यह प्रथम अनुमान है।

(२) आयोजन— 'सर्गाद्यकालीनद्व्यणुककर्म, प्रयत्न जन्यम्, कर्मत्वात्, अस्मदादि शरीरकर्मवत्' यह दूसरा अनुमान है।

(३) धृति—ब्रह्माण्डादिपतनाभाव, पतन प्रतिबन्धक प्रयुक्त, धृतित्वात् उत्पतत्पतत्रिपतनाभाववत्, तत्पतत्रिसंयुक्त तृणादि धृतिवत्। आदि शब्देन नाश —ब्रह्माण्डनाश-प्रयत्नजन्य, नाशत्वात्, पाट्यमान पटनाशवत्। यह तीसरा (चौथा) अनुमान है।

(४) पद=व्यवहार, घटादिव्यवहार, स्वतन्त्रपुरुष प्रयोज्य, व्यवहारत्वात्, आधुनिक कल्पितलिप्यादि व्यवहारवत्। यह चौथा अनुमान है।

(५) प्रत्यय—प्रमा, वेदजन्यप्रमा, वक्तृयथार्थवाक्यार्थज्ञान जन्या शाब्दप्रमात्वात्, आधुनिक वाक्यजशाब्द प्रमावत। यह पाचवाँ अनुमान है।

(६) श्रुति=वेदोऽससारिपुरुषप्रणीत, वेदत्वात् यह छठा अनुमान है।

(७) वाक्य=वेद पौरुषेय, वाक्यत्वात्, भारतवत्। यह सातवाँ अनुमान है।

(८) सख्याविशेष—द्वयणुकपरिमाणजनिका सख्या, अपक्षा बुद्धिजन्या, एकत्वान्य सख्यात्वात्। यह आठवाँ अनुमान है। प्रस्तुत आठ अनुमान तथा अन्य आगम श्रुति वाक्यों से नैयायिक ईश्वर की सिद्ध करते हैं।

जैनियों का उत्तर पक्ष

अन्ये त्वभिदधत्यत्र वीतरागस्य भावत ।
इत्य प्रयोजनाभावात् कर्तृत्व युज्यते कथम् ॥

(शा० वा० स्त० ३,४)

अर्थ—जैन ईश्वर के सम्बन्ध म परीक्षा पूर्वक प्रथम पत ञ्जलि क अनुयायियों को उत्तर देते हैं कि तुम्हारे मत में ईश्वर म वैराग्य वीतरागभाव सहज सिद्ध है। जब कि ईश्वर वीतराग परम वैराग्यवान् है तो उसमें कोइ इच्छा नहीं हो सकती। बिना इच्छा क प्रेरणा करन का काइ प्रयोजन नहीं हो सकता है। पर प्रेरकत्व और फलेच्छा का परस्पर व्याप्य व्यापकभाव सम्बन्ध है। व्यापक फलेच्छा क अभाव से व्याप्य पर प्रेरकत्व का भी अभाव सिद्ध हो जाता है।

इसी बात को अधिक स्पष्टता मे बताते हैं

नरकादिफले कांश्चित् कांश्चित्स्वर्गादि साधन।
कर्मणि प्रेरयत्याशु, स जन्तून् कन हेतुना ? ॥

(शा० वा० स्त० ३, ५)

अर्थ—अहा पतञ्जलिओ ! तुम्हारा ईश्वर कई जीवों को नरक आदि दुर्गति में पहुँचाने वाले दुष्कृत्य करने की प्रेरणा

करता है और कइयों को स्वर्गादि सद्गति प्राप्त कराने वाले सुकृत्य की प्रेरणा करता है। इसका क्या कारण है? ऐसा करने में ईश्वर का क्या प्रयोजन है?

> स्वयमेव प्रवर्तन्ते, सत्त्वाश्चेच्चित्र कर्मणि।
> निरर्थकमिहेशस्य, कर्तृत्व गीयते कथम्॥
>
> (शा० वा० स्त० ३,६)

अर्थ—ब्रह्महत्या आदि अशुभ कर्म और यम नियमादि शुभ कर्म में जीव स्वय अपनी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं। अर्थात् यदि बुद्धि में सत्त्व गुण की प्रधानता हो तो शुभ कार्य में और तमोगुण की प्रधानता हो तो अशुभ कार्य में प्रवृत्ति होती है। यदि प्रयोजन ज्ञान के लिए ईश्वर की अपेक्षा है ऐसा मानोगे तो ईश्वर में कर्तृत्व मानना निरर्थक है। क्योंकि प्रयोजन ज्ञान तो प्रवृत्ति के लिए है। जब कि प्रवृत्ति अपने आप हो जाती है वैसी अवस्था मे ईश्वर सिद्धि के लिये प्रयास करना, घर के कोने मे प्राप्त होने वाले धन को छोड़कर विदेश में जाकर धन प्राप्त करने के बराबर है।

> फलददातिचेत् सर्व, तत्तेनेह प्रचोदितम्।
> अफले पूर्वदोष स्यात्, सफले भक्तिमात्रता॥
>
> (शा० वा० स्त० ३,७)

अर्थ—अचेतन पदार्थ चेतनाधिष्ठित होकर के कार्य कर सकते हैं। कर्म स्वय अचेतन हैं व ईश्वराधिष्ठित होकर ही सुखदुखादि दे सकते हैं। अत अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर की सिद्धि हो जाती है। इसके उत्तर में ग्रन्थकार कहते हैं कि

यदि कर्म अपनी इच्छा से सुखदुःखादि देने में असमर्थ है तो उनमें ऐसा सामर्थ्य किसने उत्पन्न किया? ईश्वर ने उत्पन्न किया है ऐसा कहोगे तो निर्दोष ईश्वर को स्वर्गनरकादि देने का क्या प्रयोजन है? कर्म में ही वैसा सामर्थ्य है, यदि ऐसा कहो तो बीच में ईश्वर को अधिष्ठाता बनाने की क्या जरूरत है? कर्म में स्वर्ग नरक देने का सामर्थ्य स्वतः सिद्ध होते हुए भी ईश्वर के जिम्मे यह कार्य डालने में ईश्वर के प्रति आप की भक्ति ही कारण है। अधिष्ठाता के बिना भी वन बीज से अंकुर पैदा हो जाता है इसलिये चेतनाधिष्ठित ही कार्य सिद्ध कर सकता है यह नियम व्यभिचारी है।

आदिसर्गेऽपि नो हेतुः कृतकृत्यस्य विद्यते।
प्रतिज्ञात विरोधित्वात् स्वभावोऽप्यप्रमाणकः ॥
(शा० वा० स्त० ३, ८)

अर्थ—ईश्वर कृतकृत्य है यह प्रतिज्ञा पहले से ही की हुई है। कृतकृत्य को आदि सृष्टि की रचना करने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। बिना प्रयोजन के भी ईश्वर अदृष्टादिक की अपेक्षा के बिना स्वतन्त्ररूप से आदि सृष्टि की रचना करता है और ऐसा उसका स्वभाव भी है, यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि वैसा स्वभाव मानने में कोई प्रमाण नहीं है। धर्मी की सिद्धि बिना वैसा स्वभाव मान लेना उचित नहीं है।

कर्मादेस्तत्स्वभावत्वे न किञ्चिद्बाध्यते विभोः।
विभोस्तु तत्स्वभावत्वे कृतकृत्यत्व बाधनम् ॥
(शा० वा० स्त० ३, ९)

अर्थ—कर्म आदि का आदिसृष्टि रचने का स्वभाव मानने में ईश्वर के स्वरूप में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती है। किन्तु ईश्वर का वैसा स्वभाव मानने पर ईश्वर के कृतकृत्य और वीतरागतारूप गुणों का धक्का पहुँचता है, इतना ही नहीं किन्तु वह प्रकृति जैसा बन जायगा। यदि ऐसा कहोगे कि ईश्वर परिणामी न बनने से प्रकृति रूप नहीं बनेगा, प्रयोजन के अभाव में अनित्य इच्छा का अभाव होने से और नित्य इच्छा का सद्भाव होने से वैराग्य को हानि नहीं पहुँचेगी, ऐश्वर्य भी अनित्य नहीं किन्तु तत् तत् फलावच्छिन्न इच्छारूप ऐश्वर्य है, सर्गकी आदि में रजो गुण के उद्रेक से उस उस कार्य के कर्त्ता ईश्वर को मानने से कूटस्थपने की हानि भी नहीं है, तो न्याय दर्शन के सिद्धान्त में तुम्हारा प्रवेश हो जायगा। इस प्रकार स्वसिद्धान्तहानिरूप निग्रह स्थान तुम पर लागू होता है।

इति पातञ्जल कर्तृत्ववाद निराकरणम्

नैयायिकों के प्रति जैनियों का उत्तर पक्ष

नैयायिकों के द्वारा ईश्वर सिद्धि के लिए बताये हुए आठ अनुमानों में से प्रथम अनुमान 'कार्यं सकर्तृकं कार्यत्वात्" है। शास्त्रवार्ता समुच्चय की टीका करने वाले यशो विजय जी उपाध्याय कहते हैं कि इस अनुमान में कोई अनुकूल तर्क नहीं है। अहो नैयायिको ? कार्यसामान्य ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न साध्य है। मनुष्य आदि का ज्ञान अपूर्ण है वह सर्व कार्यों को नहीं सिद्ध कर सकता अतः ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वरीय इच्छा और ईश्वरीय प्रयत्न से पृथ्वी

यदि कर्म अपनी इच्छा से सुख-दुःख देने में असमर्थ है तो उसमें ऐसा सामर्थ्य किसने उत्पन्न किया? ईश्वर ने किया है ऐसा मानो तो फिर ईश्वर को ... का प्रयोजन है? कर्म में ही वैसा सामर्थ्य है ... तो बीच में ईश्वर को अधिष्ठाता बनाने का क्या प्रयोजन है? कर्म में स्वर्ग नरक देने का सामर्थ्य स्वतः सिद्ध हुआ। ईश्वर के बिना ये कार्य होने में ईश्वर की भी आवश्यकता है। अधिष्ठाता के बिना भी वन बीज से अंकुर पैदा हो जाता है इसलिये चेतनाधिष्ठित ही कार्य हो सकता है यह नियम व्यभिचारी है।

> कार्यदर्शितसिद्धो यो हन्त कृतकृत्यस्य विन्दे।
> स्वतन्त्रस्य किञ्चित्स्यात् स्वतन्त्रोऽस्वतन्त्रः ॥
> (शा० वा० स० ३,६)

अर्थ—ईश्वर कृतकृत्य है यह प्रतिज्ञा पहले से ही हुई है। कृत-कृत्य को आदि सृष्टि की रचना करने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। बिना प्रयोजन के भी ईश्वर अदृष्टादि की अपेक्षा के बिना स्वतन्त्ररूप से आदि सृष्टि की रचना करता है और ऐसा उसका स्वभाव भी है, यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा स्वभाव मानने में कोई प्रमाण नहीं है। धर्मी की सिद्धि बिना वैसा स्वभाव मान लेना उचित नहीं है।

> कर्मादिस्तस्य स्वभावत्वे, न किञ्चिद् स्व विभोः ।
> विभोस्तु तत्स्वभावत्वे कृतकृत्यत्व बाधनम् ॥
> (शा० वा० स० ३,१)

दिक कर्म का कारण माना जाय तो ईश्वर प्रयत्न नित्य होने से कर्म भी नित्य होता रहना चाहिए। बीच में खलल न पडनी चाहिये। यदि कहो कि अदृष्ट को भी कारण मानते हैं अतः अदृष्ट के विलम्ब से कर्म में भी विलम्ब हो जायगा तो फिर ईश्वर प्रयत्न को कारण मानने की क्या आवश्यकता है? अदृष्ट को ही कारण मान लो। दूसरी बात यह है कि क्रिया सामान्य में यत्न सामान्य का कार्य कारण भाव मानने में कोई प्रमाण नहीं है। गमनादि प्रवृत्ति के प्रति जीवनयोनियत्न के सिवाय विलक्षण यत्न रूप से कार्य कारण भाव मानना पडेगा। अत ईश्वर प्रयत्न कार्यकारण भाव की कोटि में नहीं आ सकता। दूसरे अनुमान से भी ईश्वर सिद्धि नहीं हो सकती।

नैयायिकों के तीसरे अनुमान का निराकरण

नैयायिक कहते हैं कि आकाश में ब्रह्माण्ड अधर रहता है वह ईश्वर के प्रयत्न से ही रहता है। ईश्वर प्रयत्न न होता तो यह ब्रह्माण्ड कभी का नीचे गिर पडा होता। इसके उत्तर में उपाध्यायजी कहते हैं कि पतन का कारण केवल गुरुत्व ही नहीं है किन्तु प्रतिबन्ध का भाव भी है अन्यथा आम्रफल भारी होते ही नीचे गिर पडेगा। किन्तु उसका बीट प्रतिबन्धक है अतः नीचे नहीं गिरता है। अत 'प्रतिबन्धकाभावेतर सामग्री कालीन, यह विशेषण लगाना पडेगा। इसके उपरान्त वेगयुक्त बाण का पतन नहीं होता है इसलिए वेगायुक्त' यह विशेषण भी लगाना पडेगा। इसके उपरात भी मन्त्र के बल से किसी ने आकाश में एक गोला अधर रख दिया इस में व्यभिचार आयगा। इसका निराकरण

करने के लिए 'अदृष्टाप्रयुक्त' यह विशेषण लगाना पड़ा। ऐसा होने पर 'अदृष्टाप्रयुक्त ब्रह्माण्डधृति' अप्रसिद्ध हुआ क्योंकि ब्रह्माण्ड धृति' अदृष्ट प्रयुक्त है। अत अनुमान में स्वरूपा सिद्धि दोष प्राप्त हुआ। कहा भी है कि—

> निरालम्बा निराधारा विश्वाधारो वसुन्धरा।
> यावत्तावतिष्ठते तत्र धर्मादन्यन्न कारणम्॥

ईश्वर प्रयत्न को यदि धृति का कारण माना जाय तो वह व्यापक होने से लड़ाई के समय में फेंका हुआ एक भी बाण नीचे न गिरना चाहिये।

ब्रह्माण्ड नाशक रूप में भी ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती। ब्रह्माण्ड का प्रलय होता ही नहीं है। जीवों के कर्म विपाक को एक साथ रोकने की किसी में भी शक्ति नहीं है। सुषुप्ति अवस्था में कई कर्मों का निरोध होता है वह दर्शनावरणीय कर्म की सामर्थ्य से उपपन्न हो जाता है। अनन्त जीवों के भोगे जाते हुए कर्म एक ही साथ प्रलय में रुक जाते हों तो उन कर्मों का नाश भी ईश्वर क्यों नहीं कर सकता? यदि नाश कर डाले तो जीवों को अनायास ही मुक्ति मिल जाय और ऐसा हो तो ब्रह्मचर्यादि क्लेश और योगाभ्यास आदि साधन की भी क्या जरूरत रहेगी? सच्ची बात तो यह है कि जिस प्रकार अनन्त जीवों की मुक्ति ईश्वर द्वारा एक साथ नहीं हो सकती उसी प्रकार जीवों के कर्मों का भोग भी एक साथ ईश्वर से नहीं रोका जा सकता अत प्रलयकाल संभवित हो सकता।

नैयायिकों के चौथे अनुमान का निराकरण

नैयायिक कहते हैं कि सर्ग की आदि में व्यवहार प्रयोजक एक ईश्वर की आवश्यकता रहती है। इस समय ईश्वर के सिवाय अन्य कोइ नहीं है। अत व्यवहार प्रयोजक के रूप में ईश्वर की सिद्धि हो जाती है। इसके उत्तर में उपाध्याय जी कहते हैं कि सर्ग और प्रलय ना होते ही नहीं, जगत् अनादिकाल से चला आ रहा है। इसमें पूर्व पूर्व वृद्ध पुरुषोंके व्यवहार के अनुसार उत्तरोत्तर बालक आदिकों का व्यवहार चालू रह सकता है। ईश्वर कल्पना की आवश्यकता नहीं है। दूसरी बात, ईश्वर में अदृष्ट धर्माधर्म न होने से शरीर भी नहीं है। शरीर के बिना मुख भी नहीं है मुख के अभाव में शब्दादि व्यवहार का प्रयोज्य प्रयोजक भाव भी कैसे बन सकता है।

नैयायिकों के पाचवें, छठे और सातवें अनुमान का निराकरण।

'वेदजन्यप्रमा, वक्तयथार्थवाक्यार्थज्ञानजन्या, शाब्द-प्रमात्वात्, आधुनिक वाक्यजशाब्द प्रमावत्' यह पाँचवाँ अनुमान है। 'वेदोऽस्मदादिपुरुषप्रणीत वेदत्वात्' यह छठा अनुमान है। 'वेद पौरुषेय वाक्यत्वात् भारतवत्' यह सातवाँ अनुमान है। उक्त तीनों अनुमान वेद प्रणेता किसी आप्त पुरुष का भलेही सिद्धि करें किन्तु सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की सिद्धि नहीं कर सकते। क्योंकि यथार्थवक्तृत्व, वेदशास्त्र का प्रणयन, या वेद वाक्यों का उच्चारण, मुख के बिना नहीं हो सकते और शरीर के बिना मुख नहीं हो सकता अत उक्त अनुमान ईश्वर साधक नहीं बन सकते।

नैयायिकों के आठवें अनुमान का निराकरण

नैयायिक कहते हैं कि अणुपरिमाण तो किसी का कारण नहीं हो सकता। द्वयणुक परिमाण का कारण अणुपरिमाण हो जाता मगर ऐसा मानने पर द्वयणुक परिमाण अणुपरिमाण की अपेक्षा अणुतर हो जाता है और यह इष्ट नहीं है। अत द्वयणुकपरिमाण जनक द्वित्व सख्या मानी जाती है। सख्या अपेक्षा बुद्धि जन्य है। सर्ग के आदि काल म ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की अपेक्षा बुद्धि नहीं है अत ईश्वर की अपेक्षा बुद्धि जन्य द्वित्व सख्या द्वयणुक परिमाण जनक होगा और इस प्रकार ईश्वर की सिद्धि हो जायगी। इसके उत्तर म उपाध्यायजी कहते हैं कि सर्ग काल ही नहीं है, जगत् अनादि है। लौकिक अपेक्षा बुद्धि से ही द्वित्व सख्या उत्पन्न हो जायगी और इसीसे द्वयणुकपरिमाण की भी सिद्धि हो जायगी। अत सृष्टि कर्तारूप स ईश्वर का मानने की जरूरत नहीं है।

जैनियों की दृष्टि से ईश्वर का कर्तृत्व

ईश्वर परमात्मैव, तदुक्तव्रतसेवनात्।
यतो मुक्तिस्ततोऽस्तस्या, कर्ता स्याद्गुण भावत ॥
(शा० वा० स्त० ३ ११)

अर्थ—रागद्वेष स सर्वथा रहित, केवल ज्ञान केवल दर्शन सपत्तियुक्त वीतराग शुद्धात्मा जैन दृष्टि स परमात्मा गिना जाता है। वह परमआप्त पुरुष है क्योंकि वह यथार्थ जानता है और यथार्थ ही प्ररूपणा करता है। उसके द्वारा प्ररूपित शास्त्र म कहे हुए सयमादि अनुष्ठानों का पालन करने से जीवों का

मुक्ति प्राप्त होती है। इस हिसाब से मुख्यता से नहीं किन्तु उपचार से गुणभाव की अपेक्षा से यह जीव का मुक्ति का कर्त्तारूप ईश्वर परमात्मा कहा जा सकता है।

सापेक्षभवकर्तृत्व

तदनासेवनादेव यत्संसारोपि तत्वत ।
तन तस्यापि कर्तृत्व, कल्प्यमान न दुष्यति ॥
(शा० वा० स० ...)

अर्थ—वीतराग प्रणीत धर्म और अनुष्ठान का ... करने स ससार मे जीवों को परिभ्रमण करना पड़ता है ... अपेक्षा से यदि ईश्वर म उपचार स भवकर्तृत्व ... जाय तो इसमें हमें कोई बाधा नहीं है। अर्थात् ईश्वर ... सृष्टिकर्तृत्व नहीं है किन्तु ऊपर कही गई अपेक्षा ... कर्तृत्व मानोंग तो माना जा सकता है। किन्तु ... अपेक्षा है, वैसा व्यवहार करना उचित नहीं है। ... वीतराग परमात्मा ज्ञानादि स्वभाव के कर्त्ता हैं, ... भाव के कर्त्ता नहीं हैं तो संसार के कर्त्ता ... ईश्वर को मुक्ति या कल्याण का कर्त्ता कहो तो ... कि बहुना?

बौद्ध मतानुसार प्रकृतिवाद का ...

बौद्धाचार्य शान्तिरक्षितजी सांख्यमत ... प्रकृतिवाद का उत्तर पक्ष करते हुए सांख्य... को कहते हैं कि प्रथम तो तुम ... को ... स्पर अभिन्न मानकर कार्य ... ...

नहीं है। दो वस्तुएं भिन्न भिन्न हों तो उनमें एक कार्य और दूसरी कारण है ऐसा व्यवहार हो सकता है किन्तु एक ही वस्तु में कार्यकारण विभाग कैसे घटित हो सकता है ? यदि तुम यह कहो कि मूल प्रकृति कारण, पाँच महाभूत और ग्यारह इन्द्रियगण कार्य, बुद्धि अहङ्कार और पाँच तन्मात्राएं कार्य कारण उभय रूप हैं और पुरुष न तो कार्य है, न कारण है, इस प्रकार दोनों की अभेदावस्था में कार्यकारणभाव स्वीकार करते हो, वह ठीक नहीं है।

कदाचित् कार्यकारण भाव सापेक्ष होने से प्रकृति की अपेक्षा से महदादि कार्य और महदादि की अपेक्षा से प्रकृति कारण है ऐसा कहो तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि जहाँ दोनों एक रूप हों वहाँ कौन किसकी अपेक्षा रखे, जैसे पुरुष एक रूप है इसलिए उसमें प्रकृति या विकृति भाव नहीं है वैसे ही प्रकृति और महदादि एकरूप होने में प्रकृतिविकृति व्यवहार नहीं हो सकता। अन्यथा पुरुष में भी प्रकृति विकृति भाव की आपत्ति प्राप्त होगी जो कि तुम्हें अनिष्ट है इसीलिए सांख्याचार्य कपिल की अज्ञता प्रकट की गई है, देखिये—

> यदेव दधि तत्क्षीरं, यत्क्षीरं तद्दधीति च ॥
> वदता रुद्रिलेनैव, ख्यापिता विन्ध्यवासिता ॥

अर्थ—'जो दही है वही दूध है और जो दूध है वही दही है' ऐसा कहने वाले रुद्रिल ने अपना जंगलीपन प्रकट किया है।

विश्व की एक रूपता

पूर्वपक्षी ने व्यक्त को कारण जन्य और अव्यक्त को कारण अजन्य वर्णित किया है वह भी ठीक नहीं किया है क्योंकि जो

वस्तु जिससे अभिन्न होती है वह उससे विपरीत स्वभाव वाली नहीं हो सकती। विपरीत स्वभाव वाली वस्तु का स्वरूप ही भिन्न होता है। ऐसा न मानें तो भेद व्यवहार नहीं बन सकता। चैतन्य और सत्त्वरज आदि गुणों का जो परस्पर भेद माना है वह निष्कारण सिद्ध होने पर सम्पूर्ण विश्व एक रूप (ब्रह्ममय) हो जायगा अतः सब की एक साथ उत्पत्ति और एक ही साथ नाश हो जायगा और ऐसा होने पर व्यक्त से अभिन्न अव्यक्त को व्यक्त के समान कारण जन्य मानना पड़ेगा अथवा अव्यक्त के समान व्यक्त को कारण अजन्य मानना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि अन्वय व्यतिरेक से कार्यकारण भाव सिद्ध हो सकता है। 'कारणसत्त्वे कार्यसत्त्वमन्वयः कारणाभावे कार्याभावो व्यतिरेकः।' अर्थात् कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय है और कारण के अभाव में कार्य का अभाव होना व्यतिरेक है। जैसे अग्नि की मौजूदगी में धुँआ का होना और अग्नि के अभाव में धुआँ का अभाव। यह अन्वय और व्यतिरेक देश काल के भेद से दो प्रकार का है। दोनों प्रकार प्रकृति और महदादि के साथ संगत नहीं होते हैं क्योंकि प्रकृति सर्वदेश में व्यापक है और महदादि अव्यापक होने से किसी देश में है और किसी में नहीं है अतः देशान्वय न बना। प्रकृति का किसी देश में अभाव होता और वहाँ महदादि का भी अभाव रहता तो देश व्यतिरेक बन जाता, मगर ऐसा नहीं है। इसी प्रकार कालान्वयव्यतिरेक भी नहीं बन सकता क्योंकि प्रकृति नित्य होने से सर्व काल में रहती है किन्तु महदादि सर्व

काल में नहीं रहते अतः कालान्वय नहीं बना। इसी प्रकार किसी काल में प्रकृति का अभाव होता और उसी वक्त महदादि का भी अभाव रहता तो दोनों का कालव्यतिरेक बन जाता किंतु प्रकृति का किसी काल में भी अभाव नहीं होता। अतः दोनों प्रकार के अन्वय व्यतिरेक के अभाव में दोनों का कार्यकारण भाव सिद्ध नहीं होता।

तीसरी बात यह है कि पूर्वपक्षी ने प्रकृति को सर्वथा नित्य माना है और सर्वथा नित्य पदार्थ किसी का कारण नहीं बन सकता क्योंकि नित्य पदार्थ में क्रम या अक्रम से अर्थ क्रिया नहीं बनती अतः नित्य प्रकृति से बुद्धि आदि का सर्जन नहीं हो सकता।

पूर्वपक्षी—एक ही सर्प कुण्डल, दण्ड आदि अनेक अवस्थाओं में परिणमन करता हुआ जिस प्रकार अभिन्न स्वरूपी रहता है उसी प्रकार एक स्वरूपवाली प्रकृति महदादि अनेक अवस्थाओं में परिणमन करती हुई अभिन्न स्वरूप से कारण बन सकती है।

उत्तरपक्षी—तुम्हारा यह कथन ठीक नहीं है। प्रकृति में परिणमन सिद्ध नहीं हो सकता। हम यह पूछते हैं कि प्रकृति में जो बुद्धि आदि का परिणमन होता है वह पूर्व स्वरूप को छोड़कर होता है या छोड़े बिना ही? यदि पूर्व स्वरूप को छोड़े बिना परिणमन स्वीकार करोगे तो एक साथ दो अवस्थाओं का सांकर्य होगा जो कि प्रत्यक्ष विरुद्ध है। वृद्धावस्था में युवावस्था कभी भी कहीं नहीं देखी जाती। यदि ऐसा कहो कि प्रकृति

पूर्वावस्था छोडकर उत्तरावस्था धारण करती है तो स्वभाव हानि प्रसग प्राप्त हुआ-स्वभावहानि होने पर प्रकृति की नित्यता कहाँ कायम रही ? दूसरी बात यह पूछते हैं कि प्रकृति की अवस्था प्रकृति से भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न कहोगे तो प्रकृति में कुछ भी अन्तर नहीं हुआ। चैत्र की उत्पत्ति या विनाश से मैत्र में उत्पत्ति विनाश नहीं हो सकते अन्यथा घटादिक के परिणाम से पुरुष भी परिणामी बन जायगा। यदि कहो कि घटादिक का पुरुष के साथ सम्बन्ध नहीं है, प्रकृति का अवस्थाओं के साथ सम्बन्ध है अत अवस्था के उत्पत्ति विनाश से प्रकृति का परिणाम हो सकता है। यह कथन भी उचित नहीं है। क्योंकि प्रकृति सत् और अवस्था असत् है। सत् के साथ असत् का सम्बन्ध नहीं हो सकता। अवस्था को भी सत् मानो तो वह परतन्त्र नहीं हो सकती किन्तु प्रकृति के समान अवस्था भी स्वतन्त्र होगी और कारण जन्य नहीं हो सकती। कारण जन्यता और स्वतन्त्रता का परस्पर विरोध है। कारण जन्यता का परतन्त्रता के साथ सहचार है। अत महदादिका प्रकृति के साथ सत् या असत् दोनों में से एकरूप से भी सम्बन्ध घटित नहीं हो सकता।

सत्कार्यवाद की असगति

पूर्व पक्षीने सत्कार्य वाद की सिद्धि के लिए जो पाच हेतु दर्शाये हैं वे असत् कार्यवाद के भी साधक होते हैं। जैसे कि

न सदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥

अर्थ—(१) सत् पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती किन्तु मृत्तिकापिण्ड मे नवीन घट की उत्पत्ति होती है। (२) उपादान कारण ग्रहण किया जाता है। (३) सब कारणों से सब कार्य उत्पन्न नहीं होते किन्तु नियत कारणों से नियत कार्य उत्पन्न होते है। (४) शक्ति युक्त कारण से शक्य कार्य हो किये जाते हैं। (५) जो जिसका कारण माना हुआ है उससे ही उस कार्य की उत्पत्ति होती है। उक्त पाच हेतुओं से सत्कार्य वाद युक्ति सगत नहीं ज्ञात होता। इस प्रकार प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति सिद्ध न होने से प्रलयकाल में सृष्टि का लय भी प्रकृति में सिद्ध नहीं हो सकता।

प्रकृतिवाद के सम्बन्ध में मीमासक कुमारिल भट्ट का उत्तर पक्ष

> पुमानकर्ता येषा तु तेषामपि गुणै क्रिया।
> कथमादौ भवेत्तत्र कर्म तावन्न विद्यते॥
> (श्लो वा० ४। ८७)

अर्थ—जिन सांख्यों के मत में पुरुष कर्ता नहीं किन्तु सत्व, रज और तम की साम्यावस्था रूप प्रकृति ही सृष्टि कर्ती है, उनसे पूछना चाहिये कि प्रलय काल में तीनों गुण साम्यावस्था में प्रकृति में लीन हैं तो सृष्टि के आदि काल में प्रकृति में कौन विकार पैदा करता है? साम्यावस्था में रहे हुए गुणों को विषमावस्था में लाने वाला [illegible] धर्माधर्म रूप कर्म प्रेरक हैं ऐसा कहो तो व [illegible] प्रकृति में उस वक्त नहीं हैं।

मिथ्याज्ञान न तत्रास्ति रागद्वेषादयोऽपिवा।
मनोवृत्तिर्हिसर्वैषा न चोत्पन्न तदा मन ॥
(श्लो० वा० ११८८)

अर्थ—कुमारिल भट्ट जी कहते हैं कि उस वक्त (सृष्टि के आरम्भ काल में) मिथ्याज्ञान न था और रागद्वेषादिक भी न थे कारण कि ये भी प्रकृति के विकार रूप हैं और इसलिए उन्हें तुम प्रकृति जन्य मानते हो। अन्त करण का व्यापार रूप मनोवृत्ति भी उस वक्त न थी क्योंकि महत्तत्त्व और अहकार के बाद अहकार से मन उत्पन्न होता है ऐसा आपने माना हुआ है। मनसे पहले मनोवृत्ति कैसे हो सकती है ? कहिए तब प्रवृत्ति में विकृति करनेवाला कौन है ?

पूर्व पक्षी कहता है कि मन व्यक्ति रूप से नहीं है मगर शक्ति रूप से तो रहा हुआ है वही विकार उत्पादक बनेगा। इसके उत्तर में भट्ट जी कहते हैं कि—

कर्मणा शक्त्यवस्थाना, यैरुक्ता बन्धहेतुता ॥
सा न युक्ता न कार्यं हि, शक्तिस्थात्कारणाद्भवेत् ॥
(श्लो० वा० ५।८६)

अर्थ—शक्तिरूप से रहे हुए धर्माधर्मादिक कर्म या मनको विकार उत्पादक मानना उचित नहीं है। मृत्तिका में शक्तिरूप से रहे हुए घट में क्या पानी भरा जा सकता है ? तन्तु में शक्तिरूप से रहे हुए वस्त्र से क्या शीत का निवारण हो सकता है। कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार शक्ति रूप से रहे हुए कारण मे

कभी भी कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। दृष्टान्त के द्वारा भट्ट जी इस बात का समर्थन करते हैं।

> दधिशक्तिर्नहि क्षीरे दाधिकारम्भमर्हति।
> दध्यारम्भस्य सा हेतुस्ततोऽन्या दाधिकस्य तु ॥
> (श्लो० वा० २।६०)

अर्थ—दूध में दही उत्पन्न करने की शक्ति है वह दूध से दही भले ही बनाये किन्तु दही का कार्य श्रीखण्डादि नहीं बना सकता। इसी प्रकार प्रकृति में रही हुई बुद्धि आदि उत्पन्न करने की शक्ति बुद्धि आदि को भले ही बनाये किन्तु बुद्धि तथा मन के कार्य को नहीं बना सकती।

शक्तिरूप से रहे हुए कारण में कार्य मानने में दोषापत्ति

> कारणाव्यक्तयवस्थाच्च, यदि कार्यं प्रजायते।
> बन्ध पुन प्रसज्येत, फलेदत्तेपि कर्मणा ॥
> (श्लो० वा० ५।६१)

अर्थ—यदि शक्ति रूप में रहे हुए अप्रकट कारण से कार्य माना जावे तो पाप पुण्य रूप कर्म का फल सुख दु खादि भोगने के बाद भी पुन पुण्य पाप के बन्ध का प्रसंग प्राप्त होगा क्योंकि शक्ति रूप से व सदा अवस्थित रहते हैं।

मोक्ष की अप्राप्तिरूप दूसरा दोष

तच्छक्त्यप्रतियोगित्वा न ज्ञानं मोक्षकारणम्।

कर्मशक्त्या नहि ज्ञान विरोधमुपगच्छति ॥
(श्लो० ६।६४)

अर्थ—ज्ञान कर्मशक्ति का प्रतियोगी विनाशक न होने से मोक्ष का भी कारण नहीं बन सकता। क्योंकि कर्म शक्ति के साथ ज्ञान का विरोध नहीं है। कर्म शक्ति का मौजूदगी में बन्ध चालू रहने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए शक्ति रूपसे रहे हुए मन या धर्माधर्म रूप कर्म से कोई भी कार्य होता हुआ माना नहीं जा सकता। तीनों गुणों की साम्यावस्था वाली प्रकृति में विकार उत्पन्न करने वाला कोई भी कारण न होने से महत्तत्व अहंकार आदि का सर्जन होना अशक्य है। अतः ईश्वर के सम न केवल प्रकृति भी सृष्टिकर्त्री सिद्ध नहीं हो सकती।

प्रकृतिवाद के विषय में जैनों का उत्तरपक्ष

शास्त्रवार्तासमुच्चयकार हरिभद्रसूरिजी सांख्याभिमत प्रकृति की नित्यता केवल श्रद्धागम्य है युक्ति संगत नहीं है, यह बात बताते हैं—

युक्त्या तु बाध्यते यस्मात् प्रधान नित्यमिष्यते ।
तथात्वाप्रच्युतौ चास्य, महदादि कथ भवेत् ॥
(शा० वा० स्त० ३। २२)

अर्थ—सांख्य प्रकृति को एकान्त नित्य मानते हैं। हर एक द्रव्य के उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये तीन अंश हैं अर्थात् स्वभाव हैं। इन में से उत्पाद व्यय इन दो अंशों का न मानकर केवल ध्रौव्य स्वभाव सांख्य मानते हैं। यह युक्ति से बाधित है।

विकृति प्रक्रिया हवा में उड जाती है। मुक्ति में भी विकृति कायम रह जायगी। कदाचित महदादिक को प्रकृति के परिणाम की अपेक्षा से अभिन्न और अनित्यत्वादि धर्म की अपेक्षा से भिन्न कहोगे तो भेदाभेद रूप अनेकान्त मत में प्रवेश हो जायगा एकान्त नित्यवाद का भंग हो जायगा।

पूर्वपक्षी यदि एकान्तनित्यवाद छोडकर अनेकान्तवाद को स्वीकार कर के प्रकृति की अनेकान्त नित्यता स्वीकार करले तो जैनों के द्वारा दी हुई ऊपर बताई हुई दोषापत्ति दूर हो जाती है किन्तु फिर भी एक बात का विरोध रह जाता है, वह यह है कि पूर्वपक्षी केवल प्रकृति को ही स्वतन्त्र कर्त्तापन का भार सौंपकर कार्य की पूर्णाहूति कर देता है कारण सामग्री में से पुरुष का अधिकार बिल्कुल हटा देता है। उत्तर पक्षी सूरिजी दर्शाते हैं कि कारण सामग्री में पुरुष की पदे पदे अपेक्षा रहती है। जैसे—

घटाद्यपि कुलालादि सापेक्ष दृश्यते भवत्।
अतो न तत्र्योयिक्यादि-परिणामैकहेतुकम्॥

(शा० वा० स० स्त० ३।२४)

अर्थ—घट आदि स्थूल कार्य केवल मिट्टी से नहीं बन जाता किन्तु कुलाल कुम्भकार आदि की अपेक्षा रखता है। कुम्भकार के प्रयत्न के बिना केवल पृथिवी या मृत्तिका रूप उपादान कारण से घट नहीं बन सकता। सांख्यों के मन्तव्य के अनुसार प्रकृति परिणाम की एक हेतुता न रही। कार्य के सब धर्म कारण में होने चाहिए घट के सब धर्म मिट्टी में है

किन्तु कुम्भार में नहीं है अत कुम्भकार घट का हेतु नहीं बन सकता ऐसा कहते हो तो बुद्धि में रहे हुए रागादिधर्म प्रकृति में मानने पड़ेंगे। रागादि प्रकृति में नहीं है अत प्रकृति हेतु नहीं बन सकती। कदाचित् यह कहो कि प्रकृति मे स्थूल रागादिक नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म रागादिक अवस्थित हैं तो इसमें कुछ प्रमाण नहीं है। इस प्रकार तो यह भी कहा जा सकता है कि घटादि गत धर्म कुम्भकार म सूक्ष्मरूप म रहे हुए हैं। चेतन म अचेतन धर्म का सक्रमण बाधित है ऐसा कहते हो तो कुम्भकार को आत्मा के स्थान पर कुम्भकार के शरीर को ही घटादिक का कारण मानेंगे तो चेतन अचेतन का सक्रमण नहीं होगा। इसके उत्तर म सूरि जी कहते हैं कि—

> तत्रापिदेहकर्त्ता चे- नैवासावात्मन पृथक्।
> पृथगेवेति चेद्भोग, आत्मनो युज्यते कथम्॥
>
> (शा० वा० स० स्त० ३।२१)

अर्थ—कुम्भकार के शरीर की चेष्टा से घटादिक उत्पन्न होते हैं अत शरीर को ही कारणरूप मानते हो तो देह आत्मा से भिन्न नहीं हो सकता। देह अव्यापक और सक्रिय है, आत्मा व्यापक और निष्क्रिय है अत आत्मा और देह की भिन्नता है, यदि ऐसा कहो तो आत्मा में भोग कैसे घटित हो सकता है? दूसरी बात देह और आत्मा को सर्वथा भिन्न मानने पर आत्मा मुक्तरूप हो जायगा अर्थात् ससार का उच्छेद हो जायगा। क्षीर नीर न्याय से देह और आत्मा की एकता मानोगे तो बुद्धि का भोग आत्मा में उपस्थित होता हुआ दिखाई देगा।

हो तब उत्पादक शक्ति की व्यवस्था और उत्पाद्य की जनना का निश्चय हो सकता है अन्यथा शक्ति का ज्ञान ही नहीं हो सकता। उसी प्रकार कार्यता सिद्ध न होने से कार्य कारण भाव भी घटित नहीं होता है।

दूसरी बात यह है कि उक्त पाँच हेतु अपने विषय में प्रवृत्त होकर दो काय करते हैं। एक तो प्रमेय पदार्थ में उत्पन्न सशय तथा विपर्यास की निवृत्ति करते हैं। दूसरा नये निश्चय को जन्म देते हैं। यह दोनों कार्य पूर्वपक्षी के मत में नहीं हो सकते। साख्यों से पूछिये कि उनके मत में सशय और विपर्यास चैतन्य स्वरूप हैं या बुद्धि, मन रूप है? दोनों कोटि में सशय विपर्यास की नित्यता सिद्ध होती है। क्योंकि चैतन्य, बुद्धि और मन तीनों सत्कार्यवाद में नित्य प्रमाणित होते हैं। नये निश्चय का भी उत्पत्ति नहीं हो सकता क्योंकि सत्कार्य पक्ष में वह सर्वदा विद्यमान रहता है। जिन साधनों से सशय, विपर्यास की निवृत्ति नहीं होती और निश्चय की उत्पत्ति नहीं होती उन साधनों के उपन्यास को सार्थक करने के लिए साख्यों को अविद्यमान निश्चय उत्पन्न करना मानने की आवश्यकता पड़ेगी। अर्थात् 'असत्करणात्' इत्यादि हेतु यहां व्यभिचारी होंगे। व्यभिचार की निवृत्ति के लिए हेतु को विशेषण लगाना पड़ेगा। जिस प्रकार इस प्रक्रिया में असत् निश्चय की उत्पत्ति सिद्ध होती है उसी प्रकार महदादि असत् की उत्पत्ति होगी। अत सत्कार्यवाद को तिलाञ्जलि दे दीजिये।

सत्कार्यवाद में बन्ध मोक्ष की अनुपपत्ति

साख्यों के सत्कार्यवाद के पक्ष में मिथ्याज्ञान सर्वदा विद्यमान रहने से बन्धन कायम रहेगा। मोक्ष कभी भी

नहीं हो सकता । यदि कहो कि प्रकृति पुरुष के विवेक ज्ञान से मोक्ष हो जायगा तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि विवेक ज्ञान भी सदा विद्यमान रहने से जीव सर्वदा मुक्त रहेगा। बन्धन कभी न रहेगा। ऐसा होने से बन्ध मुक्त के व्यवहार के उच्छेद होने का प्रसंग प्राप्त होगा।

हर एक प्रवृत्ति हित की प्राप्ति और अहित के परिहार के लिए होती है। सत्कार्यवाद में हर एक पदार्थ सदा विद्यमान रहने से प्राप्य और परिहार्य कुछ भी नहीं रहता। इससे सारा जगत् निरीह-इच्छा रहित सिद्ध होगा। और प्रवृत्ति सदाके लिए विदाई ले लेगी। अत इस एकान्त सत्कार्यवाद की बला को छोड दीजिये।

क्या एक प्रकृति ही सब का कारण है ?

'भेदानापरिमाणात' इत्यादि हेतुओं से प्रकृति को ही सब सब का कारण रूप स्थापित करने की पूर्व पक्षी ने कोशिश की है किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि भेदों के परिमाण और एक कारण जन्यता की परस्पर व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है। अनेक कारण जन्यता स्थल में भी भेद परिमाण रूप हेतु रहने से व्यभिचार दोष है। सामान्य कारण जन्यता के साथ व्याप्ति प्रसिद्ध है फिर भी उसे कारण मात्र जन्यता रूपसे सिद्ध करने के लिए हेतु प्रयोग करना सिद्ध साधन है।

पूर्वपक्षी का दूसरा हेतु 'भेदों का समन्वय दर्शन है' अर्थात् बुद्धि आदि भेदों का प्रकृति में समन्वय दिखाई देता है अत प्रकृति ही सर्व भेदों का कारण है। उत्तरपक्षी कहते है कि

नहीं हेतु असिद्ध है। सुख, दुःख मोह ये भेद हैं और शब्दादि भी भेद हैं इन सबका समन्वय प्रकृति में नहीं हो सकता क्योंकि सुख दुःखादि तो चेतन हैं और शब्दादिक अचेतन हैं। चेतन और अचेतन दोनों का समन्वय प्रकृति में होना प्रमाण विरुद्ध है। पूर्व पक्षी कहता है कि प्रमाद, हास, निद्रादि प्रकृति के धर्म हैं और प्रकृति में समन्वित होते हैं, यह भी कथन ठीक नहीं है। 'प्रकृति से आत्मा भिन्न है' ऐसी भावना भानेवाले योगाभ्यासी कपिलादिक के आत्मा में प्रमाद दृष्ट होता है। इसके विरुद्ध आत्मा का दर्शन न करने वालों को नहीं होता है। जड़ बुद्धिवाले मनुष्यों को मोह उत्पन्न होता तो भी सांख्यों ने आत्माका प्रधान में समन्वय नहीं माना है, यदि कहा कि संकल्प मात्र से प्रीति अप्रीति उत्पन्न होती है तो संकल्प भी ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान आत्मा का धर्म है। सुखादिक चेतन ज्ञान से आत्मा में समन्वित होते प्रकृति में नहीं। अतः भेद समन्वय रूप हेतु से प्रकृति सबका कारण सिद्ध नहीं हो सकती। इत्यलमतिविस्तरेण।। (प्र० क० मा० प० १। पृ० ८१ ८४,)

कालादिवाद के विषय में जैनों का उत्तर पक्ष

प्रकृतिवाद के साथ साथ कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद और कर्मवाद की एकान्तरूप में प्रवृत्ति हुई है जिससे मूलगाथा में 'पहाणाइ' शब्द रखा गया है। प्रधान प्रकृति और आदि शब्द से काल स्वभाव आदि चार कारणों का उपन्यास पूर्वपक्ष रूप से पहले कर चुके हैं। सूरिजी ने इस सम्बन्ध में जो ऊहापोह किया है उसमें से कुछ पूर्वपक्ष के उपन्यास के साथ उत्तर पक्ष का उपन्यास करना अप्रासंगिक नहीं गिना जा सकता।

कालादीना च कर्तृत्व, मन्यन्तेऽन्ये प्रवादिन ।
केवलाना तदन्ये तु, मिथ सामग्र्यपेक्षया ॥
(शा० वा० स० स्त० २।५२)

अर्थ—कई एकान्तवादी काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकर्म म से एक एक का एकात रूपसे कारण मानते हैं। किन्तु अनेकान्तवादी इन चारों की समूहरूप सामग्री को सापेक्ष कारण मानते हैं।

इन चारों वादियों का परस्पर सवाद इस प्रकार है—
प्रथम कालवादी कहता है कि—

न काल व्यतिरेकेण, गर्भकाल शुभादिकम् ।
यत्किञ्चिज्जायते लोके, तदसौ कारण किल ॥
(शा० वा० स० स्त० २।५३)

काल पचति भूतानि, काल सहरते प्रजा ।
काल सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रम ॥
(शा० वा० स० स्त० २।५४)

किञ्च कालादृते नैव, मुद्गपक्तिरपीष्यते ।
स्थाल्यग्निसन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मता ॥
(शा० वा० स० स्त० २।५५)

कालाभावे च गर्भादि, सर्व स्यादव्यवस्थया ।
परेष्ट हेतु सद्भाव—मात्रादेव तदुद्भवात् ॥
(शा० वा० स० स्त० २।५६)

अर्थ—सुगम है ।

स्वभाववादी कहता है कि—

> न स्वभावातिरेकेण, गर्भबालशुभादिकम् ।
> यत्किञ्चिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।५७)

> सर्वे भावा स्वभावेन, स्वस्वभावे तथा तथा ।
> वर्तन्तेऽथ निवर्तन्ते, कामचारपराङ्मुखा ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।५८)

> न विनेह स्वभावेन, मुद्गपक्तिरपीष्यते ।
> तथा कालादि भावेऽपि, नाश्वमाषस्य सा यत ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।५९)

> अतत्स्वभावात्तद्भावेऽतिप्रसङ्गोऽनिवारित ।
> तुल्ये तत्र मृद कुम्भो न पटादीत्ययुक्तिमत् ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।६०)

अर्थ—सुगम है ।

नियतिवादी कहता है—

> नियतेनैवरूपेण, सर्वे भावा भवन्ति यत् ।
> ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधत ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।६१)

> यद्यदेव यतो यावत्तत्तदेव ततस्तथा ।
> नियत जायते न्यायात्, क एताम् बाधितु क्षम ॥
>
> (शा० वा० स० स्त० २।६२)

न चर्ते नियति लोके, मुद्गपक्तिऽपीदयते।
तत्स्वभावाद्भिावेऽपि, नासावनियता यत ॥
(शा० वा० स० स्त० २।६३)

अन्यथाऽनियतत्वेन, सर्वभाव प्रसज्यते।
अन्योन्यात्मकतापत्ते, क्रियावैफल्यमेव च ॥
(शा० वा० स० स्त० २।६४)

अर्थ—सुगम है।

कर्मवादी एकान्त रूप से कर्म की कारणता का यशोगान करता हुआ कहता है—

न भोक्तृव्यतिरेकेण भोग्य जगति विद्यते।
न चाकृतस्य भोक्ता स्यात्, मुक्तानाम् भोगभावत ॥
(शा० वा० स० स्त० २।६५)

भोग्य च विश्व सत्वाना, विधिना तेन-तेन यत्।
दृश्यतऽध्यक्षमेवेद, तस्मात्तत्कर्मज हि तत् ॥
(शा० वा स० स्त० २।६६)

न च तत्कर्म वैधुर्ये मुद्गपक्तिरपीष्यते।
स्थाल्यादि भेदभावेन, यत्क्वचिन्न भोगत ॥
(शा० वा० स० स्त० २।६७)

अर्थ—इस जगत् में भोक्ता के बिना भोग्य नहीं है। भोक्ता भी कृतकर्म का होगा। अकृतकर्म का कोई भोग नहीं बन सकता। अकृतकर्म का भी भोक्ता मानोगे तो मुक्त आत्माओं का भी भोग का प्रसग प्राप्त होगा। ससारी प्राणियों को सुख

दु ख देन से यह जगत् भोग प्रयोजन है, वह प्रत्यक्ष है। इस लिए जगत् भोक्ता कर्म जन्य है अत जगत् का कारण कर्म ही है। भोक्ता व कर्म अनुकूल न हों तो मूँग का पाक भी नहीं होता सकता। अन्य कुछ भी न हो तो मूँग की हण्डी ही फूट जायगी जिससे खाने म बाधा हो जायगी।

> चित्र भोग्य तथा चित्रात्, कर्मणोऽहेतुताऽन्यथा।
> तस्य यस्माद्विचित्रत्व, नियत्यादेर्युज्यते कथम्॥
>
> (२। ६८)

अर्थ—नाना प्रकार के भोग नाना प्रकार के कर्म स सिद्ध होते हैं। नाना प्रकार के कर्म न स्वीकार किय जायँ तो विचित्र भोग का कोई हेतु न रहेगा। यह विचित्रता नियति आदि से सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि—

> नियतेर्नियतात्मकत्वान्नियताना समानता।
> तथा नियतभावे च, बलात्स्यात्तद्विचित्रता॥
>
> (२। ६६)

अर्थ—नियति का स्वरूप नियत है। नियतकार्य में समानता ही रहगी, विचित्रता नहीं आ सकती। अन्य कारण को न मानकर नियति को ही कार्य मानोगे तो कार्य में विचित्रता नियम से नहीं आ सकती जबर्दस्ती स लाओ तो बात दूसरी है। अत कर्म ही को कारण मानना चाहिए।

> न च त मात्रमावादे—यु-यतेऽस्या विचित्रता।
> तन्मात्रभेदक त्वुक्त्वा, सम्यग् न्यायाविरोधत॥
>
> (२। ७०)

अर्थ—सम्यग न्याय दृष्टि से देखोगे तो कार्य में विचित्रता लाने के लिए केवल नियत से कार्य नहीं हो सकता किन्तु तदन्यभेदक नियति के सिवाय अन्य कारण मानना पड़ेगा। एकान्त रूप से केवल नियति से कार्य नहीं चल सकता।

तद्विचभेदकत्वे च तत्र तस्या न कर्तृता।
तत्कर्तृत्वे च चित्रत्व तद्वत्तस्याप्यसगतम् ॥

(२। ७२)

अर्थ—नियति के सिवाय अन्य की कारणता मानने पर नियति का कर्तृपन नहीं रह सकता। ऐसा होने से नियति म सर्व हेतुत्व के सिद्धान्त का लोप हो जायगा। कदाचित् नियति का कर्तापन स्वीकार कर लिया जाय तो कार्य में विचित्रता की असगति कायम रह जायगी।

तस्या एव तथाभूत, स्वभावो यदि चेष्यते।
त्यक्तो नियतिवाद स्यात्, स्वभावाश्रयणाद्धनु ॥

(२। ७३)

अर्थ—यदि नियति का ही ऐसा स्वभाव माना जाय कि कार्य की विचित्रता उत्पन्न हो जाती है तो ग्रन्थकार कहते हैं कि नियतिवाद को तिलाञ्जलि मिल चुकी। फिर तो स्वभाव का आश्रय लेने से स्वभाववाद ही कायम रहा।

स्वभावाश्रय में भी दोष दिखाए जाते हैं

स्वो भावश्चस्वभावोपि, स्वसत्तैव हि भावत ।
तस्यापि भेदकाभावे, वैचित्र्य नोपपद्यते ॥

(२। ७४)

अर्थ—स्वभाव शब्द का अर्थ निश्चय से अपनी सत्ता ही होता है। नियति का स्वभाव, नियति की सत्ता ही हुआ। उसमें वैचित्र्यप्रयोजक कोई भेदक भाव नहीं है अतः स्वभाव का आश्रय लेने पर विचित्रता असंगत ही रहती है।

ततस्तस्याविशिष्टत्वाद् युगपद्विश्वसम्भवः ।
न चासाविति सद्युक्त्या तद्वादोऽपि न संगतः ॥
(२।७४)

अर्थ—वैचित्र्य के अभाव से स्वभाव भी एक रूप ही सिद्ध हुआ। एकरूपी स्वभाव से जगत् उत्पन्न होगा तो जगत् भी एकरूप ही होगा। उसमें विचित्रता नहीं आ सकती अतः स्वभाववाद भी संगत नहीं है। नियति के समान स्वभाव भी कार्य की विचित्रता का प्रयोजक नहीं बन सकता।

तत्तत्कालादि सापेक्षो विश्वहेतुः स चेन्ननु ।
मुक्तः स्वभाववादः स्यात्, कालवाद परिग्रहात् ॥
(२।७५)

अर्थ—कालवादी कहता है कि स्वभाव एक रूप होने से कार्य में विचित्रता नहीं आती तो काल को स्वभाव के साथ मिलालो। काल सापेक्ष स्वभाव विचित्र कार्य उत्पन्न कर सकेगा। अनेकान्ती कहते हैं कि तब एकान्त स्वभाववाद कहाँ रहा? कालवाद को साथ रखना है तो स्वभाववाद को तिलाञ्जलि मिल चुकी।

कालोऽपि समयादिर्यत्, केवल सोऽपिकारणम्।
तत एव ह्यसंभूत कस्यचिन्नोपपद्यते ॥
(३१ ॥)

अर्थ—अहो कालवादिन्! काल क्या वस्तु है? क्षण, मुहूर्त्त आदि काल है ऐसा कहना पडेगा। [illegible] बिना क्या समय आदि काल किसी पदार्थ का [illegible] सक्ते हैं? नहीं कर सक्ते। तब सिद्ध हुआ कि [illegible] निरपेक्ष रहकर किसी का कारण नहीं बन सक्ता।

यतश्च काले तुल्येऽपि, सर्वत्रैव न [illegible]।
अतो हेत्वन्तरापेक्ष, विज्ञेयं [illegible]॥
(३२ ॥)

अर्थ—काल यदि निरपेक्ष कारण होता [illegible] रूप ही रहेगा। जिस समय एक स्थान पर [illegible] उस समय सर्वत्र घट की उत्पत्ति होनी चाहिए [illegible] होता। जहाँ मृत्तिका होती है वहाँ घट [illegible] सन्तु होते हैं वहा पट उत्पन्न होता है। [illegible] साथ अन्य भी कुछ कारण होना चाहिए। जब [illegible] को मानोगे तो एकान्तकालवाद को भी [illegible] चुकी। तो क्या होना चाहिए यह अनेकान्त [illegible] सूरजी बताते हैं कि—

अत कालादय सर्वे, समुदायेन [illegible]।
गर्भादि कार्यजातस्य, विज्ञेया [illegible]॥

न चैकेकत एवह, क्वचित् किञ्चिदपीक्ष्यते ।
तस्मात् सदस्वकार्यस्य, सामग्री जनिका मता ॥
(२।८०)

अर्थ—न्यायवादियों को समझना चाहिये कि काल, स्वभाव नियति और कर्म ये चारों समुदायरूप से गर्भादिक सवकार्य के कारण हैं। किसी भी स्थल पर किसी भी काल म, इन चारों में से किसी एक के द्वारा एकान्तरूप से कार्य की निष्पत्ति नहीं हो सकती अत इन चारों की समूहरूप सामग्री सर्वकार्य का कारण है यही मानना उपयुक्त है। इसी बात को सिद्धसेन दिवाकर ने सम्मति तर्क में बताया है। देखिये—

काला सहाव णियई, पुव्वकम्म पुरिसकारणेग ता ।
मिच्छत्तं त चेव उ, समासओ हुन्ति सम्मत्त ॥

अर्थ—काल, स्वभाव, नियति, पूर्व कृतकर्म और पुरुषकार-पुरुषार्थ इन पाँचों की पृथक् पृथक् कारणता, एकान्तरूप से स्वीकार करना मिथ्यात्व है। पाँचों का समन्वय करके कारणता स्वीकार करना सम्यक्त्व है। पाँचों में गौणता और मुख्यता अवश्य है। कहीं काल प्रधान है, और अन्य चार गौण हैं, कहीं कर्म प्रधान और चार गौण ऐसे पाँचों के लिए समझना चाहिए। अवसर्पिणी के प्रथम आरे में सुख ही सुख है और छठआरे में दुःख ही दुःख है। उत्सर्पिणी के प्रथम आरे में दुःख ही दुःख और छठे आरे में सुख ही सुख है। यहाँ काल की प्रधानता है। भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र म एकान्त सुख या एकान्त दुःख होता है और महाविदेह क्षेत्र में सदैव

सद्दाल पुत्त—भगवन् ? अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य, अपुरुषार्थ, अपराक्रम से बने हैं। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम हैं ही नहीं। सबभाव नियति के अधीन हैं।

महावीर स्वामी—सद्दालपुत्त ! कोई मनुष्य कच्चे या पके तेरे बर्तन उठा जाय, उन्हें बिखेर डाले, तोड फाड़ डाले, अथवा अग्नि मित्रा नाम की तेरी भार्या के साथ कोई कुकर्म करे तो उसे तू क्या दण्ड देगा ?

सद्दालपुत्त—भगवन् ! उस गुन्हेगार को आक्रोश वचन कहूँगा, मारूँगा, बाधूँगा, ताडना तर्जना करूँगा, निभर्त्सना करूँगा, कि बहुना अकाल में ही जीवन से रहित कर दूँगा।

महावीर स्वामी—सद्दालपुत्त ! यदि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम नहीं हैं, सबभाव नियति के अधीन हैं तो उन बर्तनों का चुराने वाला, तोडनेवाला या कुकर्म करनेवाला अपराधी नहीं है। क्योंकि उसने अपने पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं किया है। नियति से ही सब कार्य हुआ है। अत उसे दण्ड देना वाजिब नहीं है। ऐसा होने पर भी यदि तू उसे अपराधी मानता है और दण्ड देता है तो सबभाव नियति अधीन हैं यह बात मिथ्या सिद्ध होती है।

जैन जगत्-लोकवाद

(सृष्टि प्रलय और स्थिति)

"तत्त ते ण विणासन्ति ण विणासी कयाइवि"

(सू० १।१।३।६)

नौवीं गाथा के तीसरे पद के विवरण में भिन्न भिन्न धर्मों के पूर्वपक्ष और दार्शनिक उत्तर पक्ष के ऊहापोह में यह निर्णय निकलता है कि 'ण विणासी कयाइवि' 'न विनाशी कदाचिदपि' अर्थात् किसी भी काल में इस जगत् का सर्वथा विनाश नहीं हुआ, न होता है और न होगा।

पिंगल नियंठा के द्वारा स्कन्धक सन्यासी से पूछे हुए प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का खुलासा करते हुए भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं कि—

'कालओ णं लोए ण कयावि न आसी, न कयावि न भवति, न कयावि न भविस्सति भविंसु य भवति य भविस्सइ य धुवे णियए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे णत्थिपुण से अन्ते" (भग० २।१)

अर्थ—अहो स्कन्दक! काल की अपेक्षा यह लोक भूत काल में कभी न था, यह बात नहीं है, वर्तमान काल में नहीं है ऐसा भी नहीं, और भविष्य में किसी भी काल में न होगा ऐसा भी नहीं है। भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। लोक ध्रुव है, नियत एक स्वरूप है, शाश्वत-प्रतिक्षण वर्तमान है, अक्षय अविनाशी है, अव्यय, व्ययहानि रहित है, अवस्थित—पर्याय अनन्त होने से किसी न किसी पर्याय में विद्यमान है, नित्य काल की अपेक्षा से उसका अन्त नहीं आ सकता।

लोक का स्वरूप

धृत कृतो न केनापि स्वयं सिद्धो निराश्रयः।
निरालम्बः शाश्वतश्च विहायसि परं स्थितः॥
उत्पत्ति विलयध्रौव्य—गुणषड्द्रव्य पूरितः।
मौलिस्थसिद्धमुदितो नृपयायेवानन्तकम्॥

(वै० श० १२ ६१)

अर्थ—यह लोक किसी से धारण किया हुआ नहीं है और न किसी के द्वारा बनाया हुआ है। अपने स्वरूप से सिद्ध है। इसको ठहराने के लिए किसी मूर्त आश्रय की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही आलम्बन की भी आवश्यकता नहीं है। यह शाश्वत है—आकाश को अवगाहन करके रहा हुआ है। उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य गुण युक्त धर्मास्तिकायादि छः द्रव्यों से भरा हुआ है। अर्थात् छः द्रव्यों का समुदाय यह लोक है। यदि लोक की पुरुष के रूप में कल्पना की जाय तो मुकुट के स्थान पर सिद्ध भगवान् अनन्त आनन्द से प्रसन्न हो रहे

हैं और नृत्य के लिए मानो पैर पसार कर नाच रहा हो वैसे पुरुष के आकार वाला यह लोक है। तदुक्त—

किमय भंते लोएत्ति पवुच्चई गोयमा ! पंचत्थिकाया एस ण एवतिए लोएत्ति पवुच्चइ। त जहा धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए जाव पोग्गलत्थिकाए। (भग० १३।४)

अर्थ—गौतम स्वामी महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे भंते ! यह लोक क्या चीज है ? महा० गौतम ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय इन पाँच अस्तिकायों का समूह ही यह लोक है।

अस्तिकाय का स्वरूप

अस्ति यानी प्रदेश और काय यानी समूह। परस्पर सम्मिलित प्रदेशों का समूह अस्तिकाय है। परस्पर सम्मिलित प्रदेश वाले पाँच पदार्थ हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। इन पाचों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

श्री गौतम-महावीर प्रश्नोत्तर

गौतम—हे प्रभो ! धर्मास्तिकाय जीवों की किन किन प्रवृत्तियों में हेतु बनता है ?

महावीर—हे गौतम ! जीवों का आना, जाना, बोलना, आँख के पलक मारना, मनका व्यापार, वचन का व्यापार और काया का व्यापार इत्यादि प्रकार के जो जो चलित भाव हैं वे सब धर्मास्तिकायका निमित्त

गौतम—भंते ! जीवास्तिकाय जीव की किस किस प्रवृत्ति में हेतु बनता है ?

श्रीमहावीर—गौतम ! जीवास्तिकाय जीव के अनन्त मतिज्ञान के पर्यायों, अनन्त श्रुत ज्ञान के पर्यायों, अनन्त अवधि ज्ञान के पर्यायों, अनन्त मन पर्याय ज्ञान के पर्यायों और अनन्त केवल ज्ञान के पर्यायों का उपयोग लगाने में निमित्त बनता है । क्योंकि उपयोग लगाना यह जीव का लक्षण है ।

गौतम—भंते ! पुद्गलास्तिकाय जीवों की किन किन प्रवृत्तियों में कारण बनता है ?

श्रीमहावीर—गौतम ! पुद्गलास्तिकाय जीवों के औदारिक आदि पाँच शरीर बनने में, श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियाँ बनने में और मनोयोग, वचन योग, काया योग, श्वासोच्छ्वास आदि के लिए आवश्यक पुद्गल ग्रहण करने में कारण बनता है अर्थात् उक्त पुद्गल जीव से ग्राह्य बनते हैं । ग्राह्य होना ही पुद्गल का लक्षण है ।

(भग० १३।४ सूत्र ४८१)

अस्तिकायके भेद और उनका विशेष स्वरूप

गौतम—भंते ! धर्मास्तिकाय में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श कितने हैं ?

महावीर—गौतम ! धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध रस और स्पर्शरहित

द्रव्यस्य परमाण्वाद्—यां सद्रूपतया स्थिति ।
नवीनजीर्णतया वा सा, वर्त्तना परिकीर्तिता ॥
(लो० प्र० स० २८।२८)

अर्थ—परमाणु आदि द्रव्य की परमाणु आदि रूपसे स्थिति होना अथवा नवीन पदार्थ को जीर्ण बनाना और जीर्ण को नया बनाना वर्तना है। यह वर्त्तना काल का गुण है अर्थात् कालाश्रित है।

काल का स्वरूप और प्रकार

कालद्रव्य वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श से रहित है। अरूपी और अमूर्त है। संक्षेप में इसके पांच प्रकार हैं–द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से और गुण से। द्रव्य से काल नामक एक द्रव्य है। क्षेत्र से—व्यवहार काल ढाई द्वीप प्रमाण है और वर्तना लक्षण निश्चय काल सर्व लोक व्यापी है। काल से—अरूपी अमूर्त है। गुण से वर्तना परिवर्तन गुण वाला है।

काल अस्तिकाय क्यों नहीं है ?

धर्माधर्माम्रजीवाख्या पुद्गलेन समन्विता ।
पञ्चामी अस्तिकाया स्युः प्रदेश प्रचयात्मका ॥
अनागतस्यानुत्पत्ते रूपक्षस्य च नाशत ।
प्रदेश प्रचयाभावात्, काले नैवास्तिकायता ॥
(लो० प्र० स० २।१२।१३)

अर्थ—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये पांचों अस्तिकाय इसलिए हैं कि ये प्रदेश (निर्विभाज्य अंश) समूह रूप हैं। काल में

अस्तिकायता नहीं है क्योंकि अनागत काल की भविष्यत् काल की उत्पत्ति नहीं हुई और उत्पन्न हुए भूतकाल का नाश हो गया अर्थात् क्षण-क्षण का सचय नहीं हो सकता। प्रदेश समूह क अभाव से काल अस्तिकाय रूप नहीं है यह तात्पर्य है।

> विना जीवेन पञ्चामी, अजीवा कथिता श्रुत ।
> पुद्गलेन विना चामी, जिनैरुक्ता अरूपिण ॥
> (का० प्र० स० २१४)

अर्थ—जीवको छोडकर बाकी के पाच द्रव्य अजीव हैं। और पुद्गल को छोड कर अन्य पाच द्रव्य अरूपी हैं ऐसा शास्त्र में कहा गया हैं।

द्रव्य-लक्षण

उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त जो सत् है वह द्रव्य है। तदुक्त— उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्' (त० सू० अ० ५-२६) अर्थ—उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य युक्त जो सत—सद्भूतवस्तु है वह द्रव्य कहा जाता है। घटपटादिक में नवीन पर्यायकी उत्पत्ति होती है जीर्णपर्याय पूर्वपर्याय का विनाश होता है, मिट्टी या तन्तु आदि अश की स्थिरता रहती है और वह सत्प दाथ है अत लक्षण समन्वय हो जाता है। शश विषाण या आकाश कुसुम आदि असद् भूत हैं उनमें सद्पना नहा है अत लक्षण समन्वय नहीं होता है अत प्रस्तुत लक्षण म अतिव्याप्तिदोष नहीं प्राप्त होता हैं। द्रव्य मात्र गुणपर्यायात्मक है। पर्याय की अपेक्षा से उत्पत्ति विनाश और द्रव्य की अपेक्षा से ध्रौव्य अश है। पदार्थ मात्र में लक्षण का सद्भाव होने से

लोगस्स य सासयं भावं, संसारस्स य अणादि भावं, जीवस्स य णिच्चभावं, कम्मबहुत्तं, जम्मण मरण बाहुल्लं च पडुच्च नत्थि केइ परमाणु पोग्गल मेत्तेविपएसे जत्थणं अयजीवे न जाए वा न मएवावि से तेणट्ठेणं त चेव जाव न मए वावि।

(भग० १२–७। सू० ४१७)

अर्थ—लोक शाश्वत है, संसार अनादि है, जीव नित्य है कर्म की बहुलता है, जन्म मरण की प्रबलता है, इन सब कारणों से एक परमाणु मात्र भी स्थान लोक में जन्म मरण रहित नहीं बचा है। इति।

लोक विभाग

ऊपर बताया गया है कि लोकाकाश और अलोकाकाश के बीच में सीमादर्शक भेद जनक कोई वस्तु, रेखा, नदी या पहाड़ नहीं है। दोनों आकाश एक ही गुण और स्वभाव वाले हैं। भेद है वह वास्तविक नहीं किन्तु उपाधिकृत है। वह उपाधि धर्मास्तिकाय आदि पाँच द्रव्यों का सहयोग है। इसी प्रकार लोकाकाश के उर्ध्व, अधो और तिर्यक् उपाधि भेद से तीन भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—

प्रश्नोत्तर

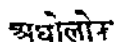
गौतम—भंते ? द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार के बताये हुए लोक में से क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ?

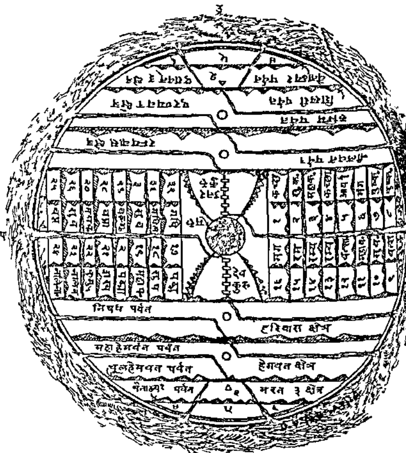
श्रीमहा०—गौतम ? क्षेत्रलोक तीन प्रकार का है। (१) अधो

अद्दोलोय-अधोलोक

त्रिछो लोक

पाथडा १३		पृथ्वी पिंड १८०० योजन
नरकावासा ३	नरक १ ली.	
पाथडा ११		पृ १३१ ०० यो
न. २५ ० ००	२	
पाथडा ९		पृ १२८००० यो
न. १५०० ०	३	
पाथडा ७		पृ १२ ० यो
न. १ ००००	४	
पाथडा ५		पृ ११८००० यो
न ३	५	
पाथडा ३		पृ ११६००० यो
न ९९९९५	६	
पाथडो १		पृ १८००० योजन.
नरकावासा ५	७	


अधोलोक



जम्बू द्वीप

[पृष्ठ ४२१]

लोक क्षेत्रलोक (२) तिर्यक्लोक क्षेत्रलोक (३) ऊर्ध्व लोक क्षेत्रलोक।

गौतम—भंते ? अधोलोक क्षेत्र लोक के कितने प्रकार हैं ?

श्री महा०—गौतम ! सात प्रकार हैं। रत्नप्रभादि सात नारकी की सात पृथ्वियाँ जो कि सात राजु परिमित हैं, अधोलोक क्षेत्र लोक कहलाती हैं।

गौतम—भंते ? तिर्यक्लोक क्षेत्र कितने प्रकार का है ?

श्रीमहा०—गौतम ?—असंख्यात प्रकार का है। जम्बूद्वीप से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्र परिमित तिर्यक्लोक कहा जाता है। जम्बूद्वीप की आकृति नीचे लिखे अनुसार है—

गौतम—भंते ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोक कितने प्रकार का है ?

श्रीमहा०—गौतम ? पंद्रह प्रकार का है। सौधर्म कल्प आदि बारह देवलोक, (१३) नवग्रैवेयक विमान (१४) पाँच अनुत्तर विमान (१५) सिद्धशिला ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक है।

(भग० ११-८ सू० ४२०)

लोक का संस्थान-आकृति

यदि लोक आकाशमात्र होता तो उसकी कोई आकृति नहीं होती क्योंकि आकाश नीचे ऊपर और चारों दिशा विदिशा में एकाकार ही है। दूसरी बात उसकी कहीं भी सीमा न होने से कोई भी संस्थान या आकृति नहीं बन सकती। किन्तु लोकाकाश में धर्मास्तिकाय आदि मूर्त्त और अमूर्त्त पाँच द्रव्य अमुक

परिस्थिति में रहे हुए हैं। कहीं विस्तार से और कहीं संकोच में सदा रहते हुए हैं। अतः उसकी आकृति अवश्य होती है। वह आकृति नीचे, ऊपर और बीच में भिन्न-भिन्न प्रकार की है। वह इस प्रकार है—

प्रश्नोत्तर

गौतम—भंते ? अधोलोक क्षेत्र लोक का क्या संस्थान—आकृति है ?

श्रीमहा०—गौतम ? औंधे किए हुए शराव के आकार जैसा आकार अधोलोक का है।

गौतम—भंते ? तिर्यक्‌लोक क्षेत्रलोक का क्या आकार है ?

श्रीमहा०—गौतम ? बिना किनारी वाली झालर के जैसा आकार है।

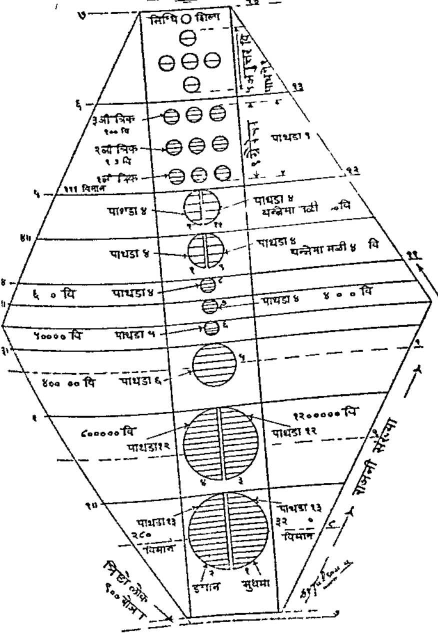
गौतम—भंते ? ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक का कैसा आकार है ?

श्रीमहा०—गौतम ? ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार जैसा आकार है।

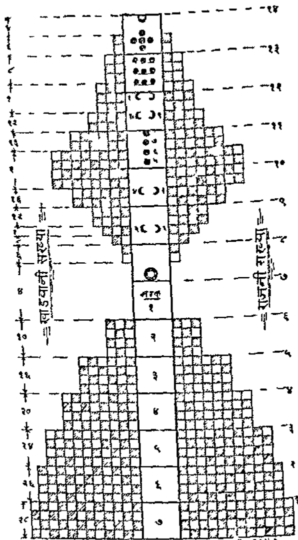
गौतम—भंते ? चौदह राजु परिमित सारे लोक का कैसा आकार है ?

श्रीमहा०—गौतम ? सुप्रतिष्ठक के समान लोक का आकार है। तीन शरावों में से एक शराव औंधा, दूसरा सीधा और तीसरा उसके ऊपर औंधा रखा जाय इनका जैसा आकार होगा लोक का भी वैसा ही है। नीचे

उड्ढ लोय – उर्ध्व लोक



उर्ध्वलोक



लोक

विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर मृदंगाकार है। अथवा एक मनुष्य पाजामा पहिन कर कमर पर हाथ रखकर नाच करे उसके समान लोक का आकार है।

नर वैशाख संस्थान स्थितपाद कटीतटे।
न्यस्तहस्तद्वय सर्व-दिक्षु लोकोऽनुगच्छति॥

(लो० प्र० स० १२-३)

अर्थ—एक मनुष्य जिसके पैर वैशाख संस्थान की स्थिति में हैं, दोनों हाथ कमर पर रखे हुए हैं, सब दिशा में घूमता है जैसे मनुष्य के समान लोक का आकार है।

गौतम—भंते ? अलोक का आकार कैसा है ?

श्रीमहा०—गौतम ? बीच में पोलाड वाले गोल के समान अलोक का आकार है।

जैसे ⊙

(भग० ११-१ । सू० ४२०)

लोक और अलोक में प्रथम कौन ?

(रोह मुनि के प्रश्नोत्तर)

रोह—भंते ? पहिले लोक और बाद में अलोक हुआ या पहिले अलोक और बाद में लोक हुआ ?

श्री महा०—रोह ? लोक और अलोक पहिले भी है और पीछे भी। ये दोनों शाश्वत (नित्य) भाव (पदार्थ) हैं। हे रोह ! ये आनुपूर्वी (पौर्वापर्य भाव) से रहित हैं।

रोह -भंते ? प्रथम जीव और बाद में अजीव है ? अथवा प्रथम अजीव [illegible] जीव है ?

श्री महा०—रोह ? लोक अलोक के सम्बन्ध में जैसा कहा गया है वैसा ही जीव अजीव के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए। अर्थात् ये दोनों शाश्वत और अनुक्रम रहित हैं। इसी प्रकार भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) सिद्धि (मुक्ति) और असिद्धि (अमुक्ति) सिद्ध (मुक्त) और असिद्ध (अमुक्त) के विषय में भी समझना चाहिये।

रोह—भंते ? प्रथम अण्ड बाद में कुकडी या प्रथम कुकड़ी बाद में अण्ड हुआ।

श्री महा०—रोह ? वह अण्ड किस से हुआ ?

रोह—भंते ? कुकडी (मुर्गी) से।

श्री महा०—रोह ? कुकडी कहाँ से हुई ?

रोह—भंते ? अण्ड में से हुई।

श्री महा०—हे रोह ! इसी प्रकार वह अण्ड और वह मुर्गी प्रथम भी हैं और पश्चात् भी हैं। ये दोनों शाश्वत पदार्थ हैं। हे रोह ! ये प्रवाह—आनुपूर्वी रहित हैं।

रोह—भंते ? प्रथम लोकान्त (लोक का सिरा) पश्चात् अलोकान्त है ? अथवा प्रथम अलोकान्त और फिर लोकान्त है।

श्री महा०—रोह ! लोकान्त और अलोकान्त प्रथम भी हैं और पश्चात् भी हैं। ये दोनों शाश्वत भाव हैं, आनुपूर्वी रहित हैं।

रोह—भंते ? प्रथम लोकान्त पीछे सातवाँ अवकाशान्तर (सातवीं नरक के तनुवात के नीचे का आकाश)

है ? अथवा प्रथम सातवाँ अवकाशान्तर और बाद में लोकान्त है ?

श्री महा०—हे रोह ! लोकान्त और सातवाँ आकाश प्रथम भी है और पश्चात् भी है। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। आनुपूर्वी रहित हैं। 'इसी प्रकार लोकान्त और सातवाँ तनुवात के विषय में भी समझना चाहिए। तथा इसी प्रकार सातवाँ घनवात, सातवाँ घनोदधि, सातवीं नरक पृथ्वी भी समझ लेनी चाहिए।

(भग० १—६ । सू० २३)

लोक स्थिति मर्यादा

लोक में पृथिवी आदि किस किस के आधार से रहे हुए हैं ? किस किसका परस्पर आधार आधेय भाव है ? यह यहाँ बताया जाता है।

प्रश्नोत्तर

गौतम—भंते ? लोकस्थिति—मर्यादा कितने प्रकार की है ?

श्री महा०—गौतम ? लोक मर्यादा आठ प्रकार की है। वह इस प्रकार है—

(१) आकाश के आधार से वायु (तनुवात, घनवात)।

(२) वायु के आधार से उदधि (घनोदधि)।

(३) उदधि (घनोदधि) के आधार से रत्न प्रभादि सात पृथ्वियाँ।

(४) पृथ्वी के आधार से त्रस और स्थावर प्राणी हैं।

(५) जीव के आधार पर अजीव (शरीरादि)
(६) कर्म के आधार से जीव की स्थिति है।
(७) अजीव (शरीरादि) जीव से संगृहीत ग्रहण किए हुए हैं।
(८) जीव कर्म से संगृहीत है।
इस प्रकार आठ प्रकार की लोक मर्यादा है।

(भग १—६। सू २४)

अनादि-विभु पदार्थों का अनादि सम्बन्ध

सामान्यतया यह कहा जाता है कि संयोग सभी विभाग मूलक हैं। यदि ऐसा हो तो सभी संयोग सादि सिद्ध होंगे। अनादि संयोग कोइ नहीं हो सकता। यह शंका उचित नहीं है। नैयायिक आकाश काल और दिग् द्रव्यों का संयोग अनादि मानते हैं। तीनों द्रव्य विभु और अनादि हैं, इनका सम्बन्ध भी अनादि है। अत सभी संयोग विभागपूर्वक ही हैं यह नियम नहीं बन सकता। जैन शास्त्र में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय (लोकाकाश) इन तीनों का परस्पर अनादि काल से सम्बन्ध है। जैसे इनकी आदि नहीं है वैसे अन्त भी नहीं है। अत ये तीनों पदार्थ जिस प्रकार अनादि अनन्त हैं उसी प्रकार इनका परस्पर सम्बन्ध भी अनादि अनन्त है। इस विषय में भगवती सूत्र में नीचे लिखे अनुसार कहा हुआ है—

प्रश्नोत्तर

गौतम—भंते ? बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

श्री महा०—गौतम ? बंध दो प्रकार का कहा गया है। एक प्रयोग बंध दूसरा विस्रसा बन्ध (स्वाभाविक बन्ध)

भग० ८-६ । सू० ३४६)

गौतम—भंते ? विस्रसा बंध कितने प्रकार का है ?

श्री महा०—गौतम ? विस्रसा बंध दो प्रकार का है । सादि विस्रसा बंध (२) अनादि विस्रसा बंध ।

गौतम—भंते ? अनादि विस्रसा बंध कितने प्रकार का है ।

श्री महा०—गौतम अनादि विस्रसा बंध तीन प्रकार का है ? (१) धर्मास्तिकाय परस्पर अ० वि० बंध (२) अधर्मास्तिकाय परस्पर अ० वि० बंध (३) आकाशास्तिकाय परस्पर अ० वि० बंध ।

गौतम—भंते ? इन तीनों की काल से कितनी स्थिति है ?

श्री महा०—गौतम ? इनकी स्थिति सव्वद्धा—सर्वकाल की है । अर्थात् यह सम्बन्ध सदा के लिए कायम रहने वाला है । मतलब यह है कि इन तीनों का अनादि अनन्त सम्बन्ध है ।

(भग० ८-६ । सू० ३४६)

इस पर से लोक भी अनादि अनन्त सिद्ध होता है । अर्थात् सृष्टि कर्त्ता का प्रश्न ही नहीं रह जाता है ।

साकार और सावयव होने से क्या लोक अनित्य नहीं है ? कर्तृत्ववादी कहते हैं कि जैन लोक को पुरुषाकार मानते हैं । कहीं पोला, कहीं सकुचित, कहीं विस्तृत इस प्रकार साकार माना जाता है । दूसरी बात सावयव यानी अवयव सहित भी माना जाता है । छः द्रव्यों का समूह रूप लोक है । छः द्रव्य

लोक के अवयव ठहरे। इनमें से पाँच द्रव्य तो अरूपी हैं केवल पुद्गलद्रव्य रूपी है। अर्थात् लोक के अवयव रूप पुद्गल के अनन्त द्वयणुक, अनन्त त्र्यणुक यावत् अनन्त अनन्त प्रदेशी स्कंध हैं। इस प्रकार सावयव और साकार लोक को जैन अनादि अनन्त और अविनाशी मानते हैं, यह ठीक नहीं है। जो-जो पदार्थ आकृतिवाले हैं अथवा अवयववाले हैं वे सब अनित्य हैं। जैसे घटपटादि। इसी प्रकार लोक भी साकार और सावयव होने से अनित्य सिद्ध होता है। अनित्य पदार्थों का कोई कर्त्ता होना चाहिये यह कर्तृत्ववादियों की शंका है।

समाधान

जैन वादी से पूछते हैं कि साकार और सावयव पदार्थ की अनित्यता सिद्ध करते हो वह एकान्त अनित्यता है अथवा कथंचित् अनित्यता है? यदि एकान्त अनित्यता मानते हो तब तो दृष्टान्त असिद्ध है। क्योंकि घटपटादिक पर्यायरूप से अनित्य हैं किन्तु द्रव्यरूप से नित्य हैं। पर्यायरूप से घटादिक का नाश होने पर भी पुद्गल परमाणुरूप से तो कदापि नाश नहीं होता। घट नष्ट होकर कपाल होंगे तो भी परमाणु तो रहेंगे ही। कपाल के टुकड़े टुकडे करके चूर्ण कर दिया जाय तो भी परमाणु तो रहेंगे ही। अतः पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से अनित्य और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से घटपटादिक नित्य होने से दृष्टान्त में भी एकान्त अनित्यता नहीं है किन्तु नित्यानित्यता है। तो अब कथंचित् अनित्यतारूप दूसरा पक्ष स्वीकार करना पड़ेगा। इसमें जैनों को भी इष्टापत्ति है। क्योंकि जैन किसी भी पदार्थ को एकान्त नित्य मानते ही नहीं हैं। कथंचित् अनित्य अर्थात् सर्व पदार्थों को नित्यानित्य मानते हैं।

पर्याय दृष्टि से अनित्य और द्रव्य दृष्टि से नित्य मानते हैं। घटपटादि के समान लोक भी नित्यानित्य है। लोक छद्रव्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। द्रव्य का लक्षण ही यह है कि जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हो। यह बात प्रथम ही कही जा चुकी है कि धर्मास्तिकायादि द्रव्यों मे प्रतिक्षण अगुरुलघु गुण के द्वारा स्वनिमित्तक स्वाभाविक नये पर्याय उत्पन्न होते हैं और पुराने पर्याय-नष्ट होते हैं। अगरुलघुगुण में यह भी शक्ति है कि पर्यायों का परिवर्तन होने पर भी द्रव्यरूप से ध्रौव्य भी रहता है। अर्थात् धर्मास्तिकायरूप में कायम रखने की शक्ति भी इस गुण म ही है। तात्पर्य यह है कि लोक कथंचित् अनित्य सिद्ध हो तो इसम प्रतिवादी को किसी प्रकार की हानि नहीं है अपितु इष्टापत्ति है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि धर्मास्तिकायादि निष्क्रिय पदार्थों में भी प्रतिक्षण जो अपरिस्पन्दरूप पर्याय परिवर्तन होता है वह निसर्गस्वरूप स्वाभाविक परिणमन है। इसके लिए न तो ईश्वर-प्रयत्न की जरूरत है और न जीव प्रयत्न की जरूरत है। कारण कि यह स्वाभाविक होने से स्वत सिद्ध है।

द्रव्यों की ध्रुवता का क्या कारण है ?

धर्मास्तिकायादि छ द्रव्य सत् होने से ध्रुवरूप अनादि हैं। सत् की नयी उत्पत्ति नहीं होती और विनाश भी नहीं होता। गीता में भी कहा है कि "नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत" असत् की उत्पत्ति नहीं होती है और सत का अभाव भी नहीं होता है।

समन्तभद्र जी ने स्वयम्भूस्तोत्र में सुमतिनाथ जिनकी स्तुति करते हुए कहा है कि—

'न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति, न च क्रियाकारकमत्र युक्तम् ।
नवासतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥'

अर्थ—वस्तु को यदि सर्वथा नित्य मानी जाय तो उसमें उत्पाद, व्यय नहीं हो सकता। उसी प्रकार उसमें क्रिया या कारक भी नहीं बन सकता। अतः हर एक वस्तु कथञ्चित् नित्य और कथंचित् अनित्य अर्थात् नित्यानित्य माना जाती है। असत् वस्तु की कभी उत्पत्ति नहीं होती और सत् का नाश भी नहीं होता। दीपक बुझ जाता है इसका अर्थ यह नहीं कि दीपक का सर्वथा नाश हो गया किन्तु अन्धकार पुद्गलरूप में उसका परिवर्तन हो गया। अर्थात् अंधकार रूप से सद्भाव हो गया।

असत् पदार्थ की भी यदि उत्पत्ति हो तो शशक के सींग या आकाश पुष्प की भी उत्पत्ति होनी चाहिए इनके सद्भाव का भी प्रसंग आयगा। अतः छः द्रव्य जो कि सत् हैं कभी उत्पन्न नहीं हुए और इनका नाश भी कभी नहीं होगा। ये अनादि अनन्त स्वतः सिद्ध हैं। द्रव्य रूप से ध्रुव हैं और पर्यायरूप से उत्पत्ति विनाशशील हैं। उत्पाद व्यय भी स्वतः सिद्ध हैं अतः किसी कर्ता की जरूरत नहीं है। छहों द्रव्यों में प्रतिक्षण सृष्टि और प्रतिक्षण प्रलय होते रहने पर भी ध्रौव्य अंश उनमें कायम रहता है। यही अनेकान्तवाद की खूबी है। इसी में जैन दर्शन का स्याद्वादमय रहस्य है। इसी में पर्याय की दृष्टि से बौद्ध दर्शन और द्रव्य की दृष्टि से वेदान्त दर्शन का जैन

दर्शन ने अपने में अन्तर्भाव कर लिया है। यह स्याद्वाद की विशालता अथवा उदारता है।

जैन सृष्टि तथा प्रलय (उत्कर्ष-अपकर्ष)

स्वाभाविक परिवर्तन या क्षण-क्षण की सृष्टि और क्षण-क्षण के प्रलय उपरान्त वैभाविक पर्याय जन्य दीर्घकालिक परिवर्तन या स्थूल सृष्टि प्रलय भी जैन शास्त्र में अवश्य है किन्तु वह केवल पुद्गल स्कन्ध और कर्म सहित जीव इन दो द्रव्य तक ही सीमित है। उसका क्षेत्र भी अतिमर्यादित है क्योंकि ऊर्ध्वलोक और अधोलोक में स्थूल परिवर्तन रूप सृष्टि प्रलय नहीं है। मध्यलोक में भी ढाई द्वीप के बाहर सृष्टि प्रलय नहीं है। ढाई द्वीप में भी तीस अकर्म भूमि ५६ अन्तर्द्वीप और पाँच महाविदेह में सृष्टि प्रलय नहीं होता। पाँच भरत और पाँच ऐरवत ये दस क्षेत्र बाकी रहे। दक्षिण की ओर भरत और उत्तर की ओर ऐरवत क्षेत्र=जम्बू द्वीप का एक भरत और एक ऐरवत, धातकी खण्ड के दो भरत और दो ऐरवत, तथा अर्ध-पुष्करद्वीप के दो भरत और दो ऐरवत, इस प्रकार ढाई द्वीप के पाँच भरत और पाँच ऐरवत हुए। इन दस क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का चक्र प्रवर्तमान है। इसके फलस्वरूप उत्सर्पिणी काल के आरम्भ में २१००० वर्ष पर्यन्त और अवसर्पिणी काल के अन्त में २१००० वर्ष पर्यन्त प्रलय काल चलता है, वह भी सम्पूर्ण प्रलय नहीं किन्तु खण्ड प्रलय है। ४२००० वर्ष पर्यन्त वृष्टि, फसल, राजनीति, धर्मनीति, ग्राम, नगर, पुर, पाटन, नदी, सरोवर, कोट, किले, पहाड आदि क्रमश निरन्तर क्षय को प्राप्त होते जायँगे और अवसर्पिणी काल के पाँचवे आरे के अन्तिम दिन

म सबका उच्छेद हो जायगा। अवसर्पिणी के छठे आरे म और उत्सर्पिणी के प्रथम आरे म इसी प्रकार की स्थिति रहगा। मनुष्य और तिर्यञ्च बीज मात्र रह जायँग। गगा और सिंधु नदी कायम रहेंगी। इनक किनारे किनारे बीजमात्र मनुष्य और तिर्यञ्च रहेंगे। कुत्ते के समान जीवन व्यतीत करेंगे। पापी और भारी कर्मा जीव ही इस आरे मे जन्म ग्रहण करेंगे। इस विषम काल में धर्मी जीव भरत और इरवत क्षेत्र म जन्म ग्रहण न करेंगे। उस समय उत्तम जीव अन्य क्षेत्रो में अवतार धारण करेंगे। उस समय मनुष्य का आयुष्यमात्र बीस वष का होगा। छ वष की स्त्री गर्भ धारण करेगी और काला टूनडा, रोगी गुस्सैल, बहु केश और नग्न वाली सतति को जन्म देगी। कला और हुनर का तो नामोनिशान भी न रह जायगा। मनुष्य क मस्तक की खोपरी म पानी लाकर पायेंग। यह सब काल अथवा युग आरे का प्रभाव है। अत पाँच कारणो म काल और स्वभाव भी कारण रूप स मान गय हैं। काल और क्षेत्रस्वभाव की कारणता का प्रधानपन ऐसे प्रसग में ही व्यक्त होता है। सूय की गति जिस प्रकार नियमित रूप म होती है और दक्षिणायन और उत्तरायण निश्चित समय पर ही होते हैं उसी प्रकार कालचक्र की गति में आरों का परिवर्तन भी नियमित रूप से ही होता है ऐसी जैनशास्त्र की मान्यता है। बीस कोडाकोडी सागरोपम परिमित एक काल चक्र होता है। उसमें दस कोडा कोडी सागरोपम उत्सर्पिणी काल के और दस कोडाकोडी सागरोपम अवसर्पिणी काल के होते हैं। एक एक काल में छ आरे होते हैं। उत्सर्पिणी के दूसरे आरे के प्रारम्भ म वृष्टि आदि का आरम्भ होता है और स्थिति सुधरने लगती है। इसको सृष्टि का आरम्भ काल कहें तो कुछ

अनुचित नहीं है। किन्तु ये सृष्टि और प्रलय शब्द जगत् की सृष्टि या प्रलय के अर्थ में नहीं ग्रहण किए जा सकते। क्योंकि प्रथम ही कहा जा चुका है कि यह प्रलय और सृष्टि केवल भरत क्षेत्र और ईरवत क्षेत्र पर्यन्त ही सीमित है। वस्तुतः प्रलय शब्द के बजाय अपकर्ष और सृष्टि शब्द के बजाय उत्कर्ष—उन्नति शब्द का प्रयोग किया जाय तो अर्थ अधिक उपयुक्त होता है। अस्तु।

उत्कर्ष-काल

उत्सर्पिणी का दूसरा आरा

उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा प्रारम्भ होते ही उत्कर्ष—घटते काल का प्रारम्भ होता है। प्रलयरूप प्रथम आरा पूर्ण हो जाने पर पुद्गल परिणति में अनन्त वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का सुधार होता है। काल स्वभाव से वृष्टि का आरम्भ होता है। तदुक्त जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र कालाधिकारे—

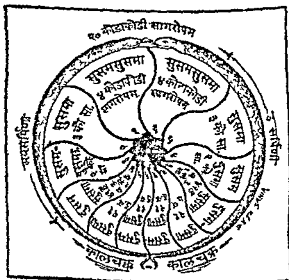
"तेणं कालेणं तेणं समयेणं पुक्खलसंवट्टए णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ। भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं, तयाणुरूव चणं विक्खंभवाहल्लेणं"

अर्थ—उस समय पुष्कल संवर्त्तक नाम का महामेघ प्रकट होगा। भरत क्षेत्र के बराबर लम्बा चौड़ा और विस्तृत होगा। गर्जना और बिजली के साथ युग-मूसल अथवा मुष्टि प्रमाण धारा में सात दिन और सात रात तक बरसेगा। उससे प्रलय काल की भूमि जो कि अंगारों के समान, राख के समान, तपी हुई आग के समान हो गई थी वह शान्त हो जायगी। उसके बाद इतने ही विस्तार में क्षीर-मेघ गर्जना और बिजली के साथ

सात दिन रात बरसेगा। उसमें भरत भूमि में शुभ वर्ण गंध रस और स्पर्श उत्पन्न होंगे। तत्पश्चात् सात दिन और सात रात्रि तक घृतमेघ बरसेगा। इससे जमीन में स्नेह चिकनापन उत्पन्न होगा। तत्पश्चात् उतने ही प्रमाण में अमृतमेघ बरसेगा जिससे तृण, वृक्ष, लता, औषधि आदि उत्पन्न होंगे। यह सब देखकर वैताढ्य के बिल में रहे हुए मनुष्य आदि बहुत खुश होंगे और एक दूसरे को कहेंगे कि अब तृण वनस्पति, औषधि आदि उत्पन्न हो गये हैं अतः अब किसी को भी अनिष्ट अशुभ मांसाहार नहीं करना चाहिए। अन्नाहार और फलाहार हम लोगों के लिए पर्याप्त है। जो मांसाहार करेगा उसकी छाया का भी स्पर्श हमें नहीं करना चाहिए। इस प्रकार खानपान की नीति के व्यवहार में सुधारा होगा। उत्सर्पिणी का दूसरा आरा इक्कीस हजार वर्ष में पूरा होगा। उसके बाद दूसमसुसमा नामक वर्तमान का तीसरा आरा लगेगा। तब पुद्गलपरिणति में बहुत सुधार उत्कर्ष हो जायगा। मनुष्य की अवगाहना ऊँचाई, संस्थान, आयुष्य आदि में भी वृद्धि होगी। इस युग में तीन वंश उत्पन्न होंगे। १ तीर्थंकर वंश २ चक्रवर्ती वंश ३ दसार-वासुदेव वंश। इस आरे में तेइस तीर्थंकर ११ चक्रवर्ती और नौ वासुदेव उत्पन्न होंगे। बयालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपमकाल तीसरे आरे का जब व्यतीत हो जायगा तब वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि होगी और सुसम दूसमा नामक चतुर्थ आरा दो कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति वाला चालू होगा। इसके प्रथम त्रिभाग में एक तीर्थंकर, और एक चक्रवर्ती होगा। पन्द्रह कुलकर होंगे। कुलकर के पश्चात् तीन नीतियाँ अवसर्पिणी के उल्टे क्रम से

चालू होगी। अर्थात् प्रथम त्रिभाग में धिक्कार नीति, द्वितीय त्रिभाग में मकार नीति और तृतीय त्रिभाग में हकार नीति चालू होगी। प्रथम त्रिभाग में राजनीति और धर्मनीति नष्ट हो जाने पर युगलधर्म की प्रवृत्ति चालू हो जायगी। कर्मभूमि में से अकर्मभूमि-भोगभूमि मनुष्य बनेंगे। उत्० का चतुर्थ पंचम और षष्ठ आरा प्रति समय सुख समृद्धि में, वर्ण गंध, रस और स्पर्श में उत्कर्षभाव को प्राप्त करता हुआ व्यतीत होगा। चतुर्थ आरा दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, पंचम आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण और छठा आरा चार कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण वर्षों में पूर्ण होगा। अर्थात् उत्सर्पिणी काल पूरा हो जायगा। तत्पश्चात् काल की गति अवसर्पिणी की तरफ बदल जायगी। अब प्रति समय वर्ण गंध रस और स्पर्श में हानि होने लगेगी। जितना उत्कर्ष काल है उतना ही अपकर्ष काल भी है। उत्सर्पिणी का छठा आरा और अवसर्पिणी का प्रथम आरा ये दोनों समान हैं। वृद्धि हानि भी समान है। इसी प्रकार उत्० का पांचवाँ और अव सर्पिणी का दूसरा उत्० का चौथा अव० का तीसरा, ये तीनों आरे जुगलियों के, एक तीर्थङ्कर, एक चक्रवर्ती के प्रादुर्भाव के हैं। उत्० का तीसरा और अव० का चौथा आरा, कर्मभूमि का है और दोनों में तेईस-तेईस तीर्थंकर, ग्यारह ग्यारह चक्रवर्ती तथा नौ नौ वासुदेव प्रकट होते हैं। उत्सर्पिणी का दूसरा आरा उत्कर्ष के आरंभ का और अवसर्पिणी का पाँचवाँ आरा अप कर्ष के अन्त का है। उत्स० के दूसरे आरे में वृद्धि का जो आरम्भ हुआ था उसका अव० के पांचवें आरे में अन्त हो गया। इसके बाद उत्० का प्रथम आरा और अवस० का

छठा आरा। ये दोनों आर प्रलयकाल के या अपकृष्टकाल के व्यतीत होते हैं। इस प्रकार बारह आरों का एक काल चक्र कहा जाता है। नीचे के चित्र से यह स्पष्टतया समझ में आ जायगा।



कालचक्र

समालोचना

शंका—क्षारमेघ, घृतमेघ, अमृतमेघ इन शब्दों से दूध की वर्षा घृत की वर्षा और अमृत की वर्षा बताई गई है तो गाय या भैंस के बिना दूध या घी कहां से पैदा हो गये जो सात

दिन और सात रात तक बरसते रहे ? क्या यह अतिशयोक्ति नहीं है ?

उत्तर—शंकाकार की शंका वाजिब है। जब तक असली अर्थ न समझ लिया जाय तब तक यह शंका हो सकती है। किन्तु दरअसल में ये शब्द आलंकारिक हैं। क्षीरमेघ यानी दूध की वर्षा नहीं किन्तु दूध के समान वृष्टि, घृतमेघ यानी घी के समान वृष्टि अमृतमेघ यानी अमृत के समान वृष्टि। वर्षा तो पानी की ही होती है किन्तु वह पानी जमीन को दूध जितना लाभ पहुँचाता है। बालक को दूध जैसा पोषण देता है वैसे ही पोषण शक्ति रहित जमीन को प्रथम वृष्टि दूध के बराबर लाभ पहुँचाता है। इसी प्रकार घृत और अमृतमेघ के विषय में भी समझना चाहिए।

शंका—काल स्वयं निर्जीव है, अजीव पदार्थ को ज्ञान नहीं होता तो पंचम आरा पूरा हुआ या छठा आरा पूरा हुआ अब अब पुद्गल की अशुभ परिणति में से शुभ परिणति करना, उत्कर्ष में अपकर्ष की तरफ अपनी गति बदलना आदि का ज्ञान किस होगा ? क्या इन पर कोई नियन्त्रण करने वाला है ? बिना नियन्ता के उत्कर्ष अपकर्ष का क्रम नियमित रूप से कैसे चल सकता है ?

उत्तर—प्रथम कहा जा चुका है कि द्रव्य मात्र का लक्षण उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप है। छओं द्रव्यों में स्वाभाविक पर्याय की प्रवृत्ति प्रति समय होती रहती है। काल भी एक द्रव्य है। काल का खास लक्षण वर्तना है। कर्मसहित जीव और पुद्गल स्कन्ध की वैभाविक पर्यायों के परिवर्तन में काल खास निमित्त कारण है। [illegible], वर्ष, युग, पल्योपम

सागरोपम, उत्सर्पिणी अवसर्पिणी ये सब काल के पर्याय हैं। इनका मूल कारण सूर्य है। सूर्य का एक नाम आदित्य है, जिसका अर्थ यह है कि व्यवहार काल का आदि कारण आदित्य सूर्य है। तदुक्तम्--

'से केणट्ठेण भंते एवं वुच्चइ सूरे आइच्चे सूरे? गोयमा! सूरादियाण समयाइ वा आवलियाइ वा जाव उस्सप्पिणीइ वा अवसप्पिणीइ वा से तेणट्ठेण जाव आइच्चे०"

(भग० १२-६। सू० ४५४)

जैन शास्त्रानुसार सूर्य ज्योतिषी देवताओं का इन्द्र है। उसका अधिक से अधिक आयुष्य एक पल्य और एक हजार वर्ष का है। इतने वर्षों बाद वर्तमान इन्द्र चवता है और नया इन्द्र उत्पन्न होता है। दुनिया जिसे सूर्य समझती है वह इन्द्र का विमान है। जैन दृष्टि से यह विमान स्फटिक पृथ्वी रूप है प्रकाश रश्मिमय है, शाश्वत है न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी इसका विनाश होगा। इसमें रहे हुए पृथिवी काय के जीव एक जाता है दूसरा आता है। इसके शरीर में भी चय उपचय होता रहता है किन्तु एकन्दर विमान ध्रुवरूप है। जिस पर हम लोग रहते हैं वह रत्न प्रभा नाम की पृथिवी है। इसकी पीठ पर असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। उनमें सबसे केन्द्र स्थानीय जम्बू द्वीप है। उस जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में ही हम लोग निवास करते हैं। जिस उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का जिक्र किया गया है उनका सम्बन्ध इस भरत क्षेत्र के साथ भी है। भरत क्षेत्र में दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग प्रभृति की प्रवृत्ति भी इस दिखते हुए सूर्यविमान के

वर्तन होता है यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं। उत्सर्पण या अवसर्पण ये दोनों शब्द भी गति सूचक हैं। उत्सर्पण यानी आगे जाना और अवसर्पण यानी पीछे हटना यह दोनों का अर्थ है। काल में परिस्पन्दात्मक गति नहीं है क्योंकि वह निष्क्रिय है। परिस्पन्दात्मक गति जीव और पुद्गल दोनों में है। इसस सूर्य की पृथ्वी और हमारी पृथ्वी क बीच में उत्सर्पण और अवसर्पण का बोध होता है। दक्षिणायन से उत्तरायण का समय जिस प्रकार छ मास का निश्चित है उसी प्रकार उत्सर्पण और अवसर्पण का समय दस दस कोडाकोडी सागरोपम का निश्चित और नियमित है। जितना उत्सर्पण है उतना ही अवसर्पण है। इसमें एक समय का भी अन्तर नहीं है। दक्षिणायन और उत्तरायण का जैसा अचूक नियम है वैसा ही अचूक नियम उत्सर्पण और अवसर्पण का है। उत्सर्पण के अखीरी पोइन्ट पर पहुँचे कि तुरन्त अवसर्पण पीछे हटना चालू हो गया। उसी प्रकार अवसर्पण के अखीरी पोइण्ट पर पहुँच कि तुरन्त उत्सर्पण का आरम्भ हो जाता है। आरों की सीमा भी दोनों की समान है। पचम आरे के अन्तिम पोइन्ट से छठे आरे क अन्तिम पोइन्ट तक पहुँचने में २१००० वर्ष लगते हैं। उतना ही समय उत्स० के प्रथम आरे के आरम्भ पोइन्ट से द्वितीय आरे क आरम्भ पोइन्ट तक लगता है। पचम आरे क अन्तिम पोइन्ट पर पृथिवी का जैसी स्थिति थी वैसी ही स्थिति उत् के दूसरे आरे के आरम्भ पोइण्ट पर होती है। यह उत्सर्पण अवसर्पण आकर्षण शक्ति से होता हो तो इसमें जैन शास्त्र का कोइ विरोध नहीं है। गति एक के बजाय दोनों म हो तो वह भी असम्भवित नहीं है। क्योंकि दोनों पुद्गल रूप हैं और पुद्गल सक्रिय पदार्थ होते हैं। 'देशान्तर प्राप्ति

हेतु क्रिया। क्रिया का लक्षण ही यह है कि जो एक देश से दूसरे देश की प्राप्ति कराये। देशान्तर की प्राप्ति ही गति कही जाती है। कुछ भी हो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दोनों शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुए हैं जो कुछ विशिष्टता के सूचक हैं। सूर्य शब्द पुंलिंग है और पृथ्वी शब्द स्त्रीलिंग है। उत्सर्पिणी शब्द को सूर्य का विशेषण बनाये उसकी अपेक्षा पृथ्वी का विशेषण बनाने पर अधिक संगति मालूम होती है क्योंकि विशेषण और विशेष्य का लिंग समान ही रहना चाहिए, यह शब्दानुशासन का नियम है। इस हिसाब से उत्सर्पण और अवसर्पण क्रिया की कर्त्री सूर्य नहीं किन्तु पृथ्वी सिद्ध होती है। काल में परिस्पन्दात्मक गति नहीं है यह प्रथम ही कहा जा चुका है। सच्ची बात तो केवली गम्य है। छद्मस्थ को तो इतना कहकर ही रुक जाना पड़ता है कि 'तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं'। इतना तो निश्चित है कि जो सत्य सिद्ध हो वही केवलियों का कथन है। यहाँ तात्पर्य इतना ही है कि जो उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल चक्र प्रवर्तमान है वह अनादिकाल से नियमपूर्वक चला आरहा है। इस नियन्त्रित करने के लिए किसी नियन्ता की आवश्यकता नहीं है। जैसे निमित्त मिलने पर बीज में अंकुर पैदा होता है यह स्वतः सिद्ध है वैसे ही सूर्य और पृथ्वी के दूर निकट सम्बन्ध से पदार्थों में प्रतिसमय हानिवृद्धि होती है और पुद्गलों का उत्कर्ष और अपकर्ष होने लगता है यह स्वतः सिद्ध है। इस क्रिया का परिमाण बताने वाला-परिच्छेदक काल है। उसे अतीन्द्रियज्ञानी जानते हैं। उन्होंने जो कहा है वह यथातथ्य है।

सुज्ञेषु किं बहुना ?

पुद्गल और जीव के योग से जगत्लीला

धर्मास्तिकायादि चार द्रव्य अरूपी, अमूर्त और निष्क्रिय होने से स्वाभाविक पर्याय वाले होने पर भी वैभाविक पर्याय के अभाव मे जगत् की विचित्रता में प्रेरक नहीं हो सकते—इन चारों द्रव्या से जगत् की विचित्रता सिद्ध नहीं हो सकती। किन्तु जगत की विचित्रता प्रत्यक्ष दिखाई देती है—मनुष्य, तिर्यञ्च, पशु, पक्षी, कीट, स्त्री, पुरुष, युवा, वृद्ध, राजा, रंक, गरीब, साहूकार, काला, गौरा, सौभागी, दुर्भागी, पहाड, नदी, समुद्र आदि कृत्रिम और अकृत्रिम पदार्थों के विचित्र विचित्र दृश्य और विचित्र आकार किससे बने होंगे ? यह प्रश्न स्वाभाविक उत्पन्न होता है। इसका उत्तर ईश्वरवादियों ने तो बहुत सरलता स दे दिया है कि यह सब ईश्वरीय लीला है। जैन शास्त्र ने इसका क्या उत्तर दिया है इसकी विचारणा यहाँ की जाती है।

जीव की सक्रियता

परिस्पन्दात्मक क्रिया दो पदार्थो में है जीव म और पुद्गल में। इस क्रिया से दोनों पदार्थ एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हैं और आते हैं। जीव का पुद्गल के साथ संयोग और वियोग होता है। पुद्गल का लक्षण ग्राह्यता और जीवका लक्षण ग्राहक है। ग्राह्यग्राहक का प्रयोगजन्य रूप स सम्बन्ध होता है। जीवका पुद्गल के साथ शरीर इन्द्रियादि रूप से तथा कर्म रूप से सम्बन्ध होता है। आठ प्रकार का लोक स्थिति में कहा जा चुका है कि "अजीवा जीव पइट्ठिया, जीवा कम्मपइट्ठिया" अर्थात् शरीरादि जीव के आधार स रहे हुए हैं और जीव कर्म प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार अजीव शरीरादि जीव संगृहीत हैं

और जीव कर्म संगृहीत हैं। शरीर का संग्रह करने वाला जीव है और जीव को समहित रखने वाला कर्म है। शरीर जीव और कर्म अन्योन्य क्षीरनीरवत् अथवा लोहपिण्ड और अग्नि के समान ओतप्रोत मिले हुए हैं। जीव ही पुद्गल स्कन्ध को आकर्षित करके अपनी क्रिया से कर्मरूप में परिणत करता है। पुद्गल कर्मरूप में सत्ता प्राप्त करके जीव को घेर लेते हैं और जीव की शक्तियों को दबा देते हैं। जब तक जीव में क्रिया है तब तक कर्मबन्ध है। कहा है कि—

मण्डित पुत्र के प्रश्नोत्तर

मंडि०—भंते ? जीव हमेशा "एयति, वेयति, चलति, फन्दइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरति, त त भाव परिणमइ" अर्थ — कांपता है ? चलता है ? परिस्पन्दात्मक क्रिया करता है ? एक दूसरे प्रदेश का संघटा करता है ? क्षोभ पाता है ? उदीरणा करता है ? उस-उस भाव रूप में परिणाम को प्राप्त करता है ?

श्री महा०—मंडियपुत्ता ? हाँ, जीव उस भावरूप परिणाम को प्राप्त करते हैं। जब तक जीव एजन चलन-स्पन्दन आदि क्रियाएं करता है और उस-उस भाव में परिणाम प्राप्त करता है तब तक संसार का अन्त करके मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि जब तक उन-उन क्रियाओं को करता है तब तक आरंभ समारंभ चालू रहता है। आरंभ समारंभ में वर्तमान जीव बहुत प्राणियों को दुखी करता है, शोक में डुबोता है, झूरना करवाता है, अश्रुपात करवाता है कुट्टना पिट्टना कराता है, परितापना पीडा उत्पन्न

करता है। अत हे मडियपुत्ता ? वह जीव तब तक ससार का अन्त नहीं कर सकता और मुक्ति भी नहीं प्राप्त कर सकता।

मडि०—भत ? जब यह जीव हलन चलन आदि क्रियामात्र को रोककर निष्क्रिय बन जाता है तब ससार का अन्त करके मुक्ति पद को प्राप्त कर लेता है ?

श्री महा०—मडियपुत्ता ? हाँ तब आरभ समारभ की निवृत्ति हो जाने से किसी भी जीव को असाता दुःख न देने से ससार का अंत करने की क्रिया करके मुक्तिपद को प्राप्त कर लेता है।

प्राणातियातादि निमित्त से लगने वाली क्रिया

गौतम—भंत ? प्राणातिपात-जीवहिंसा के निमित्त से जीव को क्रिया कर्म लगता है।

श्री महा०—गौतम ? हन्ता—हाँ लगता है।

गौतम—भत ? वह क्रिया जीव से स्पृष्ट लगती है या अस्पृष्ट—छुई हुई या बिना छुई हुई ?

श्री महा०—गौतम ? छुई हुई लगती है, बिना छुई हुई नहीं लगती।

गौतम—भंते ? वह क्रिया की हुई लगती है अथवा बिना की हुई ?

श्री महा०—गौतम ? जीव के द्वारा की हुई क्रिया लगती है, बिना की हुई नहीं लगती।

गौतम—भत ? वह क्रिया जीव की स्वय की हुई या दूसरे के द्वारा

पाप स्थानक की प्रवृत्ति यह अधर्म कर्मबन्ध है और पाप स्थानक की निवृत्ति यह धर्म-कर्मबन्ध की निवृत्ति या संवर धर्म है। अधर्म को रोकना और धर्म की वृद्धि करना यह जैन शास्त्र का आदर्श है। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति करने वाला अन्य कोई नहीं किन्तु जीव स्वयं ही है। कहा है कि—

> "अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूड सामली।
> अप्पा काम दुहाधेणू, अप्पा मे नंदणं वणं॥
> अप्पाकत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
> अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥
>
> (उत्त० २०। ३६ ३७)

नरक की वैतरणी नदी आत्मा है और नरक का शाल्मली वृक्ष भी आत्मा है। दूसरी तरफ कामदुघा गाय भी आत्मा है और मेरु पर्वत पर नंदन वन भी आत्मा ही है। दुःख और सुख का करने वाला जीव स्वयं है और भोगने वाला भी स्वयं ही है। धर्म कार्य में प्रवृत्त हुआ आत्मा स्वयं ही अपना मित्र है और पाप कार्य में प्रवृत्त हुआ आत्मा स्वयं अपना ही दुश्मन है।

शुभाशुभ कर्म

यद्यपि आत्मा स्वयं स्वभाव से आनन्दमय है, ज्ञानस्वरूप है, किन्तु प्रथम कहा जा चुका है कि कर्म सहित आत्मा में वैभाविक पर्याय उत्पन्न होते हैं। ज्ञान, आनन्द यह स्वाभाविक पर्याय हैं। सुख, दुःख, हर्ष, शोक, ये सब वैभाविक पर्याय हैं। स्वाभाविक पर्याय का कर्त्ता अकेला शुद्ध आत्मा है और वैभाविक

प्रश्नोत्तर

गौतम—"कम्ह भंते जीवागरुयत्त हव्वमागच्छन्ति ?" भंते ! जाव गुरुता कैसे प्राप्त करते हैं ?

श्री महा०—"गोयमा पाणाइवाएणा जाव मिच्छादंसण सल्लेण" एव खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्त हव्वमा गच्छति।" हे गौतम ! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह क्रोध, मान माया लोभ राग, द्वेष, क्लेश, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परनिन्दा, रतिअरति, माया सहित मृषा और मिथ्यादर्शन शल्य, इन अठारह पाप स्थानों क कारण से जीव भारीपन को प्राप्त करता है—भारी कर्मा होता है।

गौतम—"कहन भंते ! जीवा लहुयत्त हव्वमागच्छन्ति।" भंते किस कारण से जीव लघुपन को प्राप्त करता है।

श्री महा०—"गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणा जाव मिच्छादसण सल्लवरमणेणा एव खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्त हव्वमागच्छन्ति।" हे गौतम ! प्राणातिपात निवृत्ति, मृषावाद निवृत्ति यावत् मिथ्यादर्शन शल्य निवृत्ति अर्थात् अठारह पापस्थानों की निवृत्ति करने से जीवत घुभाव का प्राप्त करता है। पापकर्म न बधने म जीव हलुकर्मी बनता है। भारीकर्मा जीव नीचा गति में जाता है और लघुकर्मी जीव ऊर्ध्वगति में जाता है। (भग० १६ सू० ७२)

आत्मा दुःख का हेतु बनता है। कामदुघा गाय और नन्दनवन जिस प्रकार सुख के शान्ति के हेतु हैं उसी प्रकार शुभ कर्म युक्त आत्मा सुख शान्ति का हेतु बनता है। जो आत्मा शुभ कर्म युक्त होता है वह स्वयं अपना मित्र बनता है और जो अशुभ कर्म विशिष्ट होता है वह स्वयं ही अपना दुश्मन बनता है। मतलब यह है कि आत्मा और कर्म के सिवाय सुखदुःख देने में तीसरे किसी भी व्यक्ति का हाथ नहीं है। गीता में भी कहा है कि— 'आत्मैव आत्मना बन्धु रात्मैव रिपुरात्मन" आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। शंकराचार्य ने भी कहा है कि—

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपिदाता, परो ददातीति कुबुद्धिरषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥

अर्थ—सुख और दुःख का देने वाला अन्य कोई नहीं है। अपने सिवाय अन्य कोई सुख दुःख देता है ऐसा मानना कुबुद्धि अज्ञान है। मैं ही करता हूँ यह मानना मिथ्याभिमान है। वस्तुतः अपने पूर्व कर्मों से गूंथा हुआ जीव समूह सुखदुःख का कर्त्ताभोक्ता है।

शुभाशुभ कर्म के विषय में दृष्टान्तपूर्वक कालोदायी के प्रश्नोत्तर

कालोदायी—भंते ! जीवों के पाप कर्म किस प्रकार पाप का फल देते हैं ?

श्री महा०—कालोदायी ? कोई मनुष्य अठारह प्रकार के शाक युक्त मिष्ट भोजन विषमिश्रित खाने के लिए बैठता

पर्याय का कर्त्ता कर्म सहित अशुद्ध आत्मा है। दो द्रव्यों के योग से वैभाविक पर्याय उत्पन्न होते हैं। दो द्रव्यों में से एक द्रव्य तो निमित्त कारण और दूसरा द्रव्य उपादान कारण बनता है। दोनों में जो प्रधान होता है वह उपादान कारण होता है जैसे रागद्वेषादि प्रवृत्ति में आत्मा उपादान कारण है और पुद्गलकर्म निमित्तकारण है। शारीरिक प्रवृत्ति में उपादान कारण पुद्गल और निमित्त कारण आत्मा है। यहाँ आत्मा को कर्त्ता भोक्ता कहा गया है वह व्यवहार नय की दृष्टि से कहा गया है। निश्चय नय से विचार करें तो हर एक पदार्थ स्व स्वभाव का कर्त्ता है। सुख दुःख में चेतन अचेतन दोनों भाव हैं। शुभ कर्म और अशुभ कर्म तो अचेतन भाव पुद्गल मात्र हैं। शुभ कर्म पुद्गल का वेदन करना—फलानुभव करना या अशुभ कर्म का वेदन करना चेतन भाव है। निश्चय से चेतन भाव का उपादान कारण आत्मा और निमित्त कारण कर्म पुद्गल है और शुभकर्म अशुभ कर्मरूप अचेतन भाव का उपादान कारण पुद्गल और निमित्त कारण आत्मा है। स्वाभाविक पर्याय में केवल एक ही भाव होता है जब कि वैभाविक पर्याय में चेतन अचेतन दोनों भाव होते हैं। उनमें चेतन भाव का कर्त्ता आत्मा और अचेतन भाव का कर्त्ता पुद्गल है। यहाँ 'अप्पा' शब्द कर्म सहित आत्मा के लिए प्रयोग किया गया है। जब तक कर्म सहित है तब तक वह सुख दुःख-शुभ, अशुभ कर्म का कर्त्ता भी है और भोक्ता-अनुभव कर्त्ता भी है। आत्मा वैतरणी नदी आत्मा शाल्मलि वृक्ष, आत्मा कामदुघा और आत्मा नन्दनवन, यह आलंकारिक प्रयोग है। वैतरणी नदी और शाल्मलिवृक्ष जिस प्रकार दुःख के हेतु हैं उसी प्रकार अशुभ कर्म सहित

आत्मा दु ख का हेतु बनता है। कामदुघा गाय और नन्दनवन जिस प्रकार सुख के शान्ति के हेतु हैं उसी प्रकार शुभ कर्म युक्त आत्मा सुख शान्ति का हेतु बनता है। जो आत्मा शुभ कर्म युक्त होता है वह स्वय अपना मित्र बनता है और जो अशुभ कर्म विशिष्ट होता है वह स्वय ही अपना दुश्मन बनता है। मतलब यह है कि आत्मा और कर्म के सिवाय सुखदु ख देन में तीसरे किसी भी व्यक्ति का हाथ नहीं है। गीता में भी कहा है कि—"आत्मैव आत्मना बन्धु रात्मैव रिपुरात्मन " आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। शंकराचार्य ने भी कहा है कि—

'सुखस्य दु खस्य न कोऽपिदाता, परो ददातीति कुबुद्धिरपा।
अहं करोमीति वृथाभिमान स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोक ॥

अर्थ—सुख और दु ख का देने वाला अन्य कोई नहीं है। अपने सिवाय अन्य कोई सुख दु ख देता है ऐसा मानना कुबुद्धि अज्ञान है। मैं ही करता हूँ यह मानना मिथ्याभिमान है। वस्तुत अपने पूर्व कर्मों से गूथा हुआ जीव समूह सुखदुःख का कर्त्ताभोक्ता है।

शुभाशुभ कर्म के विषय में दृष्टान्तपूर्वक कालोदायी के प्रश्नोत्तर

कालोदायी—भते! जीवों के पाप कर्म किस प्रकार पाप का फल देते हैं?

श्री महा०—कालोदायी? कोई मनुष्य अठारह प्रकार के शाक युक्त मिष्ट भोजन विष [illegible] पूर्ण के लिए बैठता

पर्याय का कर्त्ता कर्म सहित अशुद्ध आत्मा है। दो द्रव्यों के योग से वैभाविक पर्याय उत्पन्न होते हैं। दो द्रव्यों में से एक द्रव्य तो निमित्त कारण और दूसरा द्रव्य उपादान कारण बनता है। दोनों में जो प्रधान होता है वह उपादान कारण होता है जैसे रागद्वेषादि प्रवृत्ति में आत्मा उपादान कारण है और पुद्‌गलकर्म निमित्तकारण हैं। शारीरिक प्रवृत्ति में उपादान कारण पुद्‌गल और निमित्त कारण आत्मा है। यहाँ आत्मा को कर्त्ता भोक्ता कहा गया है वह व्यवहार नय की दृष्टि से कहा गया है। निश्चय नय से विचार करें तो हर एक पदार्थ स्व स्वभाव का कर्त्ता है। सुख दुःख में चेतन अचेतन दोनों भाव हैं। शुभ कर्म और अशुभ कर्म तो अचेतन भाव पुद्‌गल भाव हैं। शुभ कर्म पुद्‌गल का वेदन करना—फलानुभव करना या अशुभ कर्म का वेदन करना चेतन भाव है। निश्चय से चेतन भाव का उपादान कारण आत्मा और निमित्त कारण कर्म पुद्‌गल है और शुभकर्म अशुभ कर्मरूप अचेतन भाव का उपादान कारण पुद्‌गल और निमित्त कारण आत्मा है। स्वाभाविक पर्याय में केवल एक ही भाव होता है जब कि वैभाविक पर्याय में चेतन अचेतन दोनों भाव होते हैं। उनमें चेतन भाव का कर्ता आत्मा और अचेतन भाव का कर्त्ता पुद्‌गल है। यहाँ 'अप्पा' शब्द कर्म सहित आत्मा के लिए प्रयोग किया गया है। जब तक कर्म सहित है तब तक वह सुख दुःख शुभ, अशुभ कर्म का कर्त्ता भी है और भोक्ता अनुभव कर्ता भी है। आत्मा वैतरणी नदी आत्मा शाल्मलि वृक्ष, आत्मा कामदुघा और आत्मा नंदनवन, यह आलंकारिक प्रयोग है। वैतरणी नदी और शाल्मलिवृक्ष ।९ दुःख के हेतु हैं उसी प्रकार अशुभ कर्म सहित

आत्मा दुःख का हेतु बनता है। कामदुघा गाय और नन्दनवन जिस प्रकार सुख के शान्ति के हेतु हैं उसी प्रकार शुभ कर्म युक्त आत्मा सुख शान्ति का हेतु बनता है। जो आत्मा शुभ कर्म युक्त होता है वह स्वयं अपना मित्र बनता है और जो अशुभ कर्म विशिष्ट होता है वह स्वयं ही अपना दुश्मन बनता है। मतलब यह है कि आत्मा और कर्म के सिवाय सुखदुःख देने में तीसरे किसी भी व्यक्ति का हाथ नहीं है। गीता में भी कहा है कि— आत्मैव आत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। शंकराचार्य ने भी कहा है कि—

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपिदाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमान, स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

अर्थ—सुख और दुःख का देने वाला अन्य कोई नहीं है। अपने सिवाय अन्य कोई सुख दुःख देता है ऐसा मानना कुबुद्धि अज्ञान है। मैं ही करता हूँ यह मानना मिथ्याभिमान है। वस्तुतः अपने पूर्व कर्मों से गुंथा हुआ जीव स्वयं सुखदुःख का कर्ताभोक्ता है।

शुभाशुभ कर्म के विषय में दृष्टान्तपूर्वक कालोदायी के प्रश्नोत्तर

कालोदायी—भंते! जीवों के पाप कर्म किस प्रकार पाप फल देते हैं?

श्री महा०—कालोदायी! कोई मनुष्य अठारह प्रकार के शाक युक्त मिष्ट भोजन विषमिश्रित खाने के लिए बैठता

हैं। उसको वह भोजन खाते समय बहुत सरस आह्लाद जनक लगता है किन्तु थोडी देर बाद जब वह परिणत होने लगता है तब दुष्टवर्ण, दुष्टगंध, दुष्ट रस और दुष्ट स्पर्श रूप में परिणत होकर नस नस को खींचता है और जीवको शरीर से अलग कर देता है। उसी प्रकार प्राणातिपात से मिथ्या दर्शन शल्य ये अठारह पाप कर्म बाँधते समय तो मीठे लगते हैं किन्तु उदय होने पर भोगते समय महा मुसीबत उठानी पड़ती है। नरक में उज्ज्वल पीडा भोगनी पडती है। पल्योपम और सागरोपम पर्यन्त अतुल असह्य कर्कश वेदना भोगनी पड़ती है।

कालोदायी—भंते! जीवों का शुभानुष्ठान शुभ फलदायी किस प्रकार होते हैं?

श्री महा०—कालोदायी! जिस प्रकार कोई मनुष्य अठारह प्रकार के शाक युक्त औषधि मिश्रित भोजन जीमने के लिए बैठा, वह भोजन जीमते समय अति स्वादिष्ट नहीं लगता है किन्तु धीरे धीरे उसका परिणाम सुवर्ण, सुगन्ध, सुरस और शुभ स्पर्शरूप होता है और शरीरके रोग को दूर करके आरोग्य उत्पन्न करता है तथा शरीर को तंदुरुस्त और दीर्घजीवी बनाता है। उसी प्रकार शुभानुष्ठान करते समय यद्यपि थोडी तकलीफ उठानी पड़ती है—तप और त्याग करना पडता है, बाईस परिषह जीतने पडते हैं, उघाडे पैर उघाडे विहार कर के परिश्रम सेवन करना पडता है,

लोच करना पडता है किन्तु धीरे धीरे आत्म शुद्धि होने पर परिणामत उच्चगति प्राप्त करके थोडे समय में जन्म जरा और मृत्यु के सर्व दुखों का अन्त आ जाता है।

(भग० ७ १० । मू० ३०६)

सातावेदनीय और असातावेदनीय कर्म प्रश्नोत्तर

गौतम—भंते ! जीव सातावेदनीय कर्म किस प्रकार बाधता है ?

श्री महा०—गौतम ! प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व पर अनुकम्पा रखने से, उन्हें दुख न देने से शोक न कराने से, भूरना न कराने से, उनके आँसू पाछने से, कुट्टना पिट्टना न कराने से, और परितापनाक्लेश न उत्पन्न करने से जीव सातावेदनीय कर्म बाँधते हैं जिसके फलस्वरूप आनेवाले भव में आरोग्य, तन्दुरस्ता और स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं।

गौतम—भंते ! जीव असाता वेदनीय कर्म किससे बाधते हैं ?

श्री महा०—गौतम ! दूसरे प्राणियों का दुख देने से, शोक ग्रस्त करने से, भूरणा करान से, अश्रुपात कराने से, कुट्टना पिट्टना कराने से, परितापना-खेद उत्पन्न कराने से, जीव असातावेदनीय कर्म बाँधते हैं और उसके फलस्वरूप आगामी भव में रोग, ग्लानि आधि व्याधि, उद्वेग, दैन्य आदि दुख प्राप्त करते हैं।

(भग० ७-६ । सू० २८६)

बच्चे पैदा करने । हमारे जर्मन मित्र ने उनसे पूछा—जब तुम्हारे पास खेतों की इतनी कठिनाइ है, और जीवन निर्वाह बहुत ही मुश्किल है, तब फिर तुम क्यों इतने बच्चे पैदा करते हो? उत्तर मिला—जो बच्चों को देता है (अर्थात् खुदा) क्या वह उनको नहीं सभालेगा? हमारे मित्र ने कहा—हाँ, वह न सभालेगा तो हैजा, चेचक, भूख, अकाल तो जरूर सभाल लेंगे। ल्हासा में एक मुसलमान सज्जन ने अपना विश्वास इस प्रकार प्रकट किया—हमारे धर्म के अनुसार, माँ, बाप को काफी सन्तानें पैदा हो जायें तो उनके लिए हज करना आवश्यक नहीं रह जाता है। हिन्दू भी तो 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' मानते हैं।

इस प्रकार आप जितना ही सोचेंगे, मालूम होगा, ईश्वर का खयाल हमारी सभी प्रगतियों का बाधक है। मानसिक दासता की वह सबसे बडी बेडी है, शोषकों का जबर्दस्त अस्त्र है। क्योंकि उसके सहारे वह कहते हैं—'धनी गरीब उसी के बनाये हुए हैं,' 'वह जा करता है सभी ठीक करता है' 'उसकी मर्जी पर अपने को छाड दो।' 'क्या जानें इन चद वर्षों क कष्ट के लिए मरने के बाद उसने क्या क्या आनन्द आपक लिए तैयार कर रखे हैं?' 'वह मत्र चालक की भाँति सभी प्राणियों को चला रहा ह।' "मनुष्य उसके हाथ की कठपुतली है।" यह ख्याल क्या हमें अपने भविष्य का मालिक बनने देंग?

एक ईश्वर मानने वाले धर्मों की अपेक्षा अनेक देवता मानने वाले धर्म हजार गुना उदार रहे हैं। उनके ईश्वरों की सख्या अपरिमित होने से वहाँ औरों के देवताओं का भी समावेश आसानी से हो सकता था। किंतु एक ईश्वर वादी वैसा करके अपने अकेले ईश्वर की हस्ती को खतरे में नहीं डाल सकते थे। आप दुनियाँ के एक ईश्वरवादी धर्मों के पिछले दो हजार वर्षों के इतिहास को उठाकर देखिये, मालूम होगा कि वे सभ्यता, कला, विद्या, विचार स्वातन्त्र्य और स्वय मनुष्य के प्राणों के भी सब से बडे शत्रु थे। उन्होंने हजारों बडे-बडे पुस्तकालय और करोडों पुस्तकें आग में डाल दीं। सौंदर्य और कोमल भावों के साकार रूप, कितने ही कलाकारों की सुन्दर मूर्तियों, चित्रों और इमारतों को नष्ट कर दिया। हजारों विद्या व्यसनियों और विद्वानों के जीवन को समाप्त कर, स्वतत्र विचारों का गला घोंटा। मनुष्य की मानसिक प्रगति को कम से कम एक हजार वर्ष के लिए उन्होंने रोक ही नहीं रखा, बल्कि पहिले की प्राप्त सफलताओं को बिलकुल नष्ट कर डाला और करोडों निर्दोष नर नारियों और बच्चों की हत्या ? यह तो उनके अपने धर्म प्रचार का प्रधान साधन थी। वह जिस देश में गये, आग और तलवार लेकर गये। पहले तो इनके फन्दे मे फँसी जातियाँ अफीम के नशे में थीं, उन्हें इसका ख्याल ही न हो रहा था, कि उनकी चिर-सचित जातीय निधि नष्ट की जा रही है। पीछे जब नशा टूटा, तो देखा कि पूर्वजों की सभी उत्तम कृतियाँ नष्ट कर दी गईं। जर्मन जाति म एक ईश्वरवाद तलवार के बल ही फैलाया गया। उस समय पुराने धर्म के साथ साथ, जर्मन जाति का व्यक्तित्व भी मिटा देना आवश्यक समझा गया। उनकी लिपि को धता बताया गया। उनके

किस में रोक सकता है? (तदुक्त स्वभावोऽतर्क गोचर) इस प्रकार कार्यत्व हेतुत्व को सर्वत विचार करने पर भी बुद्धिमान् ईश्वर को कर्त्ता नहीं मान सकता। इसी प्रकार सन्निवेश विशेष अचेतनोपादानत्व अभूत भावित्व, इत्यादिक अन्य भी हेतु आक्षेप समाधान समान होने से ईश्वर को कर्त्ता सिद्ध नहीं कर सकते हैं।

(सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा पृष्ठ ७-२६)

ईश्वर के कर्तृत्व पर स्याद्वाद वारिधि प० गोपालदासजी ने अपनी पुस्तक सार्व धर्म के पृष्ठ २८ पर भी बतलाया है कि—

संसार में जितने अनर्थ होते हैं, उन सब का विधाता ईश्वर ठहरेगा। परन्तु उन सब कर्मों का फल बेचारे निर्दोष जीवों को भोगना पड़ेगा, देखो! कैसा अच्छा न्याय है! अपराधी ईश्वर और दण्ड भोगे जीव! इस प्रकार प्रमाण की कसौटी पर कसने से ऐसे कल्पित ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती।

पृ० २६ पर—'जो जो मैत्र के पुत्र हैं वे वे श्याम हैं और जो जो श्याम नहीं हैं वे वे मैत्र के पुत्र भी नहीं हैं। गर्भस्थ का पुत्र गोरा हो जाय तो बाधक कौन? इसीलिये विपक्ष में बाधक के अभाव से मैत्र पुत्रत्व और श्यामत्व में व्याप्ति नहीं हो सकती। इस ही प्रकार कार्य और चेतन कर्ता में भी विपक्ष में बाधक के अभाव से व्याप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार कार्यत्व हेतु ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने में असमर्थ है।

बाबू सूरजभानु जी जैन ने भी अपनी पुस्तक 'जगदुत्पत्ति विचार के' के पृष्ठ ४० ४१ में ईश्वर के कर्तृत्व पर लिखा है—

जारी सभी जगत में

वस्तुओं का बनाने व

साहित्य को खोज-खोज कर जलाया गया। उनके मन्दिरों को ही बर्बाद नहीं किया गया, बल्कि, यह सोच कर कि कहीं यह लोग अपने ओक वृक्षों की पूजा कर के भ्रष्ट न हो जाय, लाखों विशाल ओक वृक्ष काट डाले गये। एक ईश्वर वादियों के ऐसे कारनामे एशिया के ही नहीं, अमेरिका की माया और अजेतक जैसी सभ्यता के संहार के कारण हुये। अपने नाम पर सैकड़ों वर्षों तक इस प्रकार के भयंकर अत्याचार करते, खून की नदी बहाते देख भी यदि ईश्वर रोकने के लिये नहीं आया तो इससे बढ़कर उसके न होने का और दूसरा प्रमाण क्या चाहिये ?

(साम्यवाद ही क्यों ? पृ० २८-२९)

ईश्वर के सृष्टि कर्तृत्व के विषय में स्याद्वाद वारिधि प० गोपालदास जी बरैया का अभिप्राय

रचना नहीं हो सकती है, उसी प्रकार से अकृतार्थ ईश्वर से भी नहीं हो सकती है।

> "अमूर्तो निष्क्रियो व्यापी कथमेष जगत्सृजेत्।
> न सिसृक्षापि तस्यास्ति, विक्रिया रहितात्मन ॥"

यदि ईश्वर अमूर्त, निष्क्रिय और सर्वव्यापक है, ऐसा तुम मानते हो, तो वह इस जगत् को कैसे रच सकता है ? क्योंकि जो अमूर्त है, उससे मूर्तिक संसार की रचना नहीं हो सकती है, जो क्रिया रहित है, सृष्टि रचना रूप क्रिया नहीं कर सकता है, और जो सब में व्यापक है, वह जुदा हुए विना—अव्यापक हुए बिना सृष्टि नहीं बना सकता है।

इसके सिवा ईश्वर को तुम विकार रहित कहते हो। और सृष्टि बनाने की इच्छा होना एक प्रकार का विकार है—विभाव परिणति है, तो बतलाओ उस निर्विकार परमात्मा के जगत् बनाने की विकार चेष्टा होना कैसे सम्भव हो सकती है ?

> "कर्मापेक्ष शरीरादि, देहिनां घटयेद्यदि।
> नन्वेवमीश्वरो न स्यात्, पारतन्त्र्यात् कुविन्दवत् ॥"

यदि सृष्टि कर्त्ता जीवों के किये हुए पूर्व कर्मों के अनुसार उनके शरीरादि बनाता है, तो कर्मों की परतन्त्रता के कारण वह ईश्वर नहीं हो सकता है जैसे कि जुलाहा। अभिप्राय यह है कि जो स्वतन्त्र है, समर्थ है, उसी के लिये ईश्वर सञ्ज्ञा ठीक हो सकती है। परतन्त्र के लिये नहीं हो सकती। जुलाहा यद्यपि कपड़े बनाता है, परन्तु परतन्त्र है, और असमर्थ है, इसलिये ईश्वर नहीं कह सकते।

एक ओर निरीश्वर बनता है, दूसरी ओर विधर्मियों को और कभी कभी स्वधर्मियों को भी मार डालने तक का उपदेश देता है। एक ही अपराध के लिये अलग अलग लोगों को अलग-अलग दण्ड देता है, और एक ही सत्कर्म के पुरस्कार भी अलग-अलग देता है। अपने भक्तों के लिये कानून की पोथी को बैठन में बन्द करके रख देता है।

प्राय सभी सम्प्रदायों का यह विश्वास है कि उनको सीधे ईश्वर से आदेश मिला है, पर हिन्दू का ईश्वर एक बात कहता है। मुसलमान का दूसरी और ईसाई का तीसरी। इटली की सेना अबीसीनिया पर आक्रमण करती है, और उभय पक्ष ईश्वर ईसा और ईसा की माता से विजय की प्रार्थना करते हैं।

(समाजवाद पृष्ठ १४-१८, १३)

ईश्वर के विषय में महात्मा गांधी का अभिप्राय—

ईश्वर है भी और नहीं भी है। मूल अर्थ से ईश्वर नहीं है। मोक्ष के प्रति पहुँची हुई आत्मा ही ईश्वर है। इसलिये उसको सम्पूर्ण ज्ञान है। भक्ति का सच्चा अर्थ आत्मा का शोध ही है। आत्मा को जब अपनी पहिचान होती है तब भक्ति नहीं रहती, फिर वहाँ ज्ञान प्रकट होता है।

नरसी मेहता इत्यादि ने ऐसी ही आत्मा की भक्ति की है। कृष्ण, राम इत्यादिक अवतार थे, परन्तु हम भी अधिक पुण्य से वैसे हो सकते हैं। जो आत्मा मोक्ष के प्रति पहुँचने के लगभग आ जाती है वही अवतार है। इनके विषय में उसी जन्म में सम्पूर्णता मानने की आवश्यकता नहीं।

(महात्मा गांधी के निजी पत्र पृष्ठ ४७)

भगवद्गीता का अवतरण

न कर्तृत्व न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।

न कर्म फल सयोग, स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ गीता ५-१४

जगत् का प्रभु न कर्तापन रचता है, न कर्म रचता है, न कर्म और फल का मेल साधता है । प्रकृति ही सब करती है ।

टिप्पणी—ईश्वर कर्त्ता नहीं है, कर्म का नियम अटल और अनिवार्य है । और जो जैसा करता है, उसको वैसा भरना ही पडता है ।

नादत्ते कस्यचित्पाप, न चैव सुकृत विभु ।

अज्ञानेनावृत्त ज्ञान, तेन मुह्यन्ति जन्तव ॥ गीता ५-१५

ईश्वर किसी के पाप या पुण्य को अपने ऊपर नहीं ओढता है । अज्ञान द्वारा ज्ञान ढक जाने से लोग मोह में फँस जाते हैं।

टिप्पणी—अज्ञान से "मैं करता हूँ" इस वृत्ति से मनुष्य कम बन्धन बाधता है, फिर भी वह भले बुरे कर्म का आरोप ईश्वर पर करता है, यह मोह जाल है ।

(भगवद्गीता का अनुवाद-कर्म संन्यास योग)

श्रीमद् परमहस सोऽह स्वामी का अभिप्राय—

जो वेद को ब्रह्म से उत्पन्न मानता है, उसके लिये बाइबिल को ईश्वर के द्वारा निर्माण किया हुआ न मानना, अथवा जो लोग बाईबिल को ईश्वर की बनाइ हुइ मानते हैं, उनके लिये वेद का ब्रह्म से उत्पन्न न होना मानना युक्ति सगत नहीं है। 'जगत् के कर्त्ता ने विविध देशों में विविध नामों से प्रकट होकर विभिन्न देशों में देश, काल और पात्र के भेद से अलग अलग धर्म का उपदेश किया है', इस पर जो लोग विश्वास करते [illegible] क्या वे विविध देशों के सृष्टि त[illegible] में जो भेद गया है उसका निर्णय कर सकते हैं [illegible]

(भगवद्गीता की समालोचना-अनु॰ [illegible])

सृष्टि सम्बन्ध में पाश्चात्य दार्शनिक क्या कहते हैं?

कान्ट का मत

जो ससार देश और काल से परिच्छिन्न नहीं है, तो वह अनन्त अशों के मिलाप से बना है। इन अनन्त अशों को जोड़ने में अनन्त काल लगा है। वह काल तो व्यतीत हो चुका है, बीता हुआ काल अनन्त किस प्रकार से हो सकता है? अत ससार को देश काल म परिच्छिन्न मानना चाहिये। लेकिन इसमें बड़ी कठिनाई है, क्योंकि ससार का अर्थ है प्रत्यक्ष योग्य विषयों का समूह। तो जो परिच्छिन्न है, तथा जो परिच्छेदक देश है, वह इससे बाहर होना चाहिये। वह बाहिर का स्थान प्रत्यक्ष योग्य नहीं रहता, अर्थात् वह अमूर्त ठहरेगा, और यदि ऐसा हुआ तो मूर्त तथा अमूर्त का सम्बन्ध स्थापित होगा, जोकि असम्भव है। इस विरोध से ससार को न तो परिच्छिन्न ही कहा जायगा, तथा अपरिच्छिन्न भी नहीं कह सकेंगे।

परमाणुओं से बना हुआ ससार

इसी प्रकार यदि ससार परमाणुओं स बना हुआ माना जाता है, तो परमाणु मूर्त हैं अथवा अमूर्त? यदि मूर्त होवें तो उनका विभाग हो सकता है। यदि अमूर्त हैं तो उनमें से मूर्त का

आविर्भाव किस प्रकार से हो सकता है। क्योंकि असत् का सत् नहीं हो सकता है। अतः परमाणु न तो मूर्त है और न अमूर्त ही। अर्थात् परमाणु कोई चीज नहीं है।

ससार मिश्र वस्तुओं से बना हुआ है ?

यदि ससार मिश्र वस्तुओं से बना हुआ माना जाता है तो अवयवियों से बना हुआ मानना पड़े। अवयवी को अवयव अवश्य ही होने चाहिये। अवयव ही परमाणु रूप सिद्ध हुए। अब बड़ी आपत्ति तो यह आ पड़ी कि परमाणु है कि नहीं ?

कार्य कारण भाव—

इसी प्रकार से हर एक कार्य का नियम पूर्व कोई कारण है अथवा कारण बिना भी कोई कार्य है ? यदि समस्त ससार कारण से नियत है तो कारणों की अनवस्था है क्योंकि कोई आदि कारण स्वतन्त्र नहीं, यदि आदि कारण कोई माना जावे तो वह आदि कारण क्या अमुक काल तक निष्क्रिय रह कर के फिर किसी कार्य को उत्पन्न करता है ? ऐसा किस लिये ? क्या उसमें कार्योत्पादन शक्ति पीछे से आई ? यदि से आई तो कहाँ से आई ? इस कठिनाई से न तो आदि कारण मानने से ससार बनता है और न मानने से ससार बन सकता है।

क्या स्वतन्त्र ईश्वर ससार का कारण है ?

यदि स्वतन्त्र ईश्वर ससार का कारण माना जावे तो एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह ईश्वर ससार के अन्दर है या बाहिर ? यदि अन्दर है तो वह प्रारम्भ मे ही है या ससार स्वरूप ही है ? यदि आरम्भ में होवे तो आरम्भ का एक ही क्षण है, तो इसके पूर्व कोई

तो आरम्भ को आरम्भ ही नहीं कहा जा सकता है। यदि आरम्भ के पूर्व कोई चण न था, तो यह बात असम्भव है। क्योंकि काल अनादि अनन्त है। यदि सृष्टा को सृष्टि के बाहिर माना जावे तो देश, काल भी सृष्टि के अन्तगत हैं, अत सृष्टा देश, काल से अतीत हुआ। देश कालातीत का देशकाल के साथ सम्बन्ध होना अशक्य है। न उससे देशकालावच्छिन्न सृष्टि बन सकती है।

उपसंहार

इस प्रकार काण्ट के मन में अनेक विरोध उपस्थित होने से सृष्टिवाद मानना उचित नहीं अर्थात् काल के अनादि, अनन्त की तरह संसार का भी अनादि अनन्त मानना ही उचित है।

शु० द० हि० पृ० ११८ साराश

पीटर दी लोम्बार्ड के अभिप्राय—

ईश्वर सृष्टि में स्वतन्त्र है कि परतन्त्र ? यदि स्वतन्त्र होवे तो सृष्टि का ज्ञान उसको पहिले नहा हो सकता। क्योंकि इस बात का निश्चय ही नहीं कि सृष्टि है कि नहीं ? यदि प्रथम ज्ञान है तो उस ज्ञान के अनुसार ही सृष्टि भी होगी। इसमें ईश्वर का स्वातन्त्र्य न रहा।

सृष्टि के पूर्व ईश्वर कहाँ रहा होगा ? क्योंकि सृष्टि के पूर्व कोई स्थान तो है नहीं।

ईश्वर की वर्तमान सृष्टि से दूसरी कोई उत्तम सृष्टि बन सकती है कि नहीं ? यदि नहीं बन सकती है तो ईश्वर सब शक्ति सम्पन्न नहीं रहा। यदि दूसरी उत्तम सृष्टि बन सकती है तो वर्तमान सृष्टि को ही वैसी उत्तम क्यों नहीं बनाया ?

शु० द० हि० पृ० ६६ साराश

[illegible]

[illegible] प्रकृति के [illegible] को [illegible] है [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] नहीं होते

प्रकृति को उपादान तथा ईश्वर को निमित्त कारण मानें तो [illegible] का [illegible] होगा।

ईश्वर की अल्पशक्तिमत्ता के कारण

(१) ईश्वर साधन की सिद्धि के हेतु साधनों का प्रयोग करता है, अत ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं सिद्ध हो सकता।

(२) ईश्वर साधनों का बुद्धि तथा विचार पूर्वक प्रयोग करता है अत सब शक्तिशाली नहीं है।

(३) ईश्वर साधनों को स्वय बनाता है, तथा स्वेच्छानुसार [illegible] तथा [illegible] है, उसके निर्वाचन में सुविधा [illegible] [illegible] नहीं है।

(४) साधनों का प्रयोग वही करता है, जिसको कोई मुसीबत अनुभव होती हो, ईश्वर को अवश्य ही कोई मुसीबत प्रतीत होगी।

ईश्वर ने शून्य में से सृष्टि का निर्माण किया या स्वयं में से ? यदि शून्य में से प्रकृति बनाई और प्रकृति में से संसार बनाया तो शून्य में से प्रकृति के बजाय संसार ही क्यों नहीं बनाया ? साइन्स का तो यह सिद्धान्त है कि शून्य में से कोई वस्तु उत्पन्न हो ही नहीं सकती। यदि कहो कि शून्य में से नहीं लेकिन अपने में से ही प्रकृति बनाई जिस प्रकार से मकड़ी

ईश्वर के विषय में जैन कवि न्यामतसिंह का अभिप्राय

तर्ज—हुआ सुत राम दशरथ के, बहादुर हो तो ऐसा हो।
न रागी हो न द्वेषी हो, सदानन्द वीतरागी हो।
सब विषयों का त्यागी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥टेक॥
न खुद घट घट में जाता हो, मगर घट-घट का ज्ञाता हो।
वह सत उपदेश दाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥१॥
न करता हो न हरता हो, नहीं अवतार धरता हो।
मारता हो न मरता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥२॥
ज्ञान के नूर से पुरनूर[1], हो जिसका नहीं सानी।
सरासर नूर नूरानी[2], जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥३॥
न क्रोधी हो न कामी हो, न दुश्मन हो न हामी हो।
वह सारे जग का स्वामी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥४॥
वह जाते पाक हो दुनिया, के झगड़ों से मुबर्रा हो।
आलिमुलगैब[3] होवे, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥५॥
दयामय हो शान्त रस हो, परम वैराग्य मुद्रा हो।
न जाबिर हो न काहिर हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥६॥
निरंजन निर्विकारी हो, निजानन्द रस विहारी हो।
सदा कल्याण कारी हो जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥७॥
न जग जंजाल रचता हो करम फल का न दाता हो।
वह सब बातों का ज्ञाता हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो॥८॥
वह सच्चिदानन्द रूपी हो, ज्ञान मय शिव स्वरूपी हो।
आप कल्याण रूपी हो, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥९॥
जिस ईश्वर के ध्यान सेही, बने ईश्वर कहे 'न्यामत'।
वही ईश्वर हमारा है, जो ईश्वर हो तो ऐसा हो ॥१०॥

नोट—१ प्रकाश से पूर्ण, २ चांदनी, ३ सर्वज्ञ

अपने में से ही जाला बनाती है, तो यह कथन भी ठीक नहीं। मकड़ी में दो वस्तु हैं। चेतन तथा प्रकृति शरीर। जीव प्रकार से शरीर में स्थित परमाणु समूह में से जल बनाने असंगति नहीं है लेकिन ईश्वर परमाणु बिना अपने में से जगत अथवा प्रकृति बनाता है, यह असगत है। अप्राकृतिक वस्तु में से प्राकृतिक वस्तु बनावे यह सम्भवित नहीं है।

प्लेटो का अभिप्राय अनन्त काल से अपरिवर्तनीय परिवर्तनशील पदार्थ, के साथ सम्मिलित आया हुआ है, इससे जगत अनादि अनन्त वहि प्रकाश मात्र है।

न्यू प्लेटोनिस्ट का अभिप्राय ईश्वर तथा जगत दोनों समान रूप से अनादि अनन्त हैं।

ग्रीस का प्राचीन मत (ऐरिस्टोटिल) जगत् का रूप और स्थिति काल अनादि अनन्त है।

टाढ ने तडको पड़े मानव ने, मुजने वस्त्र धिरावे ।
वसवाने मुज माटे मोटा, मन्दिर माल चणावे ॥ मा० २ ॥

भूख तरस लागे नहीं तो पण, मोटा थाल धरावे ।
मारूँ नाम लई ने दुष्टो, माल मलीदा उडावे ॥ मा० ३॥

उंघ कदी आवे नहीं तो पण, सुन्दर सेज बिछावे ।
काम विकार नहीं तोए पण, प्रेम धरी परणावे ॥ मा० ४ ॥

अशुद्ध थयेल मने समजी ने, नित नित स्नान करावे ।
शुद्ध स्वरूपी हूँ छु तथापि, आम अविद्या जणावे ॥ मा० ५ ॥

निधनीयानी पेठे मुजने, घर घर भीख मगावे ।
नसाडिया ना माल खजाना, मारा नामे चडावे ॥ मा० ६ ॥

निर्विकारी निर्लेपी ने, विकारी सरागी ठरावे ।
हक उतारी नाखी मुजने, पामर आम पुकारे ॥ मा० ७ ॥

न० २

गजल

जगत कर्ता नहीं इश्वर, अगर होवे तो मैं जानू ।
सरे मुँह भी फरक इसमें, अगर होवे तो मैं जानू ॥१॥
जरा इन्साफ करक यार, मेरी बात सुन लीजे ।
जो कर्ता का तुम्हे विश्वास, अगर होवे तो में जानू ॥२॥
जो इश्वर सर्व व्यापी है, तो हरकत कर नहीं सक्ता ।
कभी आकाश मुतहररिक, अगर होवे तो मैं जानू ॥३॥
जगत साकार है इश्वर, निराकार आप माने हैं ।
कोई निराकार से साकार, अगर होवे तो मैं जानू ॥४॥
वह इश्वर सच्चिदानन्द है, सदा कल्याण कारी है ।
न कर्ता है न हर्ता है, अगर होवे तो में जानू ॥५॥
बिना समझे जगत्कर्ता का, लोगों का हो रहा धोखा ।
न्याय पढ देखिये धोखा, न दूर होवे तो मैं जानू ॥६॥
कहे न्यामत न्याय परमाण, से तहकीक कर लाजे ।
जगत् कर्ता में कोइ प्रमाण, अगर होवे तो में जानूँ ॥७॥

ईश्वर की अवहेलना

तर्ज—नाथ कैसे गज को बन्ध छुडायो

मानव सुजन मानव सरिखो बनाव, मारी सघली प्रभुता नमावे मा० टेक ॥

नानकडु बालक समजी ने, पारणीया मां झुलावे ।
जन्म जराने मरण तज्या छता, फरी फरी जन्म धरावे ॥मा० १॥

दाढ ने तडको पडे मानव ने, मुजने वस्त्र धिरावे।
वमवाने मुज माटे मोटा, मन्दिर माल चणावे ॥ मा० २ ॥
भूख तरस लागे नहीं तो पण, मोटा थाल धरावे।
मारू नाम लई ने दुष्टो, माल मलीदा उडाव ॥ मा० ३॥
उंघ कदी आवे नहीं तो पण, सुन्दर सेज बिछावे।
काम विकार नहीं तोए पण, प्रेम धरी परणावे ॥ मा० ४ ॥
अशुद्ध थयेल मने समजी ने, नित नित स्नान करावे।
शुद्ध स्वरूपी हूँ छु तथापि, आम अविद्या जणावे ॥ मा० ५ ॥
भिखनीयानी पेठे मुजने, घर घर भीख मगावे।
भेळोदिया ना माल खवाना, मारा नामे चडावे ॥ मा० ६ ॥
निर्विकारी निर्लेपी ने, विकारी सरागी ठरावे।
हक उतारो नाखी मुजने, पामर आम पुकारे ॥ मा० ७ ॥

सृष्टिवादान्तर्गत प्रमाण-ग्रन्थों की संकेत सूची

	संकेत	ग्रंथ का नाम	संस्करण	प्रकाशन संवत् आदि	अंक सूचक अध्याय आदि
१	अथ० सं० अथर्व सं०	अथर्व वेद संहिता	पं० ऋषिकुमार रामचन्द्र शर्म्मा सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद	संवत् १९८७	काण्ड, अनुवाक अध्याय सूक्त ऋचा
२	अम०	अमरकोष	मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सन्स	सन् १९३१	काण्ड, वर्ग, श्लोक
३	आ० पु०	आत्म पुराण	गोपालनारायण कम्पनी, बम्बई	शके १८०७	अध्याय, श्लोक
४	उत्त०	उत्तराध्ययन सूत्र	सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद हैदराबाद	वीर संवत् २४४६	अध्ययन, गाथा
५	उपा०	उपासक दशांग सूत्र	,, ,, ,,	,,	अध्ययन
६	उव०	उववाई सूत्र	,, ,, ,,	,,	पृष्ठ
७	ऋग०	ऋग्वेद सायण भाष्य सहित		सन् १८६७	मण्डल, सूक्त, मन्त्र
८	ऐत० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम, पूना	सन् १९३१	पंचिका, अध्याय, खण्ड

९	कठोप०	कठोपनिषद्	निर्णयसागर प्रेस बम्बई	संवत् १९२३	अध्याय वल्ली मन्त्र
१०	का० पु०	कालिका पुराण	खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	संवत् १९४८	अध्याय, श्लोक
११	कूर्म० पु०	कूर्म पुराण	,, ,,	संवत् १९६२	,, ,,
१२	कृ० यजु० तै० ब्रा०	कृष्णयजुर्वेद तैतरेय ब्रा	सायण भाष्य-आनन्दाश्रम, पूना	सन् १८९८	काण्ड, प्रपाठक, अनुवाक
१३	कृ० यजु० तै० सं०	कृष्णयजुर्वेद तैतरीय सहिता	,, ,, ,,	सन् १९००	,, ,,
	कौषी०	कौषीतकी उपनिषद्	निर्णयसागर प्रेस, बबई	१९२३	
	गीता०	भगवद् गीता, बाल गगाधर तिलक	अनु० माधवराव सप्रे केसरी प्रेस पूना	संवत् १९७४	अध्याय श्लोक
	गु० कु०गु	गुजराती अनुवादवाला कुरानशरीफ उर्फ कुराने मजीद (गुजराती तरजमा)	भाषान्तर कर्ता शेरमोहम्मद ऐसफहानि दी मुसरत हाई प्रेस बम्बई	हिजरी सन १३१८	प्रकरण, आयत
१७	गो० गोप० ब्रा०	गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग	सपादक प० क्षेमकरणदास त्रिवेदी प्रयाग	सन् १९२४	प्रपाठक, कण्डिका
१८	छान्दो०	छान्दोग्योपनिषद्	सपा० गोखले गणेश शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना	सन् १९१०	प्रपाठक, खण्ड, मन्त्र

१९	जै० त० प्र०	जैन तत्त्व प्रकाश	पूज्य अमोलख ऋषिजी कृत चौथी आवृत्ति प्र० कीमती आदर्स, हैदराबाद	सन १९३१	पृष्ठ
	प्र०	तमाम खोरदेह अवस्ता पारसी धर्म पुस्तक	जहांगीर की कराणीवाली नईदरकी छत्तीस मुनाजात सहित प्रकाशक जहांगीर बी० के पुत्र, वहोरा बाजार कोट, बम्बई	सन् १२९९ यज्दे जरदी	
		...सह बौद्ध दर्शन शान्ति रचित कृत	बड़ौदा से ट्रल लायब्रेरी	सन् १९२६	श्लोक
		...र्थ सूत्र प० सुख लाल कृत	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	संवत् १९८६	अध्याय सूत्र
		...आरण्यक	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना	सन् १८९८	
		...उपनिषद्	" " "	"	वल्ली, खण्ड, मन्त्र
		दयानन्द तिमिर	प० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत	संवत् १९५५	पृष्ठ

प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास ... श्लोक

२६ दे० भा० पु० देवी भागवत पुराण श्री वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई सं० १९८२ अध्याय पाद खण्ड

२७ नि० दे० निरुक्त दैवकाण्ड, निर्णय सागर प्रेस बम्बई सन् १९ ६ कारिका

सन् १९०६ अध्याय, पाद, सूत्र

२८ न्या० का० न्यायकारिकावली रघूत्तम रचित भाष्यचन्द्र म० म०

२९ न्या० वा० भा० न्यायदर्शन वात्सायन भाष्य गंगानाथ झा कृत उद्योत प्रका० चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय बनारस

जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता सन् १८७१ अ० आह्निकसूत्र

[illegible] न्या० सू० न्यायदर्शन सूत्र आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना सन् १९१४ खण्ड, अध्याय, श्लोक

[illegible] पद्म० पु० पद्मपुराण सन् १९१२ परिच्छेद, पृष्ठ

३२ प्र० क० मा० प्रमेय कमल मार्तण्ड निर्णय सागर प्रेस बम्बई सन् १९०८, पुस्तक, अध्याय

३३ बा० हिं० बाइबल हिन्दी आयरिशमिशन प्रेस सूरत सन् १९६५ अध्याय, श्लोक

३४ ब्रह्म० पु० ब्रह्मपुराण आनन्दाश्रम, पूना

३०		बृहदारण्यक उपनिषद्	संपादक बाबू जालमसिंह प्रका० नवलकिशोर प्रेस लखनऊ	सन् १९२३	अध्याय ब्राह्मण
			शांकरभाष्य आनन्दगिरि टीका आनन्दाश्रम, मुद्रणालय, पूना	सन् १९२७	मन्त्र
३६	बृहदा ब्रह्म वै०	ब्रह्मवैवर्त पुराण	१ आनन्दाश्रम, पूना २ खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	संवत् १९८८	अध्याय, श्लोक
३७	ब्रह्म० सू०	ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य सहित	खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई	संवत् १९७०	अध्याय, पाद, सूत्र
३८	भग०	भगवती सूत्र सटीक	आगमोदय समिति भावनगर	सन् १९२१	शतक, उद्देशक, सूत्र
३९	मनु०	मनुस्मृति-कुल्लुकाभट्ट टीका	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	,, १९०२	अध्याय श्लोक
४०	म० महा०	महाभारत ५० पर्व अश्व०-अश्वमेध पर्व आदि—आदिपर्व शा शांति०-शान्तिपर्व	दामोदर सातवलेकर औंध	संवत् १९८०	अध्याय, श्लोक
४१	मा०पु०	मार्कण्डेय पुराण	खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई	संवत् १९८१	,,

४२	मु उ०	मुण्डकोपनिषद् (ईशादि दस उपनिषद्अन्तर्गत)	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर	संवत् १९६०	मुण्डक खण्ड
४३	मैत्र्युप०	मैत्री उपनिषद्	आनन्दाश्रम प्रेस पूना	स० १९२५	पृष्ठ
४४,	यो० सू०	योग दर्शन सूत्र व्यास भाष्य और वाचस्पति तथा भोजदेव टीका	आनन्दाश्रमम मुद्रणालय पूना	सम्वत् १९१६	अध्याय, सूत्र
	यू० द० हिं	युरोपीय दर्शन हिंदी	पाण्डेयरामावतारशर्मा काशी नागरी प्र सा		पृ०
	लो० प्र०	लोक प्रकाश विनय विजय कृत	आगमोदयसमिति, भावनगर	सम्वत १९८५	सर्ग, श्लोक
	व० पु०	वराह पुराण	खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	सम्वत १९८०	अध्याय, श्लोक
	शत० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण	रोयल एकेडेमी, प्रेस	सम्वत् १८५७	काण्ड, अध्याय ब्राह्मण, कण्डिका
	शा० दी०	शास्त्रदीपिका(मीमांसा)	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	सन १९१५	अध्याय पाद सूत्र
	शा० वा०	शास्त्र वार्त्ता समुच्चय	देवचन्दलाल भाई	सम्वत् १९७०	स्तवक, श्लोक
	शि० पु०	शिव पुराण	खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	सम्वत् १९५२	स०, अ०, श्लोक

	यजु० १०	शुक्ल यजुर्वेद भाष्य हिन्दी संहिता	चौखंभा संस्कृत पुस्तकालय बनारस	सन् १६१२	काण्ड, अध्याय, कण्डिका
	श्वे०	श्वेताश्वतर उपनिषद् अष्टादशोपनिषदन्तर्गत	खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई	सम्वत् १६५३	अध्याय, मंत्र
५४	श्लो० वा०	श्लोक वार्तिक [मीमांसा] कुमारिल भट्टकृत-पार्थसारथि प्रणीत न्याय रत्नाकर टीका सहित	चौखंभा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस	सन् १८६६	अधिकरण श्लोक
५५	स० प्र० हिं०	सत्यार्थ प्रकाश हिंदी, नवमीं आवृत्ति	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	सन् १६६६	पृष्ठ
५६	सा० का०	सांख्य कारिका	जयकृष्णदास हरिदास, चौ स पु ब	सन् १६२?	कारिका
५७	सा० द०	[१] सांख्यदर्शन विज्ञानभिक्षुकृत सांख्य प्रवचन भाष्य सहित	चौखंभा संस्कृत पुस्तकालय बनारस	सन् १६०७	अध्याय सूत्र

[२] सांख्य दर्शन [illegible]	पं० जीवानन्द विद्यासागर [illegible] [illegible], कलकत्ता	[illegible]	[illegible]
	वैदिक [illegible], अजमेर	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
सूयगडागसूत्र टीका	" "	"	"
[illegible]	हिन्दुस्थानी एकेडेमी [illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible] युनीवर्सिटी		
[illegible]	शारदा भवन, द्विवेदी [इटावा] द्वि० आवृत्ति	सन् १९२४	[illegible]

[illegible] समिति

= ॥) ॥ =

श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति से प्राप्य

अन्य उत्तम ग्रन्थ

		मू०
	जैन सिद्धान्त कौमुदी (प० रत्नचन्द्रजी कृत अर्ध-मागधी व्याकरण)	५)
	भावना-शतक (गुजराती १), १॥) हिन्दी भावार्थ तथा विवेचना युक्त)	
	भावना शतक (हिन्दी पद्यानुवाद तथा भावार्थ)	।)
	कर्त्तव्य-कौमुदी प्रथम भाग (हिन्दी भावार्थ तथा विवेचन)	१)
	कर्त्तव्य-कौमुदी द्वितीय भाग (हिन्दी भावार्थ तथा विवेचन)	१)
६	कर्त्तव्य-कौमुदी प्रथम भाग (पद्यानुवाद हिन्दी)	।)
७	कारण संवाद (हिन्दी)	=)
८	कारण संवाद (गुजराती)	-)॥
९	रेवती दान समालोचना	≡)
१०	साहित्य-संशोधन की आवश्यकता	-)
११	नित्य स्तुति पाठ (भक्तामरादि स्तोत्र)	=)
१२	भजन पद्य पुष्पवाटिका	।)

प्राप्ति स्थान

१ मन्त्री श्री जैन साहित्य प्रचारक समिति
जैन गुरुकुल ब्यावर

२ सेठिया जैन लायब्रेरी
(…)

॥ ॐ ॥

भारत भूषण शतावधानी

पं० मुनिराज श्री रत्नचन्द्रजी द्वारा सम्पादित

अर्ध मागधी-कोष

(सचित्र)

प्राकृत, संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी तथा गुजराती में

(भाग १, २, ३, ४, तथा ५)

प्रत्येक भाग की कीमत १० रु० है। सम्पूर्ण भागों को एक साथ लेने वाले के लिये ४० रु० लागे डाकखर्च पृथक्। प्रत्येक भाग की पृष्ठ संख्या ८०० से १००० के दरम्यान है।

इस अर्ध मागधी-कोष के सम्बन्ध में इटली, जर्मनी, आदि विद्यापीठों के प्रोफेसरों के अभिप्राय हार्दिक धन्यवाद के साथ आये हैं। भारत तथा बहिर्देशीय अनेक विद्वानों ने इस कोष का विद्वानों, विद्यार्थियों, पुस्तकालयों, तथा ग्रन्थ कारों के लिये अत्यन्त उपयोगी बतलाया है। अब बहुत थोड़ी प्रतियाँ अवशिष्ट रही हैं। इस ग्रन्थ पर सैंकड़े पर १२½ टका कमीशन दिया जायेगा।

The ARDHA MAGADHI DICTIONARY

SOME OPINIONS

● Your work deserves a cordial welcome from all students of Prakrit It fills a decided gap in the literature devoted to this important branch of oriental studies and will be found invaluable to all who are interested in the language literature and philosophy of Jainism

Helmuth Von Glarenaph Ph, D private dozen'der Indischen Fhilologie ander Universitat Berlin

● An Illustrated Ardha Magadhi Dictionary is prepared with great devotion anc care and deserves the attention of the European Prakritist in a high degree

Prof W Schubring Hamburgisch Universitat, Seminer, Furkulter and Geschichte Indiens Hamburg